A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विश्व हिंदी पत्रिका

2011

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका

2011

प्रधान संपादक

श्रीमती पूनम जुनेजा

संपादक

श्री गंगाधरसिंह सुखलाल

विश्व हिंदी सचिवालय
स्विफ्ट लेन, फॉरेस्ट साइड
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Swift Lane, Forest Side
Mauritius

(whsmauritius@gmail.com)
whsmauritius@intnet.mu • Phone : 00-230-6761196 • Fax : 6761224

अनुक्रम

लेख

1.	**हिंदी के प्रति हिंदी-भाषियों का कर्तव्य** (जीवाकी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में 29.02.1968 को दिया गया भाषण)	फ़ादर डॉ. कामिल बुल्के	3
2.	**अमेरिका में हिंदी शिक्षण की लहर : हम कितना आगे कितना पीछे**	डॉ. सुरेंद्र गंभीर	8
3.	**हिंदी के प्राचीनतम व्याकरण की खोज एवं स्वरूप**	प्रो. तेज कृष्ण भाटिया	13
4.	**संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाएँ एवं हिंदी**	महावीर सरन जैन	17
5.	**राजभाषा हिंदी आगे बढ़ रही है मगर चुपचाप**	डॉ. हीरालाल बछोतिया	23
6.	**विश्व की स्वैच्छिक हिंदी सेवी संस्थाओं का योगदान**	डॉ. कामता कमलेश	27
7.	**मॉरीशस में हिंदी तथा हिंदी प्रचारिणी सभा**	श्री अजामिल माताबदल, श्री धनराज शंभु	37
8.	**हिंदी और काशी की नागरी प्रचारिणी सभा**	राकेश कुमार दूबे	42
9.	**विदेशों में हिंदी शिक्षण**	प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी	49
10.	**प्रो. राम प्रकाश : न भूतो न भविष्यति**	राज हीरामन	54

सूचना प्रौद्योगिकी और विश्व में हिंदी

11.	**हिंदी ब्लॉगिंग: कुछ पुनर्विचार**	बालेंदु शर्मा दधीच	63
12.	**वेब पत्रकारिता : कल आज और कल**	पूर्णिमा वर्मन	70

विश्व में हिंदी : विविध आयाम

13.	**हंगरी में हिंदी : गतिविधियाँ और प्रेरणा के मूल स्त्रोत**	विजया सती	77
14.	**स्पेन में हिंदी और भारतीय सिद्धांतविषयक पाठ्यचर्चा**	प्रो. विजयकुमारन	82
15.	**ऑस्ट्रेलिया में हिंदी**	डॉ. दिनेश श्रीवास्तव	87
16.	**बेलारूस में मेरी हिंदी : बचकानी अभिरुचि से लेकर व्यावसायिक कार्य तक**	आलेसिया माकोव्सकाया	93
17.	**अंडमान निकोबार द्वीप-समूह की हिंदी**	डॉ. अनिता गांगुली	97
18.	**ऑस्ट्रेलिया में हिंदी कथ्य और तथ्य**	डॉ. रवींद्र अग्निहोत्री	103
19.	**हिंदी, हमारी प्रिय हिंदी**	स्नेह ठाकुर	107

डायास्पोरा साहित्य के इतिहास पर विशेष आलेख

20.	**साहित्य में प्रवासी हिंदी साहित्य**	अर्चना पैन्यूली	117
21.	**दक्षिण अफ्रीका में हिंदी साहित्य**	प्रो. रामभजन सीताराम	121
22.	**फीजी का हिंदी साहित्य**	सलेश कुमार	127
23.	**अमेरिका का साहित्यिक परिदृश्य तथा अमेरिका में हिंदी का भविष्य**	डॉ. इला प्रसाद	131
24.	**अमेरिका के हिंदी कथा साहित्य में अमेरिकी परिवेश**	डॉ. सुधा ओम ढींगरा	135

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी निबंध प्रतियोगिता 2010 के विजेताओं के निबंध

25.	**हिंदी कैसे बने संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा**	श्री नारायण कुमार	143
26.	**हिंदी कैसे बने संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा**	डॉ. जय प्रकाश कर्दम	148
27.	**हिंदी कैसे बने संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा**	श्रीमती तीना जगु मोहेश	151

माननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी
शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री
एम.आई.टी.डी. हाउस
फेनिक्स, मॉरीशस

REPUBLIC OF MAURITIUS

MINISTRY OF EDUCATION AND HUMAN RESOURCES
(Office of the Minister)

संदेश

मेरे लिए यह बहुत ही खुशी की बात है कि मैं विश्व हिंदी सचिवालय की वार्षिक पत्रिका के साथ लगातार तीसरी बार के लिए जुड़ा हूँ। विश्व हिंदी सचिवालय जैसे-जैसे अपनी जड़ें मजबूत करता जा रहा है, जैसे-जैसे दुनिया भर में उसकी पहुँच बढ़ रही है, वैसे-वैसे मेरी और दुनिया भर के हिंदी समुदाय की आशाएँ बढ़ रही हैं। हम सभी यही चाहते हैं कि हिंदी की प्रगति के लिए भारत और मॉरीशस के महान नेताओं ने जो सपना देखा है वह पूरा हो।

हिंदी भाषा भारत और मॉरीशस के बीच गहन संबंधों का एक मजबूत आधार पहले से ही ऐतिहासिक रूप से था। अब विश्व हिंदी सचिवालय की कोशिशों के चलते हिंदी भाषा भारत और मॉरीशस को सारे संसार के साथ और ज्यादा जोड़ रही है। उन सभी देशों को एक-दूसरे के करीब ला रही है जहाँ हिंदी भाषी लोग बसे हुए हैं। इस बात पर मॉरीशस सरकार को खुशी है और गर्व भी।

शिक्षा मंत्री होने के नाते मुझे इस बात को लेकर और अधिक प्रसन्नता है कि विश्व हिंदी पत्रिका और हिंदी भाषा के क्षेत्र में खोज कार्यों से जुड़ी अपनी बाकी गतिविधियों के जरिए विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस को हिंदी भाषा और डायास्पोरा के बारे में खोज के लिए केंद्र के रूप में स्थापित कर रहा है। मुझे पूरा विश्वास है कि सचिवालय का भवन बन जाने और वहाँ सुविधाएँ आ जाने पर वह काम और तेजी से आगे बढ़ेगा। ऐसा करते हुए सचिवालय हमारी सरकार की उस योजना में भारी योगदान दे रहा है जिसके अंतर्गत हम मॉरीशस के शोध और शिक्षा का एक केंद्र (Knowledge Hub) बनते हुए देखना चाहते हैं। हमारे इन प्रयासों में भारत सरकार के अमूल्य ऐतिहासिक सहयोग के लिए हम हमेशा आभारी रहेंगे।

पत्रिका के तीसरे अंक के प्रकाशन के लिए श्रीमती पूनम जुनेजा और श्री गंगाधरसिंह सुखलाल को बधाई के साथ-साथ सचिवालय को अगले वर्ष की सभी गतिविधियों के लिए मेरी शुभकामनाएँ हैं। विश्व हिंदी समुदाय को पूरा विश्वास रहे कि हमारी हिंदी की प्रगति के लिए मॉरीशस सरकार का सहयोग हमेशा प्राप्त होता रहेगा।

(डॉ. वसंत कुमार बनवारी)
5 दिसंबर, 2011

MITD House Phoenix, MAURITIUS
Tel. No 686 2402/03 Fax No. : (230) 698 3601
E-mail : vkbunwaree@mail.gov.mu

सत्यमेव जयते

भारतीय उच्चायुक्त
पोर्ट लुई, मॉरीशस

HIGH COMMISSIONER OF INDIA
PORT LOUIS, MAURITIUS

संदेश

मुझे यह जानकर बेहद खुशी हो रही है कि विश्व हिंदी सचिवालय 10 जनवरी, 2012 को विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर अपनी वार्षिक 'विश्व हिंदी पत्रिका' के तीसरे अंक का प्रकाशन करने जा रहा है।

यह पत्रिका विश्व हिंदी सचिवालय की गतिविधियों तथा हिंदी के क्षेत्र में दुनिया भर में हुई प्रगति के विगत और वर्तमान से पाठकों को परिचित कराने तथा हिंदी की प्रगति को विभिन्न कोणों से आँकने का एक महत्त्वपूर्ण सालाना दस्तावेज बन चुकी है।

मैं पत्रिका के संपादक मंडल को उनकी इस उपलब्धि के लिए बधाई देता हूँ साथ ही आगामी विश्व हिंदी दिवस के आयोजन की सफलता की कामना करते हुए विश्व हिंदी सचिवालय को सकारात्मक गतिविधयों एवं उपलब्धियों से भरे नव वर्ष की मंगल कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(टी.पी. सीताराम)
15.12.2011

6th Floor, L.I.C. Building, President John Kennedy Street, P.O. Box 162, Port Louis, Mauritius.
Tel: (230)208 7372/8123 Fax: (230)208 6859
Email: hicom.ss@intnet.mu

संपादकीय

'विश्व हिंदी पत्रिका' के लेखक समुदाय को, इसके पाठकों को व अन्य हिंदी प्रेमियों को मेरा हार्दिक अभिनंदन! इस पत्रिका का तीसरा अंक आपके हाथों में है। मेरा अनुभव यह है कि प्रत्येक अंक में विश्व हिंदी सचिवालय की संपादकीय टीम ने और अधिक मेहनत की है जिससे कि विभिन्न देशों के लेखकों के विचार आप सब तक पहुँच सकें। इस अंक में ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका, अमरीका, डेनमार्क, मॉरीशस, स्पेन, जापान, भारत आदि कई देशों के लेखकों ने अपना योगदान दिया है और मैं अपनी ओर से एवं पूरी संपादकीय टीम की ओर से उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

लेखकों द्वारा व्यक्त विचार उनके प्रवास के देशों में हिंदी साहित्य का इतिहास, आज की स्थिति, हिंदी लेखन को उन देशों में आ रही चुनौतियाँ, हिंदी पठन-पाठन की स्थिति इत्यादि से संबंधित हैं। इनको पढ़कर कुछ तथ्य जो उभर कर आते हैं, वे हैं—

1. भारतीय प्रवासियों के गमन के समय से हिंदी की प्रगति जुड़ी हुई है। भारत के जिन प्रांतों से उन्नीसवीं शताब्दी में गमन हुआ, उन्होंने उन देशों में अपनी भारतीय संस्कृति को सहेजकर रखा। रामचरितमानस, हनुमान चालीसा के पठन-पाठन से हिंदी को जीवित रखा। आर्यसमाज ने हिंदी के पौधे को और सींचा और उन देशों व उन परिवारों में हिंदी अथवा उनकी प्रांतीय भाषा आज भी जीवित है। बीसवीं सदी में गमन हुआ—भारत के पढ़े-लिखे समुदाय से डॉक्टरों, वैज्ञानिकों इत्यादि का। चूँकि उनकी पढ़ाई भारत में अंग्रेजी माध्यम से हुई थी, उन्हें अपने प्रवास के देशों में या तो अंग्रेजी या वहाँ की स्थानीय भाषा का संबल आवश्यक था। उन्होंने अपने देश की भाषा को केवल एक मीठी याद (nostalgia) के रूप में सँभाला। वैश्वीकरण के युग में विभिन्न वाणिज्यिक professionals, व्यवसायियों की आवाजाही शुरू हुई, भारत एक बड़े बाजार के रूप में देखा जाने लगा और व्यावसायिक कारणों से हिंदी पठन-पाठन को उन देशों में बल मिलने लगा।

2. अन्य एशियाई देश जैसे कि चीन, जापान, कोरिया आदि ने भी संसार के विभिन्न देशों में अपनी भाषाई पहचान बनाई है। इसके बावजूद हिंदी जाननेवालों की संख्या विश्व में तीसरे स्थान पर है; परंतु भारत और मॉरीशस से इतर देशों में चीनी, जापानी इत्यादि की हस्ती अधिक बुलंद है। उनकी लिपि को स्थानीय लोग पहचानते हैं, उन भाषाओं को पढ़नेवालों की संख्या भी अधिक है। ऑस्ट्रेलिया व अन्य देशों में तो हिंदी पाठन की सरकारी व्यवस्था ही नहीं है जबकि वहाँ पर काफी भारतीय आप्रवासी रहते हैं! अधिकतर देशों में हिंदी का समाचार-पत्र भी नहीं है।

3. ऊपर (2) में दरशाई गई स्थिति के दो मुख्य कारण हैं : पहला तो जापान, चीन इत्यादि की सरकारें अपने व्यवसाय को विश्व में फैलाने के साथ-साथ भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए काफी अधिक पैसा खर्च कर रही हैं, भारत सरकार द्वारा खर्च किए पैसो से बहुत ज्यादा। दूसरा कारण है कि भारत से गए हुए प्रवासियों में भी अपनी भाषा को सीखने या उसके प्रचार-प्रसार में बहुत रुचि नहीं है। यहाँ तक कि वे अपने निजी कार्यालयों या व्यावसायिक स्थानों पर भी हिंदी के साईन-बोर्ड नहीं लगाते। इसके अलावा उनकी भाषाई रुचि अपनी प्रांतीय भाषा, भोजपुरी, गुजराती, मलयाली, तमिल इत्यादि जो भी हो, में अधिक और हिंदी में कम रुचि है।

हिंदी के प्रचार–प्रसार, उसकी विश्व भर में लोकप्रियता को बढ़ाने के लिए भारत में हिंदी की स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। भारत के प्रत्येक प्रांत में हिंदी की स्थिति को और सुदृढ़ करना होगा।

हिंदी की लोकप्रियता मनोरंजन के क्षेत्र में तो काफी प्रगति पर है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, टेलीविजन सीरियल व हिंदी फिल्मों का काफी देशों में प्रसारण है और वह आप्रवासी ही नहीं, स्थानीय लोगों को भी काफी पसंद है। इसका लाभ उठाते हुए आप्रवासी भारतीय अपने आपको संगठित कर सकते हैं और अपने प्रवास के देशों में हिंदीभाषियों के एक विशाल समुदाय की प्रस्तुति कर सकते हैं। जैसा कि श्री रामचरितमानस में लिखा है कि कलयुग में संगठन ही शक्ति है।

इसके अलावा उन देशों में सभी भारतवंशी हिंदी के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा देने के लिए और उस देश में हिंदी साहित्य को पुष्ट करने की दिशा में संकल्पित हों, हिंदी का समाचार पत्र–पत्रिका निकालें, उसे प्रत्येक परिवार अवश्य खरीदे, उसमें व्यवसायी भारतवंशी विज्ञापन अवश्य दें। इन सब गतिविधियों से निश्चय ही उन देशों में भारतवंशियों का संगठन भी सुदृढ़ होगा और हिंदी को भी उचित सम्मान प्राप्त होगा। इससे उनकी राजनीतिक पहचान भी बलशाली होगी और वह उन देशों की मुख्यधारा में भी सक्रियता से भाग ले सकेंगे।

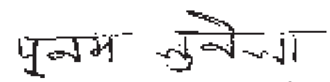

पूनम जुनेजा

महासचिव

मॉरीशस

हिंदी सैनिकों की अगली पंक्ति सामने आए!

विश्व हिंदी सचिवालय के साथ यह मेरा दूसरा साल है, विश्व हिंदी पत्रिका के साथ भी। इस एक वर्ष ने जितनी बातें सिखाईं, जितने अनुभव सींचे, जितने आयामों की यात्रा कराईं और जितने नामों से परिचय कराया; उन सभी के बारे में आज कुछ कहने का मन कर रहा है। मन को लगता है, सभी एक-एक संपादकीय के योग्य हैं।

'चुनाव करूँगा' तो एक वाक्य है, जिसने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया।

'हम लोग तो थके हुए बूढ़े हैं'।

यह वाक्य एक ऐसे व्यक्ति के मुख से निकला, जिन्होंने अपना पूरा कार्यकाल और उसके बाद सेवानिवृत्ति के दस वर्ष अपनी संस्था और उसके माध्यम से (अथवा उसके साथ-साथ) हिंदी भाषा की सेवा में बिता दिए। एक ऐसे व्यक्ति, जिनके लिए मेरे और मेरे समान अनेक लोगों के मन में यह बिंब बना था कि ये कभी बूढ़े नहीं होंगे, कभी थकेंगे नहीं, कभी रुकेंगे नहीं। हिंदी, भारतीयता, संस्कृति आदि के एक अथक सैनिक हैं, वे हमारे, हमारी पीढ़ी और पूरे मॉरीशस के लिए। परंतु पिछले सितंबर महीने में हिंदी दिवस के अवसर पर आयोजित एक समारोह में उनके मुख से निकला, 'हम लोग तो थके हुए बूढ़े हैं।'

कुछ लोगों ने उसे मजाक समझकर कुछ मुसकानें भी बिखेरीं पर उनकी आवाज, उनके चेहरे और उनके ढील-ढौल से स्पष्ट था··· यह मजाक नहीं है, एक बहुत लंबी कठिन यात्रा के बाद यात्री की पहली आह है। उनकी इस आह ने मुझे विचलित कर दिया। आसपास, आगे-पीछे, चारों दिशाओं में देखा···स्मृतियाँ कुरेदीं··· अन्य संस्थाओं में··· देश भर में कुछ हद तक विदेश (इसमें कुछ मात्रा में भारत भी सम्मिलित है) के बारे में भी सोचा—हिंदी की वर्तमान पंक्ति के सैनिक थक रहे हैं, अब आवश्यकता है सैनिकों की नई पंक्ति की; जो आकर मशाल, अस्त्र और झंडा सँभाले।

एक प्रश्न यहाँ उठ सकता है कि हिंदी सेवी को हिंदी सैनिक क्यों कहना?

स्पष्ट कर दूँ कि सेवा, प्रचार कार्य या भाषिक अस्मिता के संघर्ष को युद्ध की समतुल्यता प्रदान करके सनसनी उत्पन्न करना अथवा अन्य भाषाओं को 'दुश्मन' का दरजा देकर भाषाई अतिवाद के बीज बोना भी नहीं हैं। उद्देश्य है, उस भावना, उस दृढ़ता की समतुल्यता उत्पन्न करना; जो एक सैनिक युद्ध के मैदान में दिखाता है और पुरानी पीढ़ी के हिंदी सेवी अपनी भाषा-सेवा में दिखाते रहे हैं। उनके संघर्ष को युद्ध की संज्ञा देना उनके अथक श्रम की उद्दातता को रेखांकित करना है। वापस आते हैं हमारी मुख्य चिंता पर।

आप पत्रिका के इस अंक में नागरी प्रचारिणी सभा काशी के इतिहास पर एक अत्यंत तथ्यपरक आलेख पाएँगे, उसके समानांतर हमने मॉरीशस की हिंदी प्रचारिणी सभा और कनाडा हिंदी प्रचारिणी सभा पर आलेख प्रस्तुत करके हिंदी के प्रचार में इन ऐतिहासिक संस्थाओं के योगदान को उभारने का प्रयास किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के लेखक के शब्दों में 'नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना 16 जुलाई, 1896 को काशी में छोटे-छोटे बालकों द्वारा की गई···' यह बात थी 1896 में परतंत्र भारत की पढ़ा तो लगा, आशुतोष गोवारिकर के खेले हम जी-जान से देख रहे हैं— 'और आज?'

भारत से लेकर मॉरीशस तक, मूल हिंदी प्रदेशों से लेकर आप्रवासी गिरमिटिया मजदूरों के देशों और आधुनिक आप्रवास के पूरे समुदाय

में हिंदी की सेवा में कार्यरत लोगों को देखते हैं तो हिंदी सेवियों की फौज में मुझे उन बालकों की कमी महसूस होती है। पुरानी पीढ़ी के सैनिकों के कमजोर होने पर आज कौन सी पंक्ति के सैनिक सामने आएँगे? मॉरीशस में अभी हाल में लगभग बारह वर्ष की एक लड़की ने अपना पहला अंग्रेजी उपन्यास प्रकाशित किया। हिंदी में प्रकाशन करने वालों की औसत उम्र क्या होगी? विश्व हिंदी समाचार के दिसंबर 2011 अंक में हमने पाँच वर्ष की एक बच्ची द्वारा हिंदी में ब्लॉग शुरू करने की खबर प्रकाशित की है…आशा की किरण प्रकाशमान है!

इस बात पर वैसे विवाद हो सकता है कि पुरानी पंक्ति के हिंदी सेवियों ने वटवृक्ष प्रवृत्ति अपनाई और अपने तले नई पौध को उपजने नहीं दिया, परंतु यह मूल बिंदु से मुकर जाने का बहाना मात्र है। जिसको पनपना है वह चट्टान में भी अपनी जड़े सींच लेगा।

मूल बिंदु तो यही है कि आज हिंदी की सेवा में उसी प्रकार की उद्दात भावना वाले सैनिकों को अगली पंक्ति की आवश्यक्ता है। कौन…कहाँ से…कैसे…बनेंगे ये सैनिक?

वैसे इतिहास इस प्रकार की आवश्यकताओं के लिए एकदम सही समय चुन ही लेता है। ऐसा समय (संक्रमण काल), जब नए हिंदी सैनिक के पास पुरानी पीढ़ी के अनुभव से सीखने का अवसर भी हो और ऐतिहासिक, भौगोलिक, वैज्ञानिक, तकनीकी आदि सीमाओं को तोड़कर उस पुराने सैनिक के काम को आगे बढ़ाने के अवसर भी हों। (यहाँ निस्संदेह भार दोनों पीढ़ियों पर बराबर का है। एक पर सिखाने का, दूसरे पर सीखने का; जो अपनी विरासत, चाहे वह कितनी ही बड़ी हो, सिर्फ अपने नाम कर जाएँ, वे भी दोषी। जो अपने नाम की विरासत, चाहे वह कितनी ही छोटी हो, का सम्मान करना, न जाने वह भी दोषी।)

विश्व हिंदी पत्रिका के इस तीसरे अंक को हमने इस ऐतिहासिक संक्रमण काल का गवाह बनाने का ही प्रयास किया है।

विश्व भर में हिंदी के विकास, प्रचार, स्थिति, समस्याओं के बारे में एक बार पुन: नए तथ्य और नए आयाम उजागर करने के साथ ही विश्व हिंदी पत्रिका का यह अंक अब तक मोर्चा सँभाल रहे सैनिकों की वीरता-गाथा से लेकर नए सैनिक के उत्तरदायित्वों व उससे अपेक्षाओं की फेहरिस्त पेश करता है। इनसे बात स्पष्ट हो जाती है कि नई पंक्ति के जिन सैनिकों की हम चर्चा कर रहे हैं, उनमें कुछ नए और कुछ पुराने गुण अपेक्षित हैं…

फादर कामिल बुल्के के संदेश और प्रो. रामप्रकाश पर राज हीरामन के आलेख से शुरू करके, दक्षिण अफ्रीका में प्रो. सीताराम के अनुभव और फीजी में साहित्यिक रचनाशीलता के संघर्ष तक भारत और सभी डायास्पोरा देशों में पुरानी पीढ़ी के सैनिकों के निष्काम भाव, अदम्य कर्मशक्ति से उदाहरण लेते हुए निचोड़ रूप में एक अनिवार्य बात की ओर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। यह नई पीढ़ी समस्याओं का हल ढूँढ़ने की प्रवृत्ति अपनाए… उनसे आँख चुराने के बहाने नहीं… राष्ट्रभक्ति के समान ही भाषाभक्ति में भी अत्यधिक बुद्धिमता 'क्या खोएगा क्या पाएगा' के अंतर्द्वंद्व, 'दूसरे भी तो हैं' मानसिकता आदि कई बार कर्म के स्थान पर दीमागी जुगाली में आनंद लेने की लत लगा देती है। भाषा के सतत प्रवाह, उसके विस्तार प्रसार की निर्बाध गति के लिए बेलारूस की अलेसिया मकोव्सकाया की भावना आवश्यक होती है… हिंदी की कमजोरियों पर वाद-विवाद में निपुणता प्राप्त करने की नहीं।

कई दृष्टियों से आज 'जिनके लिए' हिंदी सेवी अपना युद्ध लड़ रहा है, उनकी निष्क्रियता और उनकी अनासक्ति उन्हें ही विरोधियों की पंक्ति में ला खड़ा करती है। सुरेंद्र गंभीरजी का आलेख इस विषय में पर्याप्त रोशनी डालता है और उससे आगे के प्रश्न भी करता है। विरोधियों की संख्या और शक्ति बढ़ती है तो हिंदी सैनिक का साहस कम होता है। साहस और शक्ति के लिए नए औजार नए हथियार भी चाहिए। बालेंदु और पूर्णिमाजी के आलेख यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि नई पंक्ति के सैनिकों के सामने ढाल पुरानी पर हथियार नए होने चाहिए। ढाल उस उद्दात भावना की, जो अपनी भाषा के प्रति आज भी (क्योंकि जैसा कि विदेशों में हिंदी शिक्षण व साहित्य संबंधी हमारे आलेख सिद्ध करते हैं, आज हिंदी सेवा का क्षेत्र नित नया और नित विस्तृत होता जा रहा है) नए लोगों, नई दिशाओं से आ रही उपेक्षा की भावना, हीनता-दृष्टि का सामना करने की शक्ति दे। हथियार वे जो इस लगातार विस्तृत हो रहे सेवा-क्षेत्र के सभी कोणों तक पहुँच पाएँ… जो नदी, तालाब, कुएँ को सुविधाभोगी और परिणामत। आलसी प्यासे तक पहुँचा पाएँ। प्रो. तेज भाटिया का आलेख पढ़िए और कल्पना कीजिए कि जब 1698

में केटेलर ने हिंदी का पहला व्याकरण लिखा तब यदि उसके पास फेसबुक जैसा हथियार होता अथवा अपना एक ब्लॉग होता तो क्या बात होती। उनके पास भावना थी हथियार नहीं थे। हमारे पास हथियार हैं और भावना···

पत्रिका के अंत में तीन ऐसे आलेख हैं, जिनको पिछले वर्ष की अंतर्राष्ट्रीय हिंदी निबंध प्रतियोगिता में पुरस्कृत किया गया था। विषय वह था जो आगामी वर्षों में विश्व हिंदी सैनिक की सबसे बड़ी लड़ाई होगी, 'हिंदी कैसे बने संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा?' कुछ उपाय इन विद्वानों ने सुझाए हैं। चक्रव्यूह से जूझने के कुछ मार्ग ये विद्वान दिखा चुके हैं··· कुछ सैनिक स्वयं खोजेगा।

विश्व हिंदी पत्रिका 2011, सचिवालय की नई महासचिव श्रीमती पूनम जुनेजा के स्वागत का भी अवसर लेकर आई है। उन्होंने अगस्त 2011 में कार्यभार सँभाला है और आते ही इस जटिल कार्य में जुट गईं। उनके मार्गदर्शन के लिए उनके प्रति आभार। पत्रिका को यह रूप प्रदान करने में सचिवालय के सहयोगियों—प्रीति, जीष्णु, अंजलि और विजया का खूब परिश्रम रहा, ये हमारे सैनिक हैं ! विद्या विहार प्रकाशन एक बार पुन: हमारी सभी अपेक्षाओं (जो कभी-कभार असंभव की सीमाओं को छूती हैं) पर खरा उतरा, हम आभारी हैं।

पत्रिका में योगदान देनेवाले सभी साहित्यकारों, शोधकर्ताओं, हिंदी सेवियों व अपने प्रकाशनों को साभार प्रकाशित करने की अनुमति देने वालों के प्रति नतमस्तक होते हुए हम अपना आग्रह दोहराते हैं कि आगामी वर्ष की पत्रिका के लिए नई दिशाओं और नए आयामों की खोज का प्रारंभ अभी से हो।

अब बारी आती है आप पाठकों की—आभार प्रकट करें या सलाम करें? प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न है कि आप जो अभी इस पत्रिका को पढ़ रहे हैं, आप नई पंक्ति के सैनिक हैं अथवा पुरानी?

यदि आप ऊपर दिए गए हमारे उस उदाहरण की तरह अपना पूरा जीवन हिंदी की लड़ाई में बिताने वाले सैनिक हैं तो आज विश्व हिंदी समुदाय की ओर से हम आपको आपके त्याग, तपस्या, बलिदान और मेहनत के लिए सलाम करते हैं, प्रणाम करते हैं और आशा करते हैं कि आगे की आपकी लड़ाई उन नए सैनिकों की तैयारी की हो, जो इस संघर्ष को जारी रखें।

और यदि आप नई पंक्ति के सैनिक हैं··· तो आईए हमसे पूर्व के सैनिकों ने जो भवन बनाया है, उसकी सुरक्षा करें··· अपने-अपने देश में अपनी-अपनी अलग लड़ाई लड़ते हुए इन्होंने हिंदी के एक अरब से ज्यादा मोती हासिल किए हैं। सच है कि ये मोती कहीं कुछ मात्रा में एकत्रित तो कहीं दूर-दूर बिखरे हुए हैं। इन एक अरब को भावात्मक, विचारगत आधार पर तकनीकी, सांस्कृतिक और राजनयिक प्रयासों से एक हार में पिरोकर उसकी चमक से विश्व समुदाय के समक्ष सिद्ध करना है कि हिंदी 'विश्व भाषा' है। यह नए सैनिक की लड़ाई है।

मॉरीशस के कवि सोमदत्त बखोरीजी कह गए—

कुरुक्षेत्र में युद्ध जारी है
हे अर्जुन!
गांडीव को हाथ से फिसलने न दो!

हम भी अपने हथियार सँभालें और आगे बढ़ें
हिंदी की पुकार है···सैनिकों की अगली पंक्ति सामने आए।

—गंगाधर सिंह सुखलाल
उप महासचिव

मॉरीशस
23.12.2012

लेख

1

हिंदी के प्रति हिंदी-भाषियों का कर्तव्य

(जीवाकी विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में 29.02.1968 को दिया गया भाषण)

'हिंदी चेतना' से सभार

✍ फ़ादर डॉ. कामिल बुल्के

माननीय उपकुलपति तथा प्रिय छात्रगण! आजकल अनेक समस्याएँ देश की प्रगति में बाधा डालती हैं और उसकी भावात्मक एकता के लिए घातक सिद्ध हो सकती हैं। उनमें से भाषा की समस्या विशेष रूप से सभी विचारशील नागरिकों के लिए चिंता का विषय बन गई है। इस समस्या के अनेक पहलू हैं। मैं यहाँ पर कानून अथवा राजनीति की दृष्टि से नहीं बल्कि सांस्कृतिक दृष्टिकोण से इस समस्या पर विचार करना चाहता हूँ। हिंदी के प्रति, अहिंदी प्रांतों के रुख के विषय में मुझे यहाँ पर कुछ नहीं कहना है। हिंदी के प्रति हिंदी भाषियों का कर्तव्य मेरा विषय होगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि हिंदी-भाषी बुद्धिजीवी अपनी भाषा का समुचित आदर करेंगे और उसके प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण रूप से निभाएँगे तो भाषा की समस्या अपने आप हल हो जाएगी। हम हिंदी के प्रश्न को प्रचार तथा आंदोलन का विषय बनाकर वास्तविकता का ध्यान नहीं रखते। कठोर सत्य यह है कि हिंदी प्रांतों में हिंदी और उसके साहित्य का समादर नहीं किया जाता है। बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु आदि प्रांतों के बुद्धिजीवी अपनी भाषा पर जितना गौरव करते हैं, अपने साहित्य से जितना प्रेम रखते है; उतना हम हिंदी वाले नहीं करते।

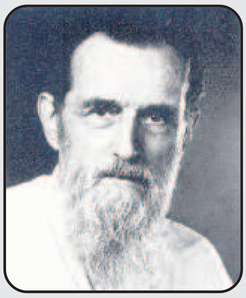

- 1 सितंबर, 1909 में बेल्जियम में जनमे फ़ादर बुल्के ने यूरोप के यूवेन विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग पास की।
- नवंबर 1935 में वे भारत आए। पहले वे गणित के अध्यापक बने, फिर हिंदी, ब्रज, अवधी और संस्कृत सीखी। हिंदी साहित्य सम्मेलन से विशारद की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात् 1945 में हिंदी व संस्कृत में बी.ए. तथा 1947 में एम.ए. संपन्न किया।
- 1949 में डी.फिल. उपाधि के लिए उनके शोध 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' को स्वीकृति मिली। 1950 में भारत की नागरिकता ग्रहण करने के पश्चात् वे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद की कार्यकारिणी के सदस्य नियुक्त हुए और 1972 से भारत सरकार की केंद्रीय हिंदी समिति के सदस्य बने रहे।
- उन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा सन् 1974 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। बेल्जियम से भारत आकर हिंदी, तुलसी और वाल्मिकि के भक्त बने डॉ. फादर कामिल बुल्के का निधन 17 अगस्त, 1982 को हुआ।

संसारभर में शायद ही कोई देश होगा, जहाँ उत्तर भारत की तरह साहित्यिक भाषा की वर्तनी में इतनी अनेकरूपता तथा अराजकता है, जहाँ बुद्धिजीवी अपनी बातचीत में विदेशी भाषा के शब्द मिलाकर खिचड़ी भाषा का प्रयोग करते हैं, जहाँ सूचना-पट्टों तथा विज्ञापनों में भाषा की इतनी दुर्गति कर दी जाती है कि विश्वविद्यालय के अधिकांश छात्र अपनी मातृभाषा की भद्दी भूलें किए बिना दस पंक्तियाँ भी नहीं लिख पाते हैं। आशा थी कि हाई स्कूलों में अंग्रेज़ी के स्थान पर हिंदी को रखने से यह शिकायत बहुत हद तक दूर हो जाएगी, किंतु इस बात को हिंदी प्रांतों के सभी प्राध्यापक स्वीकार करते हैं कि इधर कई वर्षों से हिंदी का स्तर गिरता जा रहा है।

मेरा नम्र निवेदन है कि भाषा समस्या के समाधान के लिए अपने ही प्रांतों में परिनिष्ठित खड़ी बोली का अभियान प्रवर्तित करना हिंदी-भाषियों का पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। इस संदर्भ में भातरतेंदु हरिश्चंद्र का कथन आज भी महत्त्व रखता है—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटै न हिय को शूल॥

(अ) हिंदी–भाषी प्रांतों में इस अभियान की एक प्रमुख बाधा है—बुद्धिजीवियों की अंग्रेज़ी–परस्ती। उन लोगों का अंग्रेज़ी का मोह दूर करने में हम तभी सफल होंगे, जब हम अपने आंदोलन को एक सांस्कृतिक तथा रचनात्मक रूप दे पाएँगे। यदि हमारा आंदोलन अंग्रेज़ी के विरोध तक सीमित रहेगा तो वह उग्र रूप धारण करेगा और अंग्रेज़ी–परस्तों के मानस पर उसका निश्चय ही उलटा प्रभाव पड़ेगा। हमें स्पष्ट करना चाहिए कि हम किसी भी भाषा का समादर करने के लिए तैयार हैं। संसार की प्रत्येक विकसित भाषा के निर्माण में शताब्दियाँ लग गई हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रतिभाशाली मनीषी उसे समृद्ध करते चले आ रहे हैं। उन भाषाओं की अपनी–अपनी मौलिकता है। उनमें से एक पर पूरा अधिकार करने से हम एक महान् आध्यात्मिक एवं एक सांस्कृतिक निधि के भागी, एक समृद्ध परिवार की बपौती के साझीदार बन जाते हैं। हमारा विरोध अंग्रेज़ी भाषा और उसके साहित्य से नहीं है। हम इस भाषा की समृद्धि और उसके साहित्य का महत्त्व समझते हैं, किंतु हम यह भी जानते हैं कि हमारे सार्वजनिक जीवन में अंग्रेज़ी को जो स्थान मिला है, वह हमारी राजनीतिक पराधीनता का अवशेष है। हमारे सामाजिक जीवन में उसे जो स्थान प्राप्त है, वह हमारी मानसिक पराधीनता का प्रतीक है और हमारी शिक्षा–संस्थाओं में जो अंग्रेज़ी माध्यम का प्रयोग चला आ रहा है, उससे हमारी प्रतिभा कुंठित हो गई है।

हदी-भाषी प्रांतों में इस अभियान की एक प्रमुख बाधा है–बुद्धिजीवियों की अंग्रेज़ी-परस्ती। उन लोगों का अंग्रेज़ी का मोह दूर करने में हम तभी सफल होंगे, जब हम अपने आंदोलन को एक सांस्कृतिक तथा रचनात्मक रूप दे पाएँगे। यदि हमारा आंदोलन अंग्रेज़ी के विरोध तक सीमित रहेगा तो वह उग्र रूप धारण करेगा और अंग्रेज़ी-परस्तों के मानस पर उसका निश्चय ही उलटा प्रभाव पड़ेगा। हमें स्पष्ट करना चाहिए कि हम किसी भी भाषा का समादर करने के लिए तैयार हैं। संसार की प्रत्येक विकसित भाषा के निर्माण में शताब्दियाँ लग गई हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रतिभाशाली मनीषी उसे समृद्ध करते चले आ रहे हैं। उन भाषाओं की अपनी-अपनी मौलिकता है। उनमें से एक पर पूरा अधिकार करने से हम एक महान् आध्यात्मिक एवं एक सांस्कृतिक निधि के भागी, एक समृद्ध परिवार की बपौती के साझीदार बन जाते हैं। हमारा विरोध अंग्रेज़ी भाषा और उसके साहित्य से नहीं है। हम इस भाषा की समृद्धि और उसके साहित्य का महत्त्व समझते हैं, किंतु हम यह भी जानते हैं कि हमारे सार्वजनिक जीवन में अंग्रेज़ी को जो स्थान मिला है, वह हमारी राजनीतिक पराधीनता का अवशेष है।

शताब्दियों की परतंत्रता के बाद अब हमारा स्वाभिमान धीरे–धीरे जाग रहा है। यह संतोष की बात है कि हमारे विद्यार्थियों ने स्वाभिमान के इस अभियान का नेतृत्व ले लिया है। उनके अनुरोध से अंग्रेज़ी विज्ञापन प्राय: लुप्त हो गए हैं। इस प्रकार हमारे नगरों के चेहरे पर जो दासता की कालिख लग गई थी, वह छात्रों की जागरुकता के फलस्वरूप धुल गई है। अब इस आंदोलन का दूसरा रचनात्मक चरण उतना ही महत्त्वपूर्ण है। क्या हमारा स्वाभिमान यह बरदाश्त कर सकता है कि उन विज्ञापनों तथा नाम–पट्टों के माध्यम से हम दुनिया के सामने इसका प्रमाण देते रहें कि हम अपनी ही भाषा ठीक तरह से नहीं लिख सकते हैं? अब तक मुझे एक भी शहर नहीं मिला, जहाँ दर्जनों स्थलों पर 'मिष्ठान्न भंडार' के हिज्जे में गलतियाँ न मिली हों।

इस संदर्भ में मेरा एक नम्र निवेदन भी है। इस आंदोलन में उग्रता की गंध न आने पाए। जिस हथियार से महात्मा गांधी देश में अंग्रेजी का साम्राज्य समाप्त कर स्वराज्य स्थापित करने में समर्थ हुए, उसी अहिंसात्मक सत्याग्रह का सहारा लेकर हम अंग्रेज़ी का साम्राज्य समाप्त कर उत्तर भारत में हिंदी का राज्य स्थापित कर सकते हैं। यदि हमारा आत्मविश्वास पक्का है, यदि हम दृढ़प्रतिज्ञ होकर यह आंदोलन आगे बढ़ाते रहे तो हमें बल-प्रयोग तथा हिंसात्मक कार्रवाई की जरुरत नहीं पड़ेगी और हमें सभी बुद्धिमान नागरिकों का सहयोग प्राप्त होगा।

शिक्षा-संस्थाओं में अंग्रेज़ी के स्थान की समस्या का भी ऐसा संतुलित समाधान किया जाए, जिसे सभी नागरिक सहर्ष स्वीकार कर सकें। दुनियाभर के सभी शिक्षा-शास्त्री यह बात मान लेते हैं कि मातृभाषा और प्रतिभा का एक रहस्यमय एवं अत्यंत गहरा संबंध है। मातृभाषा के माध्यम से ही प्रतिभा का स्वस्थ विकास संभव है। मस्तिष्क में परिपक्वता आने से पहले किसी विदेशी भाषा के माध्यम से जानकारी तो प्राप्त की जा सकती है, किंतु मस्तिष्क का स्वाभाविक विकास असंभव सा है। विदेशी भाषा को समस्त शिक्षा का माध्यम बना देने से मस्तिष्क पर एक प्रकार का जकड़-जामा पहना दिया जाता है, जिससे उसकी मौलिकता के स्रोत सूख जाते हैं, उसकी सर्जनात्मक शक्तियाँ दुर्बल बनती हैं और एक कृत्रिम तथा निर्जीव अनुकरणशीलता उसकी मुख्य विशेषता रह जाती है। भारत में प्रतिभा की कमी नहीं है और बहुत से मेधावी भारतीय साहित्यकारों ने अंग्रेज़ी में लिखने का प्रयास भी किया है। क्या वे अपनी रचनाओं द्वारा अंग्रेज़ी साहित्य समृद्ध करने में समर्थ हुए ? कदापि नहीं। यदि असाधारण प्रतिभा-संपन्न लेखकों की यह हालत है तो अंग्रेज़ी के माध्यम से पढ़नेवाले साधारण विद्यार्थियों की बुद्धि निश्चय ही कुंठित हो जाती है। अत: मातृभाषा को समस्त शिक्षाक्रम का माध्यम बनाने पर शिक्षा का स्तर गिरेगा। अंग्रेज़ी-परस्तों की यह धारणा नितांत अवैज्ञानिक तथा निर्मूल है। इसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि हमारी शिक्षा संस्थाओं से अंग्रेज़ी अथवा अन्य भाषाओं का बहिष्कार करने में हमारे विद्यार्थियों का कल्याण है। अंग्रेज़ी का पूर्ण बहिष्कार चाहनेवाले यह तर्क अवश्य दिया करते हैं कि फ्रांस, रूस, जर्मनी, जापान आदि में अंग्रेज़ी की जरूरत नहीं मानी जाती है, क्योंकि समस्त शिक्षा का माध्यम फ्रेंच, रूसी, जर्मन तथा जापानी है। ऐसे लोगों को याद दिलाना चाहिए कि उन देशों के विद्यार्थी, विशेष रूप से विज्ञान के विद्यार्थी कम-से-कम एक विदेशी भाषा की भी जानकारी रखते हैं। आजकल उन देशों में एक विद्वान् ऐसा नहीं मिलेगा, जो दो-तीन विदेशी भाषाओं में अपने विषय का साहित्य न पढ़ सके। इस तरह हम देखते हैं कि जहाँ तक उत्तर भारत में अंग्रेज़ी के स्थान पर प्रश्न है, उसे इस प्रकार सुलझाया जा सकता है कि हम पर एकांगीपन अथवा कट्टरपन का दोष नहीं मढ़ा जा सके। हम मेधावी विद्यार्थियों के लिए अंग्रेज़ी को सहायक भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं, किंतु साथ-साथ हमें अपने छात्रों की प्रतिभा के स्वाभाविक एवं स्वस्थ विकास की सुरक्षा के लिए इस माँग पर दृढ़ रहना चाहिए कि अंततोगत्वा शिक्षा के सभी स्तरों पर मातृभाषा का ही प्रयोग किया जाए। जहाँ तक सार्वजनिक जीवन तथा प्रशासन की भाषा का प्रश्न है, इतना ही कहना पर्याप्त है कि दुनियाभर में कहीं भी ऐसा कोई विकसित स्वतंत्र देश ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा, जहाँ के नागरिक सार्वजनिक सभाओं में तथा प्रशासन के लिए एक विदेशी भाषा की शरण लेते हैं। क्या भारत हमेशा के लिए इसका अपवाद बना रहना स्वीकार कर सकता है ?

(आ) आज हिंदी की बोलियों के संबंध में एक भ्रांत धारणा परिनिष्ठत खड़ी बोली की प्रगति के मार्ग में बाधा उपस्थित कर सकती है। कुछ लोगों का कहना है कि ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि उत्तर भारत की स्वतंत्र और स्वाभाविक भाषाएँ हैं, किंतु साहित्यिक खड़ी बोली एक कृत्रिम भाषा है, जो किसी की मातृभाषा न होकर जबरदस्ती उत्तर भारत के लोगों पर लादी जा रही है। यह धारणा भ्रामक है और हिंदी प्रांतों की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक एकता के लिए ही नहीं, खड़ी बोली के विकास के लिए भी घातक सिद्ध हो सकती है। हिंदी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर कुछ हिंदी-विरोधी इस धारणा को बढ़ावा दे रहे हैं। वास्तव में आधुनिक हिंदी तथा खड़ी बोली 20 करोड़ लोगों की एकमात्र साहित्यिक भाषा है। इस विशाल जनसमुदाय की शक्ति अपार है, किंतु यदि हम सचेत न रहें तो यह शक्ति असंगठित होकर बिखर सकती है। पिछले वर्ष भारत सरकार के 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' की ओर से भारतीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। सभी उपलब्ध साधनों तथा स्रोतों से

लाभ उठाकर उस प्रदर्शनी के लिए लगभग 5000 पुस्तकें मिल सकीं। उनमें से लगभग 3500 पुस्तकें हिंदी की ही थीं और शेष डेढ़ हजार अन्य भारतीय भाषाओं की। मलयालम में 183 पुस्तकें थीं, तमिल में 116, गुजराती में 78, पंजाबी में 78, बँगला में 65 तथा मराठी में भी 65। इन आँकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी की स्थिति सबसे अधिक संतोषजनक है। हिंदी की यह संगठित शक्ति यदि बोलियों में बिखर जाए तो इसका परिणाम उत्तर भारत के लिए कितना घातक होगा। वास्तव में मलयालम आदि अन्य भारतीय भाषाओं की भी बोलियाँ हैं तथा यूरोप के देशों में प्रत्येक भाषा की बहुत-सी बोलियाँ वर्तमान हैं, किंतु वहाँ कोई भी यह कल्पना नहीं कर पाता कि एक परिष्कृत साहित्यिक भाषा का निर्माण हो जाने के बाद शिक्षा, सार्वजनिक जीवन तथा साहित्य के लिए बोलियों का सहारा लेकर, देश की सांस्कृतिक तथा साहित्यिक एकता को विच्छिन्न कर दिया जाए। जर्मनी में प्रत्येक प्रांत की अपनी-अपनी बोली है, उच्च जर्मन अर्थात् राजभाषा किसी भी प्रांत की बोली नहीं है, किंतु प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक सभी शिक्षा संस्थाओं में इसी एक राष्ट्रीय भाषा का परिनिष्ठित रूप सिखलाया जाता है और यही भाषा समस्त सांस्कृतिक, सार्वजनिक तथा साहित्यिक जीवन वहन करती है। यूरोप के देशों में प्राचीन साहित्य का अभाव नहीं है, किंतु हाईस्कूल के अंत तक विद्यार्थियों के सामने केवल परिनिष्ठित जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेज़ी आदि की रचनाएँ पढ़ाई जाती हैं। हमारे विद्यार्थी बचपन से ही अपनी हिंदी पुस्तकों में डिंगल, मैथिली, ब्रज, अवधी आदि के उद्धरण पढ़कर एक ही शब्द के कई रूप देखते हैं, जिससे उनके मन में यह विश्वास घर कर जाता है कि हिज्जे की अबाध स्वतंत्रता हिंदी की एक बड़ी सुविधाजनक विशेषता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे भावी नागरिक शुद्ध खड़ी बोली लिख सकें तो हमें भाषा के शिक्षण में आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा। वर्षों से मेरा दृढ़ विश्वास रहा है कि हमें शुद्ध खड़ी बोली की रचनाओं को ही हाईस्कूल के छात्रों के सामने रखना चाहिए। उनकी पाठ्य-पुस्तकों में संस्कृत, पुरानी हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के महान् कवियों की रचनाओं का परिचय खड़ी बोली में दिया जा सकता है, जिससे विद्यार्थी भारतीय परंपरा से अनभिज्ञ न रहें।

यूरोप की विकसित भाषाओं के कोशों में केवल शुद्ध परिनिष्ठित भाषा के शब्द मिलते हैं, किंतु हिंदी के कोशों में प्राय: पद्य में प्रयुक्त अवधी, ब्रज शब्द भी दिए जाते हैं। अब समय आ गया है कि आधुनिक हिंदी के कोशों में केवल परिनिष्ठित खड़ी बोली के शब्द सम्मिलित किए जाएँ। कुछ लोगों की आशंका है कि खड़ी बोली को प्रमुखता देने से बोलियों का अस्तित्व संकट में आ सकता है। यूरोप का इतिहास इसका प्रमाण है कि यह आशंका निर्मूल है। जंगल का प्राकृतिक सौंदर्य, खेतों की हरियाली, बरसाती नदियों की अठखेलियाँ—यह सब बना रहता है, किंतु सभ्यता के विकास की माँग है कि जंगल में सड़कें बनाई जाएँ, उद्यानों का निर्माण हो तथा नहरों की खुदाई हो। इसी तरह बोलियों में रहते हुए, साहित्यिक भाषाओं का निर्माण संस्कृति के विकास के लिए अनिवार्य है।

(इ) हिंदी के विकास की दिशाओं के विषय में विचार करें। खड़ी बोली एक अत्यंत सरल भाषा है। इसकी सरलता इसके स्वाभाविक प्रसार का मुख्य कारण है। व्याकरण में जटिलता नहीं है। उच्चारण तथा वर्तनी में पूर्ण सामंजस्य है। इस भाषा का कामचलाऊज्ञान प्राप्त करना इतना आसान है कि बहुत से लोग, न केवल इसका व्यवस्थित अध्ययन अनावश्यक समझते हैं बल्कि उसे और सरल बना देने के लिए शब्दों का लिंगभेद मिटाना, 'ने' का प्रयोग निकालना आदि प्रस्ताव में रखने से नहीं हिचकते। ऐसे लोगों से मेरा नम्र निवेदन है कि खड़ी बोली के चार सौ साल का स्वाभाविक विकास हम किसी समिति में बैठकर, प्रस्तावों के द्वारा नहीं बदल सकते हैं। जो फ्रेंच सीखते हैं, वे शब्दों का लिंगभेद मिटाने की कल्पना नहीं करते तो खड़ी बोली सीखनेवाले इस अपेक्षाकृत सरल भाषा में कृत्रिम परिवर्तन करने की बात क्यों सोचते हैं? दूसरी ओर, इधर कुछ हिंदी विद्वान् तथा साहित्यकार इतनी क्लिष्ट तथा कृत्रिम हिंदी लिखने लगे हैं कि खड़ी बोली की सबसे बड़ी विशेषता अर्थात् इसकी सुबोधगम्यता संकट में आ गई है। हिंदी के भावी विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि हम खड़ी बोली के इस नैसर्गिक गुण की रक्षा करें और उसे यथासंभव सरल ही बनाए रखें।

सामान्यतया किसी भाषा में नए शब्दों का निर्माण धीरे-धीरे उसी भाषा के प्रयोगकर्ताओं द्वारा होता है, किंतु आजकल विज्ञान आदि अनेक ऐसे विषयों पर हिंदी के पारिभाषिक शब्दों की जरूरत पड़ रही है—इस असाधारण परिस्थिति का सामना करने के लिए समितियों

द्वारा नए शब्दों का निर्माण अनिवार्य हो गया है। केंद्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित 'विज्ञान शब्दावली' हिंदी का सामर्थ्य प्रमाणित करता है। सब मिलाकर यह शब्दावली बोधगम्य है। हिंदी का हित इसमें है कि हमारे प्राध्यापक उन शब्दों का प्रयोग करें। बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सरकारें प्रशासन की शब्दावालियाँ प्रकाशित कर चुकी हैं—उनमें एकरूपता लाना तथा उन्हें कहीं अधिक सरल बनाना अत्यंत आवश्यक है।

खड़ी बोली की वर्तनी में जो अनेकरूपता है, वह खटकती अवश्य है, किंतु हिंदी के विरोधी उसे आवश्यकता से कहीं अधिक महत्त्व देते हैं। पंचमाक्षर और अनुस्वार का विकल्प तत्सम शब्दों में हलंत का प्रश्न 'आए' आदि शब्दों में स्वर अथवा 'य' का प्रयोग सर्वनाम तथा संज्ञा के साथ विभक्ति मिलने या अलग लिखने का विकल्प—ये सब बातें गौण ही हैं और इनमें बड़ी आसानी से एकरूपता लाई जा सकती है, किंतु इस स्थितिकरण के चलते हमें भाषा की प्रकृति के साथ अन्याय नहीं करना चाहिए। अनुस्वार तथा चंद्रबिंदु का प्रयोग उच्चारण पर आधारित है। दोनों को बनाए रखना चाहिए।

अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा हिंदी उपयोगी साहित्य की स्थिति अधिक संतोषजनक है। यह विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य-पुस्तकों के आँकड़ों से स्पष्ट है। संस्कृत की समस्त श्रेष्ठ रचनाओं का सरल हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के मौलिक साहित्य का अनुवाद सबसे अधिक हिंदी में प्राप्य है। हिंदी प्रकाशन-संस्थाओं तथा पाठकों की संख्या देखकर हमें विश्वास है कि निकट भविष्य में हिंदी के माध्यम से न केवल किसी भी विषय का अध्ययन संभव होगा बल्कि समस्त भारतीय ललित साहित्य का भी परिचय प्राप्त किया जा सकेगा। अत: इसमें कोई भी संदेह नहीं रह जाता है कि उत्तर भारत में हिंदी अंग्रेज़ी का स्थान ले सकती है और हमारे विद्यार्थियों के पूर्ण मौलिक विकास का साधन बनने में समर्थ है। अहिंदी प्रांतों में हिंदी का प्रचार हमारा उत्तरदायित्व नहीं है। हम सरल स्वाभाविक परिनिष्ठित हिंदी की उपादेयता बढ़ाते रहें। अन्य प्रांतों के विद्यार्थी लाभ उठाने के उद्देश्य से अपने-आप हिंदी सीखने लगेंगे और अंततोगत्वा हिंदी संपर्क भाषा न रहकर समस्त भारतीय संस्कृति की कुंजी बन जाएगी।

प्रिय छात्रगण! आप लोगों को परीक्षा में जो सफलता मिली है, उसके लिए मेरी बधाइयाँ स्वीकार करें। अध्ययन के अगले चरण की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। इस महान् देश का भविष्य आप लोगों के हाथ में है। आप लोग देश की सेवा करते हुए अपना जीवन सार्थक बना लें। मैं जयशंकर प्रसाद के शब्दों में आप लोगों को आशीर्वाद देता हूँ—

अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो॥

'हिंदी चेतना' से साभार

☐

एक जाति या एक राष्ट्र में जो एक सूत्र होता है, सबको बाँध रखनेवाला, वही संस्कृति है।

— किशोरीदास वाजपेयी

❋ ❋ ❋

हमारा गौरव कभी न गिरने में नहीं है, अपितु गिरकर हर बार उठने में है।

— कन्फ्यूशस

❋ ❋ ❋

गुणों का ही सर्वत्र सम्मान होता है, गुणी के वंश का नहीं।

— चाणक्य

2

अमेरिका में हिंदी शिक्षण की लहर : हम कितना आगे कितना पीछे

✍ डॉ. सुरेंद्र गंभीर

अमेरिका में हिंदी-शिक्षण में एक नई लहर आई है। 6 फरवरी, 2006 को अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज बुश ने नेशनल सिक्योरिटी लैंगवेज इनिशिएटिव नाम की एक भाषा-नीति की घोषणा की थी। इस नई नीति के तहत सरकारी विद्यालयों के विदेशी भाषा शिक्षण कार्यक्रम में दस नई भाषाएँ क्रमशः जोड़ने के लिए सरकारी समर्थन देने के लिए सरकार ने अपनी प्रतिबद्धता स्पष्ट की है। इन भाषाओं में हिंदी भी एक है। अन्य भाषाएँ थीं—चीनी, अरबी, उर्दू, पर्शियन, तुर्की, पुर्तगाली, स्वाहिली, रूसी और दरी (दारी)। कार्यक्रम सन् 2007 में चीनी और अरबी से शुरू हुआ। 2008 में हिंदी, उर्दू और पर्शियन जोड़ी गईं। सन् 2009 में तुर्की और स्वाहिली जुड़ीं और फिर दो साल बाद दरी और रूसी को भी इस सूची में सम्मिलित कर लिया गया। इनमें हिंदी, चीनी और पुर्तगाली भारत, चीन और ब्राजील की सुधरती हुई आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर सम्मिलित की गई हैं और अन्य भाषाएँ अन्य कारणों के साथ-साथ विशेष रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से जोड़ी गईं। आर्थिक दृष्टि से उभरते देशों से निकट भविष्य में व्यापारिक संबंधों को मजबूत करने के लिए वहाँ की भाषा और संस्कृति के जानकार अगली पीढ़ी में पैदा करने की यह दूरदृष्टि है। स्टारटॉक का विस्तार बहुत प्रभावशाली रहा है। सन् 2007 में चीनी और अरबी के 34 कार्यक्रम संपन्न हुए। सन् 2008 में तीन भाषाएँ और जुड़ने के बाद यह संख्या 81 जा पहुँचीं और फिर अन्य भाषाओं के समावेश के साथ कार्यक्रमों की यह संख्या क्रमशः 116, 134 से गुजरती हुई सन् 2011 में 156 तक आ पहुँची हैं। संख्या के साथ-साथ यह भी बहुत प्रभावशाली तथ्य है कि अमेरिका के 50 प्रदेशों में से 46 प्रदेशों में स्टारटॉक के कार्यक्रम संपन्न हुए हैं। स्टारटॉक में हिंदी की स्थिति में भी हर सन् प्रगति हुई है। इसके आँकड़े आगे प्रस्तुत किए जाएँगे।

अमेरिका में आजकल हिंदी जानने का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इसका श्रेय जहाँ एक तरफ भारतीय मूल की उन अनेक संस्थाओं को है जो भारतीय मूल के युवा-वर्ग के लिए बड़े नियमित ढंग से हिंदी के स्कूल अलग-अलग प्रदेशों में चला रही हैं वहीं अमरीकी सरकार को भी इसका श्रेय जाता है जिसने अपनी भाषा-नीति को स्पष्ट करते हुए हिंदी को सरकारी स्कूलों के विदेशी-भाषा कार्यक्रम में एक विकल्प के रूप में रखने की घोषणा की है। ये गैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएँ भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों का ज्ञान बच्चों को देती हैं, वही सरकारी तंत्र के तहत चलनेवाले कार्यक्रमों में भाषा के साथ उसकी अभिन्न सहचरी संस्कृति के भौतिक और वैचारिक पक्षों को समझने-समझाने की अनिवार्यता पर भी बल है। भाषा-संबंधी शोध

- डॉ. सुरेंद्र गंभीर 35 वर्षों से अधिक समय तक युनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिल्वेनिया, कॉरनेल युनिवर्सिटी और युनिवर्सिटी ऑफ विसकांसिन में भाषाविज्ञान पढ़ा चुके हैं।
- इनके शोध का विशेष क्षेत्र रहा है—कैरिबियन क्षेत्र में गयाना, ट्रिनिडाड, सूरीनाम, प्रशांत महासागर में फिजी, हिंद महासागर में मॉरीशस। ये अनेक राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय समितियों के अध्यक्ष और बीज-वक्ता रह चुके हैं।
- इनकी 6 पुस्तकें और 100 से भी अधिक शोध-लेख उपलब्ध हैं जिनमें भारतीय भाषाओं के वर्तमान और भविष्य की स्थिति को लेकर विशेष विचार-मंथन किया गया है।
- डॉ. गंभीर ने अमेरिका में दूसरी पीढ़ी के लोगों में अंग्रेजी से इतर दूसरी भाषा के अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए शिविरों का आयोजन भी किया।

पर आधारित इस सरकारी सोच का दृढ़ मत है कि भाषा और संस्कृति में अटूट संबंध है और भाषा को समझने और उसका सटीक प्रयोग करने के लिए उससे जुड़ी सांस्कृतिक मान्यताओं का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है और उसी प्रकार स्थानीय संस्कृति को समझने के लिए भी स्थानीय भाषा का माध्यम ही सशक्त माध्यम है। इस प्रकार भाषा और संस्कृति में अन्योन्याश्रित संबंध होने के कारण एक का अस्तित्व दूसरे के बिना अकल्पनीय है।

अमेरिकन सरकार की इस नई नीति को कार्यान्वित करने के लिए सन् 2007 में एक नए राष्ट्रीय कार्यक्रम की घोषणा हुई। राष्ट्रीय स्तर का यह नया कार्यक्रम स्टारटॉक, वाशिंगटन डी.सी. के पास स्थित नेशनल फॉरन लैंगवेज सेंटर का हिस्सा बना। स्टारटॉक का विभिन्न भाषाओं से जुड़ी स्वयंसेवी संस्थाओं और सरकारी स्कूलों के साथ सीधा संबंध है। स्टारटॉक के माध्यम से सरकार से प्राप्त आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। ग्रीष्मकालीन सत्र (मई से अगस्त) के दौरान उपर्युक्त भाषाओं में युवा–वर्ग के लिए आयोजित इन भाषा–कार्यक्रमों को भरपूर सहायता मुहय्या की जाती है। इन भाषा–कार्यक्रमों में समाज सभी वर्गों के युवाओं का स्वागत होता है, परंतु कुछ भाषाओं में हेरिटेज शिक्षार्थियों की संख्या अधिक रहती है। स्टारटॉक के उच्च–स्तरीय प्रशासनिक अधिकारी स्वयं भाषा–शिक्षण क्षेत्र के शोध और विधियों में बड़े निष्णात हैं। वे अन्य अमरीकी विद्वानों के साथ मिलकर इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए उपयुक्त मार्गदर्शन करते हैं। हिंदी में भी ये कार्यक्रम वर्षानुसन् पनप रहे हैं। इनके बारे में कुछ आँकड़े इस लेख में आगे प्रस्तुत किए जाएँगे।

अमेरिका में आजकल हिंदी जानने का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है। इसका श्रेय जहाँ एक तरफ भारतीय मूल की उन अनेक संस्थाओं को है जो भारतीय मूल के युवा-वर्ग के लिए बड़े नियमित ढंग से हिंदी के स्कूल अलग-अलग प्रदेशों में चला रही हैं वहीं अमरीकी सरकार को भी इसका श्रेय जाता है जिसने अपनी भाषा-नीति को स्पष्ट करते हुए हिंदी को सरकारी स्कूलों के विदेशी-भाषा कार्यक्रम में एक विकल्प के रूप में रखने की घोषणा की है। ये गैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्थाएँ भाषा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों का ज्ञान बच्चों को देती हैं, वही सरकारी तंत्र के तहत चलनेवाले कार्यक्रमों में भाषा के साथ उसकी अभिन्न सहचरी संस्कृति के भौतिक और वैचारिक पक्षों को समझने-समझाने की अनिवार्यता पर भी बल है।

सामाजिक स्तर पर अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ अमेरिका के युवा–जगत के लिए हिंदी भाषा और उससे संबंधित संस्कृति की कक्षाएँ चला रही हैं। इन संस्थाओं में विशेष उल्लेखनीय संस्थाएँ हैं—हिंदी यू.एस.ए., बाल–विहार, यू. एस. हिंदी एसोसिएशन, चिन्मय मिशन, बाल गोकुलम्, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, विश्व हिंदी न्यास, विद्यालय। इन संस्थाओं में बड़े निस्स्वार्थ भाव से और बड़ी लगन से काम करनेवालों की कमी नहीं है। इसके अतिरिक्त सन् 2009 में युवा हिंदी संस्थान का निर्माण हुआ जिसके तत्वावधान में सन् 2010 में एटलांटा (जार्जिया प्रदेश) और 2011 में न्यूयार्क (डेलेवेयर प्रदेश) में युवाओं को हिंदी भाषा और संस्कृति सिखाने के लिए विशाल शिविरों का आयोजन किया गया। ये शिविर 10–10 दिन तक चले। सन् 2012 में इसी प्रकार के एक विशाल शिविर का आयोजन पेन्सिल्वेनिया में करने के लिए काम आरंभ हो चुका है। स्वयंसेवी संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ सरकारी विद्यालयों में भी हिंदी का औपचारिक शिक्षण शुरूहो चुका है। इस क्षेत्र में टेक्सस, न्यू जर्सी और न्यूयार्क प्रदेश के कुछ स्कूल आगे हैं। जहाँ तक विश्वविद्यालयों का संबंध है–अमेरिका के लगभग 100 महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। लगभग 4 सन् पूर्व अमेरिका सरकार ने यूनिवर्सिटी ऑफ

टेक्सस (ऑस्टन नगर) को हिंदी की शिक्षा को अमेरिका में बढ़ाने के लिए एक विशाल हिंदी कार्यक्रम के लिए एक बहुत बड़ी राशि का अनुदान दिया। यहाँ हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप नामक कार्यक्रम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज लगभग 60 विश्वविद्यालयों की छत्र-संस्था पिछले लगभग 50 वर्षों से विभिन्न भारतीय भाषाएँ पढ़ने निमित्त अमरीकी विद्यार्थियों के लिए विशेष भाषा-कार्यक्रम भारत में चलाती है। इन कार्यक्रमों में हिंदी का कार्यक्रम जो जयपुर में चलता है सबसे बड़ा है, जहाँ पूरे सन् भाषा-शिक्षण-विधियों में आधुनिकतम तरीकों से उच्च-स्तरीय और प्रशिक्षित शिक्षकों की देख-रेख में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त अमेरिका की सरकार ने पिछले दो वर्षों से दो और नए कार्यक्रमों की घोषणा की है जिनके अंतर्गत कॉलेज और हाई स्कूल के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति पर भारत भेजा जाता है। कुछ अमरीकी नागरिक अपने पैसे से हिंदी पढ़ने के लिए भारत जाते हैं। इस प्रकार के विद्यार्थियों के लिए मसूरी में लैंगडोर का स्कूल एक प्रतिष्ठित केंद्र माना जाता है। इसी सन् यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिल्वेनिया में बिजनेस की पढ़ाई के लिए जगत-विख्यात वार्टन स्कूल ने अपने एम.बी.ए. के उन विद्यार्थियों के लिए व्यवसायिक हिंदी का एक विशेष पाठ्यक्रम शुरू किया है जो भारत के बारे में विशेषज्ञता प्राप्त करना चाहते हैं। वार्टन स्कूल को देखकर अन्य बिजनेस स्कूलों ने भी इस दिशा में सोचना आरंभ कर दिया है।

इन सब तथ्यों से हिंदी के बारे में उभरती रुचि अनेकानेक शैक्षिक केंद्रों और सरकारी नीतियों में बड़े स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। भारत की अंत:प्रांतीय राजभाषा के रूप में और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर संख्या की दृष्टि से दूसरे (और कुछ विद्वानों के अनुसार तीसरे) स्थान पर आसीन इस महत्त्वपूर्ण भाषा के लिए अमेरिका जैसे विकसित देश में इस प्रकार का विस्तार पाना बड़े गौरव की बात है। परंतु इस तथ्यपरक मानचित्र का एक दूसरा पक्ष है जो विचारणीय है। अमेरिका में हिंदी इतना आगे नहीं बढ़ पा रही जितना दूसरी भाषाएँ इस सकारात्मक वातावरण का लाभ उठा रही हैं।

वर्तमान अमरीकी संदर्भ में भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की स्थिति दुनिया की अन्य भाषाओं के सामने काफी कमजोर नजर आती है। हम यहाँ हिंदी की तुलना चीनी, जापानी और अरबी से करेंगे। सबसे पहले देखते हैं कि चीनी और जापानी भाषाओं की तुलना में विश्वविद्यालय के स्तर पर हिंदी की क्या स्थिति है। मॉडर्न लैंगवेज एसोसिएशन हर तीन से चार सन् में विश्वविद्यालय के स्तर पर विभिन्न भाषाओं को पढ़नेवाले छात्रों के आँकड़े एकत्र करती है। नीचे उपर्युक्त चार भाषाओं के आँकड़े दिए जा रहे हैं जिनसे तुलनात्मक स्थिति स्वयं स्पष्ट हो जाती है।

	सन् 2002	सन् 2006	सन् 2009
हिंदी	1857	2339	2846
चीनी	34227	51695	61178
जापानी	52257	66635	73456
अरबी	10584	23997	35393

भारत की सब भाषाओं की संख्या को भी इन आँकड़ों में जोड़ लें तो हम बहुत ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाते। भारत की बारह और भाषाएँ जो अमेरिका के अलग-अलग केंद्रों में पढ़ाई जाती हैं उनके पढ़नेवालों की संख्या भी बहुत थोड़ी है। संस्कृत, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगाली, तमिल, तेलगु, कन्नड, मलयालम, वैदिक संस्कृत, पाली और उर्दू की कुल संख्या इस प्रकार है—

सन् 2002	सन् 2006	सन् 2009
964	1309	1584

इन आँकड़ों में 72 से 75 प्रतिशत संस्कृत, पंजाबी और उर्दू के आँकड़े हैं। संस्कृत की पढ़ाई धर्म, इतिहास आदि के शोध के कारण से है, उर्दू की पढ़ाई राष्ट्रीय सुरक्षा कारणों से है और पंजाबी की पढ़ाई स्थानीय सिख समुदाय के आर्थिक समर्थन के कारणों से आगे मानी जाती है। लेकिन बाकी भारतीय भाषाओं के छात्रों की संख्या बिल्कुल नगण्य है। कहीं दो हैं तो कहीं चार हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि विदेशियों के लिए भारत की भाषाएँ कम आकर्षक हैं।

अब हम स्टारटॉक के आँकड़े देख सकते हैं—

छात्र-कार्यक्रमों की संख्या

	2007	2008	2009	2010	2011
हिंदी	–	4	11	12	14
चीनी	18	37	45	54	63
अरबी	8	19	26	20	24

जापानी भाषा स्टारटॉक कार्यक्रम का हिस्सा नहीं है इसलिए उसके आँकड़े यहाँ शामिल नहीं हैं।

शिक्षक-प्रशिक्षण-कार्यक्रमों की संख्या

	2007	2008	2009	2010	2011
हिंदी	–	4	5	5	10
चीनी	17	27	33	44	49
अरबी	13	16	18	14	21

ये दो प्रकार के कार्यक्रमों की जानकारी थी। अब हम देखेंगे कि इन कार्यक्रमों में कितने-कितने शिक्षार्थियों ने भाग लिया—

छात्र-कार्यक्रमों में भाग लेने वाले छात्रों की कुल संख्या

	2007	2008	2009	2010	2011
हिंदी	–	57	255	386	580
चीनी	681	2079	3143	4242	5737
अरबी	193	431	820	632	803

शिक्षक-प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में भाग लेनेवाले शिक्षार्थियों की कुल संख्या

	2007	2008	2009	2010	2011
हिंदी	–	35	48	60	47
चीनी	292	702	776	991	986
अरबी	156	293	317	263	323

कुल मिलाकर चीनी और जापानी हिंदी से कई गुणा आगे हैं। चीनी और जापानी भाषाओं की सफलता के दो बड़े रहस्य हैं—एक तो यह कि उनके प्रवासी समाजों में अपनी भाषा के प्रति बहुत उत्साह है और दूसरा बड़ा कारण है उन देशों की सरकारों का सुनियोजित बौद्धिक, भावनात्मक और आर्थिक समर्थन। चीन की सरकार के शिक्षा मंत्रालय से पोषित एक संस्था है जिसका अंग्रेज़ी नाम ऑफिस ऑफ चाइनीज लैंगवेज इंटरनेशनल है जो संक्षेप में हानबान के नाम से जानी जाती है। इसका काम है दूसरे देशों में चीनी भाषा की पढ़ाई का संवर्धन। इस संस्था का मिशन (स्टेटमेंट) चीनी भाषा और संस्कृति का अन्य देशों में प्रचार-प्रसार है। इसका बजट बहुत बड़ा है और इसके काम को आगे बढ़ाने के लिए दुनिया के अनेक देशों में स्थानीय संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। इन संस्थाओं में एक कनफ्यूशस इंस्टीट्यूट है जो अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों के परिसर में विद्यमान है। भाषा की दृष्टि से यह संस्था स्कूलों और कॉलेजों को चीनी भाषा के पाठ्यक्रम, पाठ्य सामग्री का संग्रहण और प्रशिक्षित शिक्षकों की आपूर्ति में मदद करती है। इसके अलावा न्यूयार्क में एशिया इंस्टीट्यूट में चीनी भाषा की पढ़ाई को आगे बढ़ाने के लिए एक विशेष विभाग है। इसी प्रकार अमेरिका में कॉलेज बोर्ड नाम की एक ग़ैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्था है जो सामान्य से सब विद्यार्थियों को कॉलेज की पढ़ाई के लिए सहायता प्रदान करती है, परंतु यहाँ भी चीनी भाषा को अमेरिका के शिक्षा-क्षेत्र में फैलाने के लिए तीन विशिष्ट कार्यक्रमों का आयोजन करती है और ये कार्यक्रम हैं—कनफ़्यूशस और चाईनीज प्रोग्राम, गेस्ट टीचर प्रोग्राम और चाईनीज ब्रिज डेलिगेशन। इस कार्यक्रम के तहत सैकड़ों शिक्षक चीन से हर साल लाए जाते हैं। ये कुछ बड़े-बड़े उदाहरण हैं।

इसी प्रकार जापानी भाषा के संवर्धन के लिए भी संस्थागत कार्यक्रमों का एक विस्तृत ब्यौरा पेश किया जा सकता है। इसकी सबसे बड़ी संस्था द जापान फाउंडेशन है। इसके अधीन 'द जैपनीज लैंगवेज इंस्टीट्यूट' एक विस्तृत विश्वव्यापी कार्यक्रम है। इसका बजट भी बहुत बड़ा है और जापानी संस्कृति और भाषा का शैक्षिक क्षेत्रों में प्रचार-प्रसार इसका लक्ष्य है। अमेरिका में इसकी दो बड़ी शाखाएँ हैं—एक कैलिफोर्निया प्रदेश के लॉस एंजलिस नगर में और दूसरी न्यूयार्क में। दोनों शाखाएँ विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त जापानी भाषा-कार्यक्रमों के प्रसार और अनेक सशक्तीकरण

में विशिष्ट सहायता और योगदान प्रदान करती हैं। अब पिछले कई वर्षों से कोरिया भी इस दिशा में बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है जिसके फलस्वरूप अमरीकन विश्वविद्यालयों में कोरियन भाषा की पढ़ाई बहुत प्रगति कर रही है (सन् 2009 में कोरियन भाषा पढ़नेवालों की संख्या 8511 थी)। इस प्रकार के कार्यक्रम बहुत से दूसरे देश भी चलाते हैं, जिनमें फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन आदि उल्लेखनीय नाम हैं। इन देशों की एलियंस फ्रांसे, गोइथे इंस्टीट्यूट, ब्रिटिश कौंसिल आदि संस्थाएँ हैं जिनकी गतिविधियों में भाषा का महत्त्वपूर्ण विषय रहता है।

इन सब देशों की तुलना में भारत भाषा-विषय के प्रति उदासीन है। लड़खड़ाती अंग्रेज़ी के मोह ने भारतीय जन-मानस को जकड़ रखा है और यही कारण लगता है कि भारतीय भाषाओं का शिक्षण-प्रशिक्षण भारत में भी कमजोर है और दूसरे देशों में भी। भारत देश की आंतरिक प्रगति के लिए और विश्व-मंच पर भारत के सम्मान्य स्थान के लिए इसका निहितार्थ क्या है यह एक विचारणीय विषय है।

इस लेख का समापन मैं एक व्यक्तिगत अनुभव से करूँगा। यह व्यक्तिगत अनुभव स्व-भाषा के प्रति भारतीय और चीनी सोच को एकदम स्पष्ट कर देगा। शायद दो साल पहले की बात है कि अमेरिका के एक सरकारी स्कूल ने स्टारटॉक के लिए दो आवेदन-पत्र एक साथ दिए थे—एक हिंदी के लिए और एक चीनी के लिए। उनके आवेदन-पत्रों की प्रस्तुति बहुत प्रभावी रही होगी जिसके कारण स्टारटॉक के राष्ट्रीय कड़े मुकाबले में इस स्कूल के दोनों आवेदन स्वीकृत हो गए। परिणाम पता लगने पर स्कूल के अधिकारियों के हर्ष का पारावार न रहा। बड़े उत्साह और बड़े उल्लास का वातावरण बनना शुरू हुआ। उन्होंने अपने उत्साह की अभिव्यक्ति के रूप में भारतीय कौंसलावास और चीनी कौंसलावास को एक-एक पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने हिंदी और चीनी के अपने नए ग्रीष्मकालीन कार्यक्रमों का यह सुखद समाचार बाँटा। चीनी दूतावास से कुछ दिनों में बधाई का जवाब आया और उस पत्र के साथ कौंसलाधीश ने दस हजार डॉलर का चैक भी भेज दिया और कहा कि चीनी भाषा के कार्यक्रम को और अच्छा बनाने के लिए कृपया आप इस धन का प्रयोग करें। स्कूल के अधिकारियों का उत्साह दुगना-चौगुना हो गया। वे भारतीय कौंसलावास से भी बधाई के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे लेकिन वहाँ से कोई उत्तर ही नहीं आया। जब यह घटना हमें बताई गई तो हम उनके सामने कुछ शर्मिंदा भी हुए और अपने मन-ही-मन में फूट-फूट कर रोए भी।

यूनिवर्सिटी ऑफ पेन्सिल्वेनिया

□

हमारी अपनी अज्ञानता का ज्ञान ही बुद्धिमत्ता के मंदिर का स्वर्ण सोपान है।

— अज्ञात

❁ ❁ ❁

बुद्धिमान् दूसरों की त्रुटियों से शिक्षा लेते हैं, मूर्ख अपनी त्रुटियों से।

— कहावत

3

हिंदी के प्राचीनतम व्याकरण की खोज एवं स्वरूप

✍ **तेज कृष्ण भाटिया**

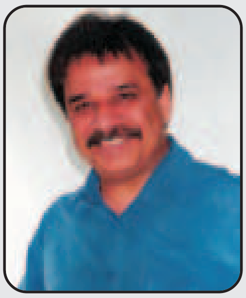

- प्रो. तेज कृष्ण भाटिया भाषा विज्ञान के प्रोफेसर तथा सीराक्यूज विश्वविद्यालय, सीराक्यूज, न्यूयॉर्क में साउथ एशियन लैंग्वेजिज के निदेशक हैं।
- प्रो. भाटिया भाषाई अध्ययन प्रोग्राम के निदेशक तथा संज्ञानात्मक विज्ञान के कार्यवाहक निदेशक रह चुके हैं। वे लोकप्रिय टीवी अध्ययन केंद्र, एस.आई. न्यू हॉउस स्कूल ऑफ पब्लिक कम्यूनिकेशन में फैलो रह चुके हैं। वे अनुसंधान में चांसेलर्स सितेशन अवार्ड फॉर एक्सीलेंस के भी हकदार हैं।
- उन्होंने इलिन्वा विश्वविद्यालय से भाषाविज्ञान में एम.ए तथा पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। जापान, अमेरिका, भारत तथा अन्य देशों के विश्वविद्यालयों में प्रो. तेज के. भाटिया विजिटिंग प्रोफेसर रहे हैं।

बात जुलाई सन् 1981 की थी। सुप्रसिद्ध भारतीय भाषा वैज्ञानिक डॉ. सुनीति कुमार चैटर्जी और हॉलैंड के विद्वानों के लेखन के आधार पर मुझे हिंदी के प्राचीनतम व्याकरण की पांडुलिपि की खोज की धुन सवार हुई। जमाना इंटरनेट का नहीं था। पांडुलिपि की खोज में यूरोपीय पुस्तकालयों में जाना और उसे ढूँढ़ निकालना समय और आर्थिक विषमता की बात थी। डॉ. चैटर्जी के एक लेख से मुझे यह भी लगने लगा था कि शायद एक से अधिक पांडुलिपियों का मिलना भी संभव हो, परंतु विडंबना की बात यह थी कि जितना मैंने पांडुलिपियों को खोजने का प्रयत्न किया, उतना ही मेरा सपना धूमिल होता जा रहा था। निराश होकर मैंने अपनी पत्नी से कहा, ''अगर यहाँ भी कोई प्रति न मिली तो मैं अपनी इस कोशिश को तलाक दे दूँगा।'' स्थान का नाम था लाइउन, हॉलैंड। मेरी पत्नी को मेरी सनक का पूरा न होने का कोई संदेह नहीं था। उसने मेरा पूरा समर्थन करते हुए कहा, ''खैर, अब तो पैसे भी ज्यादा नहीं रहे। यह अभियान अब खत्म ही समझो।''

मेरी प्रसन्नता का कोई ठिकाना ही न रहा, जब आरकाइव (Archive) पर पहुँचकर पता चला कि मेरा सपना साकार होनेवाला है। पांडुलिपि तो जरूर है, परंतु प्रश्न यह था कि पांडुलिपि दुर्लभ होने की वजह से मुझे उसकी प्रति मिल भी सकेगी या मुझे यहाँ बैठकर उसकी नकल करनी पड़ेगी। Archive का अध्यक्ष सचमुच बहुत ही नेक आदमी था। उसने बताया कि पांडुलिपि Archive से बाहर नहीं जा सकती, परंतु वह मेरे लिए उसकी एक जीरोक्स कॉपी बनवा सकता है। मैंने न केवल एक जीरोक्स कॉपी बनवाई, एक माइक्रोफिल्म भी बनवा ली। पांडुलिपि को देखकर मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा ही नहीं रही। सिर्फ पैसे की ही बात है। न जाने ऐसा मौका कब मिलेगा? उसी दिन जीरोक्स और माइक्रोफिल्म की कॉपी बनवाकर मैंने सीराक्यूज के प्रस्थान की तैयारी की। मैंने सोचा था कि पांडुलिपि के मिलते ही मेरी चुनौतियों का अंत हो जाएगा, लेकिन यह एक और नए दौर की शुरुआत थी। पांडुलिपि ढूँढ़ना तो बच्चों का खेल सा लगने लगा। लगभग तीस वर्ष और लगे इस प्रोजेक्ट (Project) को समाप्त करने में। अंतत: टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो.के. मचीदा के सौजन्य से यह प्रोजेक्ट सफलतापूर्वक समाप्त हो पाया। इसका प्रकाशन भी टोकियो विश्वविद्यालय से तीन खंडों में हुआ।

हिंदी के प्राचीनतम व्याकरण की खोज में न तो मैं पहला शोधकर्ता था और न ही मुझे अत्यधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

खोज का इतिहास तो लंबा है, लेकिन शुरू में यह कह देना ही उचित होगा कि भारतीय एवं यूरोपीय भाषा वैज्ञानिकों के अथक प्रयत्नों के कारण हिंदी भाषा का सौभाग्य था कि हिंदी भाषा के प्राचीनतम व्याकरण की पांडुलिपि नष्ट होने से बच गई।

शायद यह सुनकर आपको आश्चर्य होगा कि हिंदी का प्राचीनतम व्याकरण न तो हिंदी, संस्कृत या अंग्रेजी में लिखा गया और न ही इसका रचयिता भारतीय या अंग्रेज था। यहाँ तक कि इसके लेखन की प्रेरणा में संस्कृत के यशस्वी वैयाकरण—पाणिनि (अष्टाध्यायी) की

परंपरा का योगदान भी नगण्य था। हिंदी के प्राचीनतम व्याकरण के रचयिता कौन थे ? उन्होंने यह व्याकरण कब और किस भाषा में लिखा ? इन प्रश्नों का उत्तर देना आज संभव है, क्योंकि आज हमारे पास पांडुलिपि है और प्रत्यक्ष (Direct) प्रमाण है। सन् 1930 तक विद्वानों का एकमत था कि हिंदी के प्राचीनतम व्याकरण की पांडुलिपि नष्ट हो चुकी है। इस व्याकरण की जानकारी केवल अप्रत्यक्ष प्रमाण (Indirect) के आधार पर दी जा सकती थी।

अत: सन् 1930 तक प्राचीनतम व्याकरण के रचयिता व्याकरण की तिथि एवं भाषा और इसका स्वरूप विवाद का विषय बना रहा। आज प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर इन मुख्य चार प्रश्नों का उत्तर निस्संदेह रूप में देना संभव है, क्योंकि इन चार प्रश्नों का समाधान व्याकरण की पांडुलिपि की खोज के इतिहास से अटूट रूप से जुड़ा है, इसलिए खोज का इतिहास स्वत: महत्त्वपूर्ण है। इतना ही नहीं, इसका इतिहास रोचक भी है। खोज का घटनाक्रम निम्नलिखित है। घटनाक्रम के विश्लेषण से लेखक, तिथि और भाषा संबंधी प्रश्नों का भी समाधान हो जाएगा।

प्राचीन व्याकरण की खोज एवं स्वरूप के इतिहास में एक नया मोड़ हॉलैंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. जे. वोगल (Dr. J.Vogel) के लेखन से आया। उन्होंने प्रो. चैतर्जी को पत्र लिखकर दो आधारभूत विषयों की भ्रांति का निवारण किया। एक तो यह कि प्राचीनतम व्याकरण शिलान्यास 1715 से कहीं पहले ही हो चुका था। दूसरा तथ्य यह है कि व्याकरण लुप्त नहीं हुआ है। केटेलर के मूलभूत व्याकरण की प्रति Royal Archive of Netherland में सुरक्षित है।

1. रचयिता कौन? बेंजामिन शुल्त्ज अथवा केटेलर?

सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने हिंदी व्याकरण की परंपरा पर प्रकाश डालते हुए 1893 में रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के सम्मेलन में बताया कि हिंदी का प्रथम व्याकरण बेंजामिन शुल्ज ने 1745 में लिखा।

ग्रियर्सन के ठीक एक वर्ष बाद (1894) इतालवी विद्वान् इमिलिओ तेजा ने (Emilio Teza) Reale Accademi a dei Lieci of Rome के सम्मेलन में ग्रियर्सन के निष्कर्ष का निवारण दो तथ्यों के आधार पर किया। 1. तेज़ा ने बताया हिंदी का प्राचीनतम व्याकरण शुल्ज का लिखा हुआ नहीं हो सकता, क्योंकि शुल्ज ने स्वत: अपनी पुस्तक की भूमिका में केलेटर के व्याकरण की चर्चा की है, जिसका प्रकाशन डेविड मिल्ज की संपादित पुस्तक—Dissertation Selecte में हुआ था। डेविड मिल्ज ने इस पुस्तक में केटेलर के हिंदी व्याकरण की रूपरेखा का प्रकाशन लैटिन भाषा में किया । 2. तेज़ा ने यह भी बताया कि शुल्ज के व्याकरण की तिथि सन् 1743 थी, यानी कि शुल्ज का व्याकरण ग्रियर्सन की बताई तिथि (1745) से दो वर्ष पूर्व का था।

तेज़ा के पेपर से पहली बार प्रमाणित हुआ कि केटेलर का व्याकरण कोई किवदंती न थी बल्कि एक सत्य था, परंतु इस सत्य का आधार अप्रत्यक्ष प्रमाण था, क्योंकि न तो शुल्ज और न ही तेज़ा ने स्वयं केटेलर के व्याकरण का अवलोकन या अध्ययन किया था।

सन् 1895 में तेजा की मान्यता को ठीक ठहराते हुए, सर ग्रियर्सन ने अपनी त्रुटि को Asiatic Society of Bengal की proceedings (1895) में ठीक किया। अपनी अभूतपूर्व पुस्तक—Linguistic Survey of India (भारतीय भाषा सर्वेक्षण) में डेविड मिल्ज् की पुस्तक पर आधारित केटेलर के व्याकरण की बहुत ही संक्षिप्त रूप से चर्चा की।

2. तिथि का प्रश्न

हालाँकि अब तक मूलभूत रूप से यह प्रमाणित हो चुका था कि हिंदी के प्रथम व्याकरण के लेखक केटेलर थे, लेकिन अभी तक व्याकरण की तिथि, भाषा और व्याकरण के स्वरूप का निर्धारण न हो पाया था। अत: इन तीन प्रश्नों पर विवाद जारी था।

सर ग्रियर्सन ने केटेलर के व्याकरण की तिथि 1715 बताई, क्योंकि किसी भी विद्वान् ने केटेलर के व्याकरण का अवलोकन नहीं किया था, इसलिए उन्होंने तिथि को अनुमानित रूप में बताया। ग्रियर्सन के अनुमान के अनुसार, व्याकरण 1715 में लिखी गई। ऐसे अनुमान का कारण यह था कि केटेलर की मृत्यु 1716 में हुई। जैसाकि केटेलर के व्याकरण के मुख्य पृष्ठ (चित्र देखें) से स्पष्ट है कि व्याकरण 1698 तक तैयार हो चुका था।

3. भाषा, तिथि एवं पांशुलिपि का समाधान

भारत के सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक तथा राष्ट्रीय प्रोफेसर डॉ. सुनीति कुमार चैटर्जी ने 1931 में 'हिंदुस्तानी का प्राचीनतम व्याकरण' नामक लेख प्रकाशित किया। इस लेख का आधार डेविड मिल्ज का केटेलर के व्याकरण का लैटिन अनुवाद था। लेख प्रकाशन से दस वर्ष पूर्व, डेविड मिल्ज की पुस्तक डॉ. चैटर्जी को इंग्लैंड की एक पुरानी पुस्तकों की दुकान में मिली। इस लेख में डॉ. चैटर्जीजी ने ग्रियर्सन की तिथि को मान्यता देते हुए केटेलर के व्याकरण की तिथि 1715 को पुनर्राधारित किया। इसी लेख में उन्होंने डेविड मिल्ज की पुस्तक के विश्लेषण के आधार पर पुन: निर्धारित किया कि केटेलर का व्याकरण डच भाषा में लिखित था। उन्होंने यह भी आशंका प्रकट की कि इस व्याकरण का लोप हो गया है और अब केवल डेविड मिल्ज का लैटिन अनुवाद मात्र ही बच रहा है, जिसका प्रकाशन सन् 1743 में हुआ था।

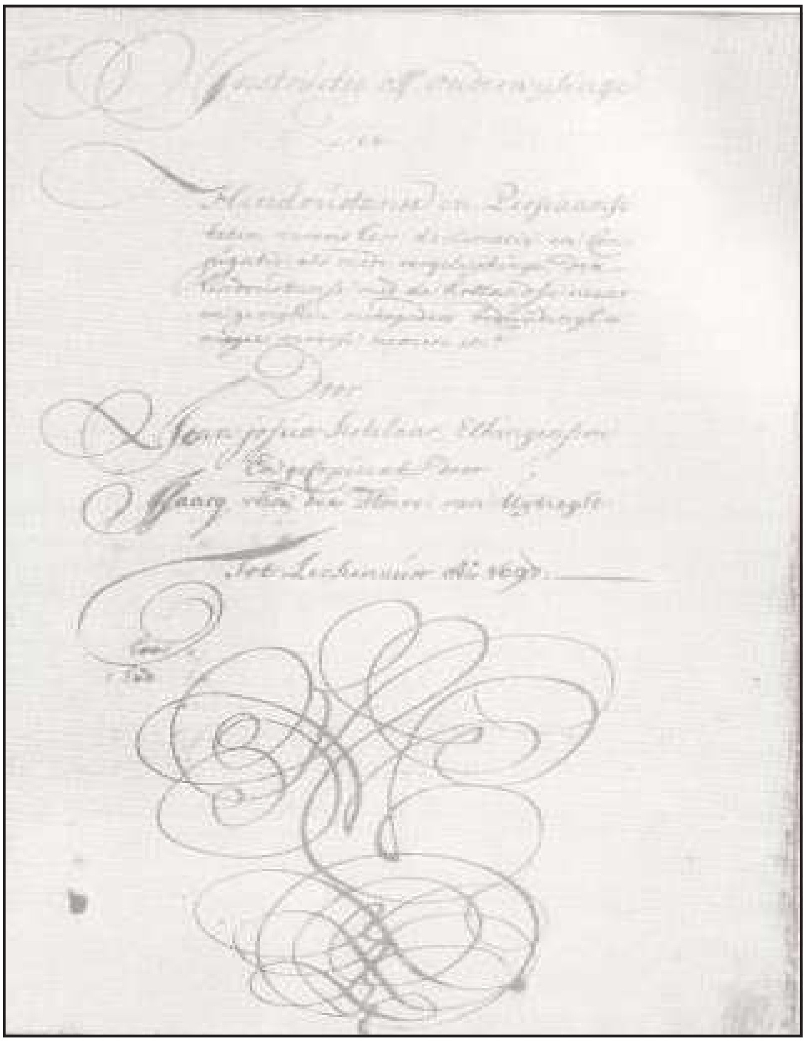

प्राचीन व्याकरण की खोज एवं स्वरूप के इतिहास में एक नया मोड़ हॉलैंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. जे. वोगल (Dr. J.Vogel) के लेखन से आया। उन्होंने प्रो. चैटर्जी को पत्र लिखकर दो आधारभूत विषयों की भ्रांति का निवारण किया। एक तो यह कि प्राचीनतम व्याकरण का शिलान्यास 1715 से कहीं पहले ही हो चुका था। दूसरा तथ्य यह है कि व्याकरण लुप्त नहीं हुआ है। केटेलर के मूल व्याकरण की प्रति Royal Archive of Netherland में सुरक्षित है। यद्यपि प्रो. चैटर्जी ने तत्पश्चात् अपने एक और लेख में डॉ. वोगल के पत्र-व्यवहार की चर्चा करते हुए पुन:श्च बताया कि केटेलर के व्याकरण की प्रति नीदरलैंड में सुरक्षित है, फिर भी किसी भी भारतीय हिंदी या विदेशी विद्वान् ने मूल प्रति को ढूँढ़ने का प्रयत्न नहीं किया। सर ग्रियर्सन के प्रथम लेख (1893) और मेरी पांडुलिपि की खोज में लगभग एक शताब्दी का समय बीत चुका था, जबकि तीन पुरानी गुत्थियाँ (लेखक, तिथि एवं भाषा) तो सुलझ चुकी थीं, लेकिन नई गुत्थियाँ पड़ती जा रही थीं। जहाँ तक प्रथम व्याकरण के असली स्वरूप का संबंध था, वह अभी तक भी काफी हद तक पहेली सा बना था। यह गुत्थी मूल व्याकरण के निरीक्षण एवं उसके विश्लेषण के बिना सुलझ नहीं सकती थी। विडंबना यह थी कि मिल्ज के प्रकाशित व्याकरण ने केटेलर के मूल व्याकरण को धूमिल कर दिया था। इसी कारण प्राचीनतम व्याकरण के स्वरूप के विषय में एक के बाद एक भ्रांति पैदा होती जा रही थी।

केटेलर कौन था? उसने अपने व्याकरण को अनोखा स्वरूप क्यों दिया? मूल पांडुलिपि के साथ-साथ इसकी जानकारी केटेलर की जीवनी से मिलती है।

केटेलर की जीवनी उतनी ही अनोखी थी जितना कि उनका व्याकरण। केटेलर का जन्म एल्बिंग (Elbing) जर्मनी में 1659 में हुआ। वह एक जिल्दसाज का बेटा था, लेकिन उसको अपने परिवार के व्यवसाय से कोई लगाव नहीं था, फिर भी उसने किसी और जिल्दसाज के सहायक के रूप में कुछ समय तक नौकरी की थी। इस काम में

मन फिर भी नहीं लगा। पूरा ब्योरा तो पता नहीं, पर इतना तो सच है कि उसने अपने मालिक को जहर देकर मारने की कोशिश की। इसके अलावा कुछ छोटी-मोटी चोरियाँ तक कीं। अंततः भागकर वह डेनमार्क और स्वीडन चला गया। वहाँ भी उसने कई ऐसी ही करामातें कीं और जैसे-तैसे एमस्टरडैम (Amsterdam) पहुँच गया। सन् 1682 में उसके जीवन में एक नया मोड़ तब आया जब उसने East India Company में नौकरी करना स्वीकार किया।

एक साल पश्चात् जब वह सूरत, गुजरात पहुँचा तो उसके जीवन का नया पहलू शुरू होने वाला था। शुरू की क्लर्की के बाद, 1687 तक वह उस फैक्टरी का उपनिदेशक रहा। तत्पश्चात् उसको व्यापारी (Merchant) की पदवी मिली। उसे अरब देशों में कॉफी (Coffee) की खरीदारी के लिए भेज दिया गया। उस को 'भूरिश भाषा और रिवाजों की विशेषज्ञता' की वजह से सूरत बुलाया गया। सफलता अब उसके कदम चूमने लगी। अब उसकी मुगल दरबार में Dutch East India Company के राजदूत के पद पर नियुक्ति हुई और उसने कूटनीतिक संधियाँ भी कीं। उनकी हिंदी भाषा व्यापारिक एवं राजनैतिक योग्यता की वजह से उसने Dutch East India Company में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की और मुगल सेना के साथ संधि के लिए गुजरात से दिल्ली तक की यात्रा भी की, जिसके दौरान वह स्वयं न केवल हिंदी सीखता रहा और व्याकरण भी लिखता रहा बल्कि शायद डच Dutch East India Company के नौकरों को भी हिंदी सिखाता रहा। संभवतः यही कारण है कि उसके व्याकरण की नकल Jsaac Van Der Hoeve ने की। इसी व्याकरण की पांडुलिपि नीदरलैंड में है। हालाँकि इसमें कोई संदेह नहीं कि केटेलर ने स्वतः नकल की कॉपी देखी होगी। हालाँकि केटेलर के जीवन में कई ऊँचे-नीचे सोपान आए; वह एक धार्मिक आदमी था। भारत से वह अपने चर्च को हमेशा पैसा भेजता रहा, परंतु वह वापस यूरोप न जा पाया। उसकी मृत्यु ईरान में हुई।

उसका व्याकरण, उसकी हिंदी भाषा के रोजमर्रा के प्रयोग, व्यवसायिक आवश्यकताओं एवं धार्मिक धारणाओं का प्रतिबिंब है। उसने भाषा किसी शैक्षिक संस्था से नहीं सीखी, लेकिन आम लोगों, सैनिक एवं दरबारी वातावरण से सीखी। यही वातावरण उसके व्याकरण के स्वरूप से झलकता है।

केटेलर के व्याकरण का स्वरूप

व्याकरण के मुख्य पृष्ठ से पता चलता है कि जस्साक वैन दैर्त हूव ने केटेलर के मूल व्याकरण की नकल की। क्या जस्साक ने केटेलर के इस पांडुलिपि की असली कॉपी अपने पास रखी या यही पांडुलिपि असली कॉपी है? इसका प्रयोग भाषा-शिक्षण में कैसे हुआ? कई नए प्रश्नों का समाधान करना अभी भी बाकी है।

व्याकरण का पूरा शीर्षक यह है—

व्याकरण की रचना डच भाषा में हुई। पांडुलिपि की समाप्ति सन् 1698 में हुई। व्याकरण का संगठन ऐसा है—

i. मुख्य पृष्ठ
ii. जस्साक वैन दैर हूव की भूमिका
iii. केटेलर की भूमिका
iv. विषय-सूची
v. (प्रमुख) व्याकरण
vi. प्रार्थनाएँ

पांडुलिपि के विश्लेषण से स्पष्ट है कि डेविड मिल्ज का संक्षिप्त व्याकरण केटेलर के व्याकरण से बहुत ही भिन्न है। मिल्ज ने अपनी तरफ से बहुत ही परिवर्तन किए। यहाँ तक कि डेविड मिल्ज ने केटेलर के व्याकरण का अधिकांश भाग अपने व्याकरण से हटा दिया। इस कारण केटेलर के व्याकरण के बारे में कई भ्रांतियाँ पैदा हो गईं।

वस्तुतः केटेलर का व्याकरण कोई आम व्याकरण नहीं है। यह धार्मिक, व्यापारिक एवं साम्राज्यवादी नमूने पर बना अपने ही तरीके का व्याकरण है। उदाहरण के रूप के केटेलर अपने व्याकरण में व्यावसायिक एवं धार्मिक शब्दावली पर बहुत जोर देता है (जैसे परमात्मा, जहरीले जानवर, युद्ध सामग्री, पैसा-धन-दौलत, रत्न, सेना-संबंधी शब्दावली)। यह व्याकरण द्विभाषिक व्याकरण है। केटेलर हिंदी और फारसी का का संयुक्त व्याकरण लिखना हिस्सा अधूरा सा रह गया है। हिंदी का प्राचीनतम व्याकरण हिंदी की अनुपम धरोहर है। हालाँकि केटेलर ने हिंदी भाषा अपने आप सीखी थी और उसमें कई त्रुटियाँ जरूर हैं।

□

4

संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाएँ एवं हिंदी

✍ **महावीर सरन जैन**

- प्रो. महावीर सरन जैन का जन्म 17 जनवरी, 1941 को उत्तर प्रदेश, भारत में हुआ। हिंदी, संस्कृत, पाली, अंग्रेजी, रोमानियन आदि भाषाओं पर शैक्षिक योग्यताओं की प्राप्ति के साथ ही इन्होंने हिंदी में एम.ए., डी.फिल. तथा डी.लिट. (हिंदी भाषाविज्ञान) किया है।
- प्रो. जैन ने भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक, रोमानिया के बुकारेस्त हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग के लैक्चरर, रीडर तथा प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के रूप में हिंदी के अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार-विकास के क्षेत्रों में भारत एवं विश्व स्तर पर कार्य किया है।
- देश-विदेश के अनेक सम्मानों से सम्मानित प्रो. जैन ने मौलिक ग्रंथ, शोध निबंध, समीक्षा, भूमिका तथा लेख भी लिखे हैं। विभिन्न विषयों पर इनकी पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की 6 आधिकारिक भाषाएँ हैं—1. अरबी, 2. चीनी 3. अंग्रेज़ी 4. फ्रेंच, 5. रूसी 6. स्पेनिश

(The Year Book of the United Nations 1955, Vol. 49, pp. 1416-17, NewYork)

संयुक्त राष्ट्र की ये 6 आधिकारिक भाषाएँ अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की भी आधिकारिक भाषाएँ हैं। उदाहरणार्थ, (1) अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (IAEA) (2) अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी (IDA), (3) अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (ITU), (4) संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (UNESCO), (5) विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) (6) संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (UNIDO), (7) संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय बाल-आपातिक निधि (UNICEF)

संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाएँ एवं हिंदी—

सन् 1998 के पूर्व मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिंदी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1991 के सेंसस ऑफ इंडिया का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रंथ जुलाई, 1997 में प्रकाशित हुआ (Census of India 1997 Series 1—India Part I of 1997 Language : India and States-Table C-7)

यूनेस्को की टेक्नीकल कमेटी फॉर द वर्ल्ड लैंग्वेजिज रिपोर्ट ने अपने 13 जुलाई, 1998 के पत्र के द्वारा यूनेस्को-प्रश्नावली के आधार पर हिंदी की रिपोर्ट भेजने के लिए भारत सरकार से निवेदन किया। भारत सरकार ने उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन को पत्र लिखा। प्रो. जैन ने 25 मई, 1999 को यूनेस्को को अपनी विस्तृत रिपोर्ट भेजी।

प्रो. जैन ने विभिन्न भाषाओं के प्रामाणिक आँकड़ों एवं तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया कि प्रयोक्ताओं की दृष्टि से विश्व में चीनी भाषा के बाद दूसरा स्थान हिंदी भाषा का है। रिपोर्ट तैयार करते समय प्रोफेसर जैन ने ब्रिटिश काउंसिल ऑफ इंडिया से अंग्रेज़ी मातृभाषियों की पूरे विश्व की जनसंख्या के बारे में तथ्यात्मक रिपोर्ट भेजने के लिए निवेदन किया। ब्रिटिश काउंसिल ऑफ इंडिया ने इसके उत्तर में 'गिनीज बुक ऑफ नॉलेज' (1997 संस्करण, पृष्ठ 57) फैक्स द्वारा भेजा। ब्रिटिश काउंसिल द्वारा भेजी गई सूचना के अनुसार पूरे विश्व में अंग्रेज़ी मातृभाषियों की संख्या 33,70,00,000 (33 करोड़, 70 लाख) है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी 83,85,83,988 है। मातृभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार करनेवालों की संख्या 33,72,72,114 है तथा उर्दू को मातृभाषा

के रूप में स्वीकार करने वालों की संख्या का योग 04,34,06,932 है। हिंदी एवं उर्दू को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करनेवालों की संख्या का योग 38,06,79,046 है, जो भारत की कुल आबादी का 44.98 प्रतिशत है। प्रोफेसर जैन ने अपनी रिपोर्ट में यह भी सिद्ध किया कि भाषिक दृष्टि से हिंदी और उर्दू में कोई अंतर नहीं है। इस प्रकार ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आयरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि सभी देशों के अंग्रेज़ी मातृभाषियों की संख्या के योग से अधिक जनसंख्या केवल भारत में हिंदी एवं उर्दू भाषियों की है। रिपोर्ट में यह भी प्रतिपादित किया गया कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारणों से संपूर्ण भारत में मानक हिंदी के व्यावहारिक रूप का प्रसार बहुत अधिक है। हिंदीतर भाषी राज्यों में बहुसंख्यक द्विभाषिक-समुदाय द्वितीय भाषा के रूप में अन्य किसी भाषा की अपेक्षा हिंदी का अधिक प्रयोग करता है, जो हिंदी के सार्वदेशिक व्यवहार का प्रमाण है। भारत की राजभाषा हिंदी है तथा पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू है। इस कारण हिंदी-उर्दू भारत एवं पाकिस्तान में संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत हैं।

संसार में ऐसा कोई भाषा-क्षेत्र नहीं होता, जिसमें क्षेत्रगत भेद नहीं होते। कहावत है—चार कोस पर बदले पानी, आठ कोस पर बानी। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या 700-800 मिलियन (70 करोड़ से 80 करोड़) है तथा उसका भाषा क्षेत्र हिंदी भाषा क्षेत्र की अपेक्षा बहुत विस्तृत है। चीनी भाषी क्षेत्र में जो भाषिक रूप बोले जाते हैं, वे सभी परस्पर बोधगम्य नहीं हैं। जब पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक चीनी भाषा की विवेचना करते हैं तो किसी प्रकार का विवाद पैदा नहीं करते, किंतु स्रोत-3 एवं 4 जैसे ग्रंथों के विद्वान् जब हिंदी भाषा की विवेचना करते हैं तो हिंदी भाषा क्षेत्र के अंतर्गत बोले जानेवाले हिंदी भाषा के उपभाषा रूपों को भाषा का दरजा दे देते हैं।

विश्व के लगभग 93 देशों में हिंदी प्रयोग होता है अथवा उन देशों में हिंदी के अध्ययन अध्यापन की सम्यक् व्यवस्था है। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या हिंदी भाषा से अधिक है, किंतु चीनी भाषा का प्रयोग-क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग-क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा अधिक है, किंतु हिंदी बोलने वालों की संख्या अंग्रेज़ी भाषियों से अधिक है।

विश्व के इन 93 देशों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) इस वर्ग के देशों में भारतीय मूल के आप्रवासी नागरिकों की आबादी देश की जनसंख्या में लगभग 40 प्रतिशत या उससे अधिक है। इन अधिकांश देशों में सरकारी एवं गैर-सरकारी, प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों में हिंदी का शिक्षण होता है। इन देशों के अधिकांश भारतीय मूल के आप्रवासी जीवन के विविध क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग करते हैं एवं अपनी सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक के रूप में हिंदी को ग्रहण करते हैं। इन देशों में निम्नलिखित देश उल्लेखनीय हैं—1. मॉरीशस, 2. फीजी, 3. सूरीनाम, 4. गुयाना, 5. त्रिनिडाड एंड टुबेगो। त्रिनिडाड के अतिरिक्त अन्य सभी देशों में हिंदी का व्यापक प्रयोग एवं व्यवहार होता है।

(2) इस वर्ग के देशों में ऐसे निवासी रहते हैं, जो हिंदी को विश्व भाषा के रूप में सीखते, पढ़ते तथा हिंदी में लिखते हैं। इन देशों की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में प्रायः स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी की शिक्षा का प्रबंध है। कुछ देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी में शोध कार्य करने तथा डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने की भी व्यवस्था है। इन देशों में निम्नलिखित देशों के नाम उल्लेखनीय हैं—

महाद्वीप देश

(क) अमेरिका महाद्वीप : 6. संयुक्त राज्य अमेरिका, 7. कनाडा, 8. मैक्सिको, 9. क्यूबा

(ख) यूरोप महाद्वीप : 10. रूस, 11. ब्रिटेन (इंग्लैंड), 12. जर्मनी, 13. फ्रांस, 14. बेल्जियम, 15. हालैंड

(नीदरलैंडस), 16. ऑस्ट्रिया, 17. स्विटजरलैंड, 18. डेनमार्क, 19. नार्वे, 20. स्वीडन, 21. फिनलैंड, 22. इटली, 23. पौलैंड, 24. चेक, 25. हंगरी, 26. रोमानिया, 27. बल्गारिया, 28. उक्रैन, 29. क्रोशिया,

(ग) अफ्रीका महाद्वीप : 30. दक्षिण अफ्रीका, 31. री–यूनियन द्वीप,

(घ) एशिया महाद्वीप : 32. पाकिस्तान, 33. बंगलादेश, 34. श्रीलंका, 35. नेपाल, 36. भूटान, 37. म्याँमार (बर्मा), 38. चीन, 39. जापान, 40. दक्षिण कोरिया, 41. मंगोलिया, 42. उजबेकिस्तान, 43. ताजिकिस्तान, 44. तुर्की, 45. थाइलैंड,

(ङ.) ऑस्ट्रेलिया : 46. ऑस्ट्रेलिया,

(3) इसका उल्लेख किया जा चुका है कि भारत की राजभाषा हिंदी है तथा पाकिस्तान की राजभाषा उर्दू है। इस कारण हिंदी–उर्दू भारत एवं पाकिस्तान में संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत है। भारत एवं पाकिस्तान के अलावा हिंदी तथा उर्दू मातृभाषियों की बहुत बड़ी संख्या विश्व के लगभग 60 देशों में निवास करती है। इन देशों में भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, भूटान, नेपाल आदि देशों के आप्रवासियों या अनिवासियों की विपुल आबादी रहती है। इन देशों की यह आबादी संपर्क–भाषा के रूप में हिंदी–उर्दू का प्रयोग करती हैं, हिंदी की फिल्में देखती हैं; हिंदी के गाने सुनती हैं तथा टेलीविजन पर हिंदी के कार्यक्रम देखती है। इन देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, ब्रिटेन (इंग्लैंड), जर्मनी, फ्रांस ,हालैंड (नीदरलैंडस), दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण कोरिया, उजबेकिस्तान, ताजिकिस्तान, थाइलैंड, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों के अलावा निम्नलिखित देशों के नाम उल्लेखनीय हैं—47. अफगानिस्तान, 48. अर्जेंटीना, 49. अल्जेरिया, 50. इक्वेडोर, 51. इंडोनेशिया, 52. इराक, 53. ईरान, 54. उगांडा, 55. ओमान, 56. कजाकिस्तान, 57. कतर, 58. कुवैत, 59. केन्या, 60. अयवरी कोस्ट, 61. ग्वाटेमाला, 62 जमाइका, 63. जांबिया, 64. तंजानिया, 65. नाइजीरिया, 66. निकारागुआ, 67. न्यूजीलैंड, 68. पनामा, 69. पुर्तगाल, 70. पेरु, 71. पैरागुवै, 72 फिलिपींस, 73.बहरीन, 74. ब्राजील, 75.ब्रुनेई, 76 मलेशिया, 77. मिस्र, 78. मेडागास्कर, 79. मोजांबिक, 80. मोरक्को, 81 मौरिटानिया, 82. यमन, 83. लीबिया, 84. लेबनान, 85 वेनेजुएला, 86. सऊदी अरब, 87. संयुक्त अरब अमीरात, 88. सिंगापुर, 89 सूडान, 90. सेशेल्स, 91. स्पेन, 92. हांगकांग (चीन), 93. होंडूरास।

हिंदी की फिल्मों, हिंदी गानों तथा टी.वी. कार्यक्रमों का प्रसार :

हिंदी की फिल्मों, गानों और टी.वी. कार्यक्रमों ने हिंदी को कितना लोकप्रिय बनाया है, इसका आकलन करना कठिन है। केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी पढ़ने के लिए आनेवाले 67 देशों के विदेशी छात्रों ने इसकी पुष्टि की कि हिंदी फिल्मों को देखकर तथा हिंदी फिल्मी गानों को सुनकर उन्हें हिंदी सीखने में मदद मिली। लेखक ने स्वयं जिन देशों की यात्रा की तथा जितने विदेशी नागरिकों से बातचीत की उनसे भी जो अनुभव हुआ, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी की फिल्मों तथा फिल्मी गानों ने हिंदी के प्रसार में अप्रतिम योगदान दिया है। सन् 1995 के बाद से टी.वी. के चैनलों से प्रसारित कार्यक्रमों की लोकप्रियता भी बढ़ी है। इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि जिन सेटेलाइट चैनलों ने भारत में अपने कार्यक्रमों का आरंभ केवल अंग्रेज़ी भाषा से किया था; उन्हें अपनी भाषा नीति में परिवर्तन करना पड़ा है। अब स्टार प्लस, जी टी.वी., जी न्यूज, स्टार न्यूज, डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिक आदि टी.वी. चैनल अपने कार्यक्रम हिंदी में दे रहे हैं। दक्षिण पूर्व एशिया तथा खाड़ी के देशों के कितने दर्शक इन कार्यक्रमों को देखते हैं, यह अनुसंधान का अच्छा विषय है।

सन् 1984 से सन् 1988 के बीच लेखक ने यूरोप के 18 देशों की यात्राएँ कीं। यूरोप के देशों में कोलोन, बी.बी.सी., ब्रिटिश रेडियो, सनराइज, सबरंग के हिंदी सेवा कार्यक्रमों को हिंदी प्रेमी बड़े चाव से सुनते हैं। यूरोप के देशों में ऐसी गायिकाएँ हैं, जो हिंदी फिल्मों के गाने गाती हैं तथा स्टेज शो करती हैं।

(अपने विदेश प्रवास की उक्त अवधि में जो फिल्मी गाने विभिन्न यूरोपीय देशों में सर्वाधिक लोकप्रिय थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—1. आवारा हूँ, 2. मेरा जूता है जापानी, 3. सर पर टोपी लाल, हाथ में रेशम का रूमाल, हो तेरा क्या कहना, 4. जब से बलम

घर आए जियरा मचल-मचल जाए, 5. आई लव यू, 6. मुड़-मुड़ के न देख, मुड़-मुड़ के, 7. ईचक दाना, बीचक दाना, दाने ऊपर दाना, छज्जे ऊपर लड़की नाचे, लड़का है दीवाना, 8. मेघा छाए आधी रात, बैरन बन गई निदियाँ, 9. मौसम है आशिकाना, ए दिल कहीं से उनको ढूँढ़ लाना 10. दम मारो दम, मिट जाए गम, 11. सुहाना सफर है, 12. तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा तो नहीं, 13. बोल रे पपीहरा, 14. चंदा ओ! चंदा, 15. यादों की बारात निकली है आज दिल के द्वारे, 16 ज़िंदगी एक सफर है सुहाना, यहाँ कल क्या हो, किसने जाना, 17. न कोई उमंग है, न कोई तरंग है, मेरी जिंदगी है क्या? एक कटी पतंग है, 18. बहारों! मेरा जीवन भी सँवारों, 19. आ जा रे परदेसी, मैं तो कब से खड़ी इस पार।)

सन् 1995 के बाद टेलिविजन के प्रसार के कारण अब विश्व के प्रत्येक भूभाग में हिंदी फिल्मों तथा हिंदी फिल्मी गानों की लोकप्रियता सर्वविदित है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाओं की तुलना में हिंदी मातृभाषियों की संख्या—

सन् 1998 के बाद विश्व स्तर पर हिंदी की संख्या के आँकड़ों में परिवर्तन आ गया। भाषिक आँकड़ों की दृष्टि से सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ की 6 आधिकारिक भाषाओं की तुलना में हिंदी के मातृभाषा वक्ताओं की संख्या निम्न तालिका में प्रस्तुत है (मिलियन में)

संयुक्त राष्ट्र संघ की 6 आधिकारिक भाषाओं की तुलना में हिंदी के मातृभाषियों की संख्या के आँकड़े—

भाषा	स्रोत (1)	स्रोत (2)	स्रोत (3)	स्रोत (4)
चीनी	836	800	874	874
हिंदी	333	550	366	366
स्पेनिश	332	400	322-358	322-358
अंग्रेज़ी	322	400	341	341
अरबी	186	200···		
रूसी	170	170	167	167
फ्रांसीसी	072	090	077	077

(1) Encarta Encyclopedia—article of Dr. Bernard Comrie (1998)

(2) D. Dalby : The Linguasphere Register of the World's Languages and SpeechCommunities, Cardiff, Linguasphere Press (1999)

(3) Ethnologue, Volume v. Languages of the World : Edited by Barbara F. ˜**ærimes,** vyth. Edition, SIL International (2000)

(4) The World Almanac and Book of Facts, World Almanac Education ˜**æroup** (2003)

(1) एनकार्टा एन्साइक्लोपीडिया में भाषा के बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से जो संख्या है, वह इस प्रकार है—

1. चीनी 836 मिलियन (83 करोड़ 60 लाख)
2. हिंदी 333 मिलियन (33 करोड़ 30 लाख)
3. स्पेनिश 332 मिलियन (33 करोड़ 20 लाख)
4. अंग्रेज़ी 322 मिलियन (32 करोड़ 20 लाख)
5. अरबी 186 मिलियन (18 करोड़ 60 लाख)
6. रूसी 170 मिलियन (17 करोड़)
7. फ्रांसीसी 72 मिलियन (7 करोड़ 20 लाख)

(2) दूसरे स्रोत के ग्रंथ में संख्या इस प्रकार है—

1. चीनी 800 मिलियन (80 करोड़)
2. हिंदी 550 मिलियन (55 करोड़),
3. स्पेनिश 400 मिलयिन (40 करोड़)
4. अंग्रेज़ी 400 मिलियन(40 करोड़),
5. अरबी 200 मिलियन (20 करोड़)
6. रूसी 170 मिलियन (17 करोड़)
7. फ्रैंच 90 मीलियन (9 करोड़)।

(3) तीन एवं चार स्रोतों के ग्रंथों के आँकड़े एक जैसे हैं। इसका कारण यह है कि द वर्ल्ड अल्मानेक एंड बुक ऑफ फैक्ट्स (The World Almanac and Book of Facts) के आँकड़ों का आधार एथनोलॉग ही है।

इन दोनो ग्रंथों में प्रतिपादित संख्या इस प्रकार है :

1. चीनी 874 मिलियन (87 करोड़ 40 लाख)

2. हिंदी 366 मिलियन (36 करोड़ 60 लाख)
3. स्पेनिश 322-358 मिलियन (32 करोड़ 20 लाख से 35 करोड़ 80 लाख)
4. अंग्रेज़ी 341 मिलियन (34 करोड़ 10 लाख)।

इन ग्रंथों में अरबी को रिक्त दिखाया गया है। इसका कारण इन ग्रंथों में यह प्रतिपादित है कि अरबी एक क्लासिकल लैंग्वेज है तथा इन्होंने भाषाओं के जो आँकड़े दिए हैं, वे मातृभाषियों के हैं, द्वितीय भाषा वक्ताओं (सैकेंड लैंग्वेज स्पीकर्स) के नहीं। इस कारण इन्होंने टेबल में अरबी लैंग्वेज को नहीं रखा है।

रूसी भाषियों की संख्या 167 मिलियन (16 करोड़ 70 लाख) तथा फ्रेंच भाषियों की संख्या 77 मिलियन (7 करोड़ 70 लाख) है।

मातृभाषियों की संख्या का अंतर

तालिका का अध्ययन करने से यह स्पष्ट है कि इन ग्रन्थों में विभिन्न भाषाओं के मातृभाषियों की संख्या के आँकड़ों में एकरूपता या समानता नहीं है। तालिका में स्रोत-2 के ग्रंथ में हिंदी भाषियों की संख्या है—550 मिलियन(55 करोड़), किंतु तीन एवं चार स्रोत के ग्रंथों में हिंदी भाषियों की संख्या प्रतिपादित है—366 मिलियन (36 करोड़ 60 लाख)। जब वैज्ञानिक ढंग से आँकड़े इकट्ठे हो रहे हैं तथा मातृभाषियों की दृष्टि से आँकड़े प्रस्तुत किए जा रहे हैं तो यह अंतराल क्यों है ? स्रोत 3 एवं 4 के ग्रंथों का ध्यान से अध्ययन करने के बाद आँकड़ों के अंतर का रहस्य उद्घाटित हो जाता है। इन ग्रंथों में हिंदी के क्षेत्रगत भेदों एवं शैलीगत भेदों को अलग-अलग भाषाओं के रूप में प्रदर्शित किया गया है। हिंदी भाषा क्षेत्र के अंतर्गत बोले जानेवाले इन क्षेत्रगत एवं शैलीगत भेदों के मातृभाषियों की जो संख्याएँ प्रतिपादित हैं, उन संख्याओं को 366 मिलियन (36 करोड़ 60 लाख) संख्या में जोड़ने पर हिंदी के मातृभाषियों की संख्या पहुँच जाती है—553 मिलियन (55 करोड़ 30 लाख)। स्रोत-2 में हिंदी भाषियों की संख्या का योग है—550 मिलियन (55 करोड़)। स्रोत-3 एवं स्रोत-4 के ग्रंथों में हिंदी भाषा के जिन 11 क्षेत्रगत (Regional) तथा शैलीगत (Stylistic) भेदों के मातृभाषियों की संख्या को अलग-अलग प्रदर्शित किया गया है, उनकी संख्याओं का योग कर देने पर इन दोनों ग्रंथों में हिंदी भाषियों की संख्या हो जाती है—553 मिलियन (55 करोड़ 30 लाख)

संसार में ऐसा कोई भाषा-क्षेत्र नहीं होता, जिसमें क्षेत्रगत भेद नहीं होते। कहावत है—चार कोस पर बदले पानी, आठ कोस पर बानी। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या 700-800 मिलियन (70 करोड़ से 80 करोड़) है तथा उसका भाषा क्षेत्र हिंदी भाषा क्षेत्र की अपेक्षा बहुत विस्तृत है। चीनी भाषी क्षेत्र में जो भाषिक रूप बोले जाते हैं, वे सभी परस्पर बोधगम्य नहीं हैं। जब पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक चीनी भाषा की विवेचना करते हैं तो किसी प्रकार का विवाद पैदा नहीं करते, किंतु स्रोत-3 एवं 4 जैसे ग्रंथों के विद्वान् जब हिंदी भाषा की विवेचना करते हैं तो हिंदी भाषा क्षेत्र के अंतर्गत बोले जानेवाले हिंदी भाषा के उपभाषा रूपों को भाषा का दरजा दे देते हैं। हिंदी भाषा क्षेत्र के अंतर्गत भारत के निम्नलिखित राज्य/केंद्र शासित प्रदेश समाहित हैं—1. उत्तर प्रदेश, 2. उत्तराखंड, 3. बिहार, 4. झारखंड, 5. मध्य प्रदेश, 6. छत्तीसगढ़, 7. राजस्थान, 8. हिमाचल प्रदेश, 9. हरियाणा, 10. दिल्ली, 11. चंडीगढ़।

हिंदी भाषा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। हिंदी भाषा क्षेत्र में ऐसी बहुत सी उपभाषाएँ हैं, जिनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है, किंतु ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से संपूर्ण भाषा क्षेत्र एक भाषिक इकाई है तथा इस भाषा-भाषी क्षेत्र के बहुमत भाषा-भाषी अपने-अपने क्षेत्रगत भेदों को हिंदी भाषा के रूप में मानते एवं स्वीकारते आए हैं। भारत के संविधान की दृष्टि से यही स्थिति है। सन् 1997 में भारत सरकार के सेंसस ऑफ इंडिया द्वारा प्रकाशित ग्रंथ में भी यही स्थिति है।

'खड़ी बोली' हिंदी भाषा क्षेत्र का उसी प्रकार एक भेद है, जिस प्रकार हिंदी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रगत भेद हैं। प्रत्येक भाषा-क्षेत्र में अनेक क्षेत्रगत, वर्गगत एवं शैलीगत भिन्नताएँ होती हैं। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में किसी क्षेत्र विशेष के भाषिक रूप के आधार पर उस भाषा का मानक रूप विकसित होता है, जिसका उस भाषा-क्षेत्र के सभी क्षेत्रों के पढ़े-लिखे व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं। पूरे भाषा-क्षेत्र में इसका व्यवहार होने तथा इसके प्रकार्यात्मक प्रचार-प्रसार के कारण विकसित भाषा का मानक रूप भाषा क्षेत्र के समस्त भाषिक रूपों के बीच संपर्क सेतु का काम करता है तथा कभी-कभी इसी मानक भाषा रूप के आधार पर उस भाषा की

पहचान की जाती है। प्रत्येक देश की एक राजधानी होती है तथा विदेशों में किसी देश की राजधानी के नाम से प्राय: देश का बोध होता है, किंतु सहज रूप से समझ में आनेवाली बात है कि राजधानी ही देश नहीं होता।

जिस प्रकार भारत अपने 28 राज्यों एवं 7 केंद्र शासित प्रदेशों को मिलाकर भारत देश है, उसी प्रकार भारत के जिन राज्यों एवं शासित प्रदेशों को मिलाकर हिंदी भाषा-क्षेत्र है, उस हिंदी भाषा-क्षेत्र के अंतर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं, उनकी समष्टि का नाम हिंदी भाषा है। हिंदी भाषा-क्षेत्र के प्रत्येक भाग में व्यक्ति स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषा रूप में बात करता है। औपचारिक अवसरों पर तथा अंतर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर भाषा के मानक रूप अथवा व्यावहारिक हिंदी का प्रयोग होता है। आप विचार करें कि उत्तर प्रदेश हिंदी भाषी राज्य है अथवा खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुंदेली आदि भाषाओं का राज्य है? इसी प्रकार मध्य प्रदेश हिंदी भाषी राज्य है अथवा बुंदेली, बघेली, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है। जब संयुक्त राज्य अमेरिका की बात करते हैं तब संयुक्त राज्य अमेरिका के अंतर्गत जितने राज्य हैं, उन सबकी समष्टि का नाम ही तो संयुक्त राज्य अमेरिका है। विदेश सेवा में कार्यरत अधिकारी जानते हैं कि कभी देश के नाम से तथा कभी उस देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा होती है। वे ये भी जानते हैं कि देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा भले ही होती है, मगर राजधानी ही देश नहीं होता। इसी प्रकार किसी भाषा के मानक रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है, मगर मानक भाषा भाषा का एक रूप होता है : मानक भाषा ही भाषा नहीं होती। इसी प्रकार खड़ी बोली के आधार पर मानक हिंदी का विकास अवश्य हुआ है, किंतु खड़ी बोली ही हिंदी नहीं है। तत्त्वत: हिंदी भाषा क्षेत्र के अंतर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं, उन सबकी समष्टि का नाम हिंदी है। हिंदी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का षड्यंत्र अब विफल हो गया है, क्योंकि 1991 की भारतीय जनगणना के अंतर्गत जो भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, उसमें मातृभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार करने वालों की संख्या का प्रतिशत उत्तर प्रदेश (उत्तराखंड राज्य सहित) में 90.11, बिहार (झारखंड राज्य सहित) में 80.86, मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ राज्य सहित) में 85.55, राजस्थान में 89.56, हिमाचल प्रदेश में 88.88, हरियाणा में 91.00, दिल्ली में 81.64 तथा चंडीगढ़ में 61.06 है।

हिंदी एक विशाल भाषा है तथा विशाल क्षेत्र की भाषा है। अब यह निर्विवाद है कि चीनी भाषा के बाद हिंदी संसार में दूसरे नंबर की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है।

यदि हम संपूर्ण प्रयोक्ताओं की संख्या की दृष्टि से बात करें, जिसमें मातृभाषा वक्ता (First Language Speakers) तथा द्वितीय भाषा वक्ता (Second Language Speakers) दोनो हों तो हिंदी भाषियों की संख्या लगभग एक हजार मिलियन (सौ करोड़) है। दूसरे स्रोत के ग्रंथ (The linguasphere Register of the World's Languages and Speech Communities) में इस दृष्टि से हिंदी भाषियों की संख्या 960 मिलियन मानी गई है। जो प्रमाणिक तथ्य प्रस्तुत हैं, उनसे यह निर्विवाद है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए।

(सेवानिवृत्त निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान)
123, हरिएन्कलेव,
चाँदपुर रोड,
बुलंदशहर-203001
रचनाकार ओआर से आभार

मातृभाषा का अनादर भी माँ के अनादर के बराबर है।

—महात्मा गांधी

राजभाषा हिंदी आगे बढ़ रही है मगर चुपचाप

✍ डॉ. हीरालाल बछोतिया

राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान के समान ही राजभाषा की मर्यादा और सम्मान होना चाहिए। राष्ट्रभाषा तो भारत की पहचान ही है। इस दृष्टि से राष्ट्रभाषा के कतिपय निर्देशों को देखना समीचीन होगा। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में दिए निर्देशों में तीन बातें प्रमुख हैं—

1. संघ हिंदी का प्रचार करेगा।

2. हिंदी का विकास इस प्रकार किया जाएगा कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति कर सके।

3. हिंदी की प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना इसमें हिंदुस्तानी तथा संविधान की आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भाषाओं, विशेषकर संस्कृत के रूप, शैली, पद आदि को शामिल करके इसे समृद्ध किया जाएगा।

उक्त निर्देशों पर गौर करें तो संघ या केंद्र सरकार और इसके उपक्रम हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न देखे जा सकते हैं। हिंदी दिवस, हिंदी सप्ताह, हिंदी पखवाड़ा मनाने के अलावा विभिन्न विभागों आदि में हर तीन महीनों में होनेवाली कार्यशालाएँ इस प्रचार-प्रसार के उदाहरण हैं। जहाँ तक शब्द निर्माण में संस्कृत के रूप-शैली आदि को शामिल करने का सवाल है, इसका भी ध्यान रखा गया है। यह अलग बात है कि इस प्रकार से बने शब्दों पर अनेक सवाल खड़े किए जाते हैं। फिर आयोग द्वारा निर्मित शब्द अंग्रेज़ी की तुलना में जनता की जबान पर चढ़ने में सफल हुए हैं। संसद्, आकाशवाणी, विधान सभा, विधायक, अस्पताल, आरक्षण, मुद्रिका जैसे शब्द इनके अंग्रेज़ी पर्यायवाची शब्दों से अधिक प्रचलन में हैं।

राष्ट्रभाषा वह भाषा है जिसके माध्यम से संपूर्ण दिशा में विचार-विमर्श हो सके। इस प्रकार अंतरप्रादेशिक गुणों से युक्त भाषा जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, विचारों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण क्षमता हो राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त करती है। इस दृष्टि से हिंदी सर्वाधिक सशक्त, समृद्ध, वैज्ञानिक और तकनीकी गुण वैशिष्टय से संपन्न भाषा है।

भारत सहित विभिन्न देशों में हिंदी बोलने-समझने वाले 60 करोड़ से ज्यादा हैं। एक विद्वान के सर्वेक्षण के अनुसार यह संख्या एक सौ दस करोड़ है। उनका मानना है कि दुनिया में हिंदी का स्थान दूसरा है।

भारतेंदु ने कहा था—निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल। यह बात आज भी सच है। देश की प्रगति में हिंदी के योगदान पर विचार करें तो भारतेंदु ने उन्नति के लिए निज भाषा को रेखांकित किया है वह हिंदी ही है। संविधान ने हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया और हिंदी को राजकाज की भाषा ही नहीं उसे सामासिक संस्कृति की वाहिका भी कहा है। इस प्रकार सामासिक संस्कृति को दृढ़तर करना राष्ट्रीय प्रगति को भी दृढ़तर करना होगा।

सरकार आम जनता के लिए कल्याणकारी योजनाएँ बनाती है। योजनाओं की जानकारी के अभाव में लोग उससे लाभान्वित नहीं हो पाते। बहुसंख्यक लोग हिंदी बोलते-समझते हैं। राजभाषा हिंदी ऐसे लोगों तक जन कल्याण की योजनाओं के प्रचार-प्रसार में ही योगदान नहीं करती है, लोगों को इस योग्य भी बनाती है कि वे जरूरी फार्म आदि भरकर या औपचारिकताएँ पूरी कर उससे लाभान्वित हो सकें। देश की प्रगति में राजभाषा हिंदी के योगदान का यह अन्य आयाम है।

विश्वव्यापी ऊष्णता (ग्लोबल वार्मिंग) से सभी बेहाल हैं। इसके बारे में जानकारी ज्यादातर अंग्रेज़ी में दी जाती है जबकि इससे प्रभावित आम आदमी भी है। इस आम आदमी को हिंदी के माध्यम से ही शिक्षित किया जा सकता है। वर्षा जल का संग्रहण जैसी जानकारी आम आदमी को भी देना जरूरी है। वैसे अपने ढंग से वह इसमें योगदान करता है किंतु विज्ञान द्वारा विकसित प्रणालियों की जानकारी से इसे और प्रभावशाली बनाया जा सकता है। यदि समय रहते ऐसा नहीं किया गया तो तरह-तरह की समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं। देश के बड़े भू भाग में राजभाषा हिंदी ही इस काम को कर सकती है और देश निर्माण में योगदान कर सकती है।

इधर सूचना के अधिकार ने हिंदी प्रयोग को नए आयाम दिए हैं। इसके तहत बहुसंख्यक प्रश्न या सूचनाओं की माँग हिंदी में की जाती है। लिहाजा इनके उत्तर भी हिंदी में ही दिए जाएँगे। कार्यालयों में जो अंग्रेज़ी में नोट-शीट तैयार करने के आदी हैं, उन्हें भी जनहित में हिंदी में ही उत्तर देना होगा। विषय विशेष के प्रति शासकीय प्रयासों की जानकारी व्यक्ति और समाज को मिल सकेगी। यह भी देशोन्नति में राजभाषा का योगदान ही माना जाएगा।

संसदीय राजभाषा समिति के प्रतिवेदन का छठा खंड राजभाषा विभाग द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया गया है जिसमें कतिपय बिंदु विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें उच्च/उच्चतम न्यायालयों की कार्यवाही के लिए हिंदी की अनिवार्यता सुनिश्चित की जाए, एक ऐतिहासिक सुझाव है। इसी प्रकार राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त कदम उठाए जाएँ तथा इसका उल्लंघन करने पर प्रशासनिक जिम्मेदारी ठहराई जानी चाहिए, प्रशासन में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में यह एक ठोस कदम है।

जन संचार विशेषज्ञ डॉ. विल्वर श्रम का मानना है—कम्युनिकेशन इज डेवलपमेंट। संचार ही विकास है। औद्योगिक विकास की प्रक्रिया में कल-कारखानों और उद्योग धंधों में संप्रेषण की समस्या सदैव बनी रहती है। इसलिए लोकभाषा का विकास होता है। व्यापार-व्यवसाय में जनसंचार-माध्यमों का प्रयोग भी तेजी से बढ़ता है। आज कार्यालयों में कंप्यूटर, फैक्स, इंटरनेट हैं। इन सुविधाओं का हिंदी में प्रशासनिक स्तर पर प्रयोग बढ़ना चाहिए। इस दृष्टि से संसदीय राजभाषा समिति द्वारा प्रतिवेदन में सुझाव दिया गया है कि केंद्र सरकार के कार्यालयों आदि के सभी फैक्स, टेलेक्स, टेलिप्रिंटर आदि सूचनाओं को हिंदी में ही भिजवाने की व्यवस्था की जाए और अधिकाधिक तार आदि भी देवनागरी में ही भिजवाए जाएँ। एक महत्त्वपूर्ण सुझाव है।

हिंदी सर्वजनीय भाषा (लिंग्वा फ्रेंका) का काम कर रही है। रेलवे स्टेशनों, बाजारों, होटलों, अस्पतालों, सिनेमाघरों से लेकर पूजास्थलों आदि में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। वह प्रांतीय विचार विनिमय का भी व्यवहारिक माध्यम है। जयादातर प्रशासनिक परीक्षाओं में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। वह चाहे चिकित्सा का क्षेत्र हो, चाहे इंजीनियरिंग का, चाहे कम्प्यूटर, चाहे प्रौद्योगिकी या प्रशासनिक

भारतेंदु ने कहा था—निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल। यह बात आज भी सच है। देश की प्रगति में हिंदी के योगदान पर विचार करें तो भारतेंदु ने उन्नति के लिए निज भाषा को रेखांकित किया है वह हिंदी ही है। संविधान ने हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया और हिंदी को राजकाज की भाषा ही नहीं उसे सामासिक संस्कृति की वाहिका भी कहा है। इस प्रकार सामासिक संस्कृति को दृढ़तर करना राष्ट्रीय प्रगति को भी दृढ़तर करना होगा।

सेवाओं का, सर्वत्र हिंदी उपस्थित है। भारतीय उत्पाद के साथ ही हिंदी का भी निर्यात हो रहा है। भारतीय माल के साथ ही हिंदी के प्रति भी लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है।

वस्तुतः राष्ट्र की प्रगति को राष्ट्रभाषा की प्रगति के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। राष्ट्रभाषा की प्रगति के बिना राष्ट्र की प्रगति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जापान हो या अमेरिका, फ्रांस हो या अमेरिका, फ्रांस हो या जर्मनी—इन सभी के विकास में उनकी भाषाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भाषा को सामने रखकर ही यह राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हुए हैं। भाषा हिंदी भी उसी भूमिका के लिए तत्पर है।

पहले राष्ट्र की प्रगति वहाँ की खनिज संपदा, प्रौद्योगिकी आदि से आँकी जाती थी, किंतु आज भाषा के द्वारा आँकी जा रही है। जो भाषा जितनी समृद्ध एवं व्यापक है वह राष्ट्र उतना ही प्रगतिशील है। राष्ट्रभाषा में प्रगति का स्वर होता है। उस स्वर के बिना भाषा भाषा नहीं कहला सकती। स्वस्थ समाज और देश का निर्माण तभी हो सकता है जब वह तृण मूल स्तर से गाँव तक, गाँव से शहर तक, शहर से प्रदेश और प्रदेश से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर जाए। हिंदी आज यही कर रही है। जरूरत इस बात की है कि जनभाषा को राजभाषा के समीप लाने की कोशिश की जाए ताकि उसका अजनबीपन कम हो।

पहले राष्ट्र की प्रगति वहाँ की खनिज संपदा, प्रौद्योगिकी आदि से आँकी जाती थी, किंतु आज भाषा के द्वारा आँकी जा रही है। जो भाषा जितनी समृद्ध एवं व्यापक है वह राष्ट्र उतना ही प्रगतिशील है। राष्ट्रभाषा में प्रगति का स्वर होता है। उस स्वर के बिना भाषा भाषा नहीं कहला सकती। स्वस्थ समाज और देश का निर्माण तभी हो सकता है जब वह तृण मूल स्तर से गाँव तक, गाँव से शहर तक, शहर से प्रदेश और प्रदेश से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर जाए। हिंदी आज यही कर रही है। जरूरत इस बात की है कि जनभाषा को राजभाषा के समीप लाने की कोशिश की जाए ताकि उसका अजनबीपन कम हो।

भावनात्मक स्तर पर देश को जोड़ना राजभाषा हिंदी की एक अन्य उपलब्धि है। राजभाषा हिंदी का कम-ज्यादा प्रयोग देश में हो रहा है। इससे लोग भावनात्मक रूप से और पास आ रहे हैं। लोगों में यात्रा करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। व्यापार-व्यवसाय या अन्य कारणों से लोग उत्तर से दक्षिण, दक्षिण से उत्तर, पूरब से पश्चिम, पश्चिम से पूरब आ-जा रहे हैं। एक-दूसरे की भाषा, खान-पान, रहन-सहन से परिचित हो रहे हैं। इन स्थितियों ने हिंदी को संपर्क का माध्यम और लोगों को पास आने का अवसर दिया है। कई मुद्दों पर पूरे देश की प्रतिक्रिया एक जैसी प्रकट होती है। दक्षिण में हिंदी प्रचारक हिंदी को राजभाषा ही कहते हैं। दक्षिण में हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। यह एक सकारात्मक प्रवृत्ति है। सरकार के विभिन्न विभागों में हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। रेल विभाग के हजारों-लाखों कर्मचारी हिंदी प्रयोग के वाहक सिद्ध हो रहे हैं। हमारी सेनाओं में अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के बीच हिंदी ही संप्रेषण की भूमिका का निर्वाह करती है। बाजार की भाषा तो हिंदी ही है। विदेशी कंपनियाँ भी हिंदी के माध्यम से अपनी खूबियाँ आम जनता तक पहुँचाने के लिए बाध्य हो रही हैं। यह सब भी देश की प्रगति में राजभाषा हिंदी के योगदान में शामिल है।

देश की प्रगति के संदर्भ में राजभाषा हिंदी की भूमिका की दृष्टि से संचार माध्यम और प्रौद्योगिकी पर ध्यान दिया जाना आज की जरूरत है। आज वही भाषा लोकप्रिय होगी जिसका व्याकरण विज्ञान-संगत होगा, जिसकी लिपि कंप्यूटर लिपि होगी। इस दृष्टि से हिंदी सर्वाधिक समृद्ध भाषा है। इसे और समृद्ध तथा गतिशील बनाना अपेक्षित है ताकि देश की प्रगति में राजभाषा हिंदी का योगदान उत्तरोत्तर सुनिश्चित किया जा सके। इस दृष्टि से पं. विद्यानिवास मिश्र का कथन उद्धृत करना सर्वाधिक

प्रासंगिक है। वे कहते हैं—दुर्भाग्य की बात यह है कि भाषा के विकास पर उतना ध्यान नहीं दिया गया। पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने के लिए आयोग बने। आयोग बनना चाहिए था हिंदी की तमाम प्रयुक्तियों को एकत्र करने और उन प्रयुक्तियों के आधार पर उनके शब्दों के संदर्भानुकूल अर्थों की तालिका बनाने का। वह काम हुआ ही नहीं। संस्कृत और अंग्रेज़ी कोशों का सहारा लेकर शब्द बनने लगे। यह तरीका सही नहीं था। शब्द तो बहुत बने, बहुत से चल भी गए, पर शब्दों के प्रयोग का ध्यान नहीं रखा गया। इसलिए उन शब्दों को जोड़कर जो वाक्य बने वे हिंदी के लिए अनचिन्हें हो गए ; क्योंकि ये वाक्य अंग्रेज़ी विन्यास का ज्यों का त्यों अनुसरण करते थे। (साहित्य अमृत : राजभाषा विशेषांक 1999) इससे स्पष्ट होता है कि प्रयुक्तियों को आधार बनाकर भी शब्द निर्माण का प्रयास हो जिससे जनभाषा हिंदी को राजभाषा हिंदी के निकट लाया जा सके। इससे आम आदमी की भागीदारी बढ़ेगी। देश के विकास या प्रगति का लाभ आम आदमी तक सुलभ हो सकेगा।

और अंत में हिंदी में सूचना क्रांति और बाज़ारवाद के संदर्भ में कुछ उभरते बिंदुओं पर विचार करना भी जरूरी है। आज हिंदी देश की सीमाओं को लाँघकर सात समुंदर पार जा पहुँची है। दुनिया के 150 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। अमेरिका जैसे बड़े देश में हिंदी की पढ़ाई विद्यालय के स्तर पर भी शुरू कर दी गई है। टी.वी. तथा कंप्यूटर में भी हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है, खासकर टी.वी. तो जन माध्यम है। आम लोगों तक पहुँचने के लिए हिंदी अपनाना उसकी नियति है। जो टी.वी. चैनल अंग्रेज़ी में शुरू हुए थे, वे अब बंद हो गए और हिंदी चैनल चौबीस घंटे चल रहे हैं। वैश्विक बाजार प्रतिदिन नहीं बल्कि प्रतिक्षण बढ़ रहा है। दुनिया भर के बाजारों की निगाहें भारत पर हैं। भारत में बाजार की शर्त हिंदी हो गई है। चीन, जापान, अमेरिका, इंग्लैंड जैसे देश अपनी जनता और नई पीढ़ी से कह रहे हैं—हिंदी सीखो! अमेरिकी शासन ने इसके लिए करोड़ों डॉलर खर्च करने का ऐलान पहले ही कर दिया है। अन्य देशों का रवैया भी हिंदी सीखने के लिए अनुकूल है क्योंकि मंदी के दौर में भारत सबके आकर्षण का केंद्र है।

सूचना क्रांति में हर एक के हाथ में मोबाइल है। मोबाइल पर हर कोई बात करता नजर आता है। ध्यान से सुनें तो वह अपने मन की बात हिंदी में करता नजर आएगा। शुरू में कंप्यूटर में हिंदी के लिए द्रविण प्राणायाम करना पड़ता था। आज वह पूरी तत्परता से हिंदी में काम कर रहा है। और-तो-और वर्तनी की भूल भी कंप्यूटर ठीक कर दे रहा है। यह भविष्य के लिए अच्छा शकुन है। हिंदी में तेजी से काम करने के आयाम जुड़ते जा रहे हैं। मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। वह चेतना भी फैला रहा है, हिंदी को भी फैला रहा है। दिल्ली के रामलीला मैदान में जो भी घट रहा है, उसे पूरा देश ही नहीं, पूरा विश्व देख रहा है और दूर शहरों, कस्बों से आए लोगों से संवाददाता सवाल पूछ रहे हैं और दुनिया भर के लोग मुंबई, कोलकाता, गुवाहाटी, बंगलोर से आए लोगों की हिंदी सुन रहे हैं। यह राजभाषा हिंदी का बनाया वातावरण है जो चुपचाप हिंदी को फैला रहा है।

के-40 एफ, साकेत,
नई दिल्ली-110017

☐

विश्व के सर्वोत्कृष्ट कथनों और विचारों का ज्ञान ही संस्कृति है।

—मैथ्यू आर्नल्ड

6

विश्व की स्वैच्छिक हिंदी सेवी संस्थाओं का योगदान

✍ डॉ. कामता कमलेश

हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं की महती भूमिका रही है। इसे मैं इन शब्दों में कह सकता हूँ कि "विश्व में हिंदी का प्रचार कार्य सर्वप्रथम स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं ने ही प्रारंभ किया था तो यह असंगत नहीं होगा।"

भारत से बाहर जहाँ-जहाँ भारतीय लोग गए या ले जाए गए, सर्वत्र उनकी भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज, सभ्यता आदि स्वत: ही पहुँच गई। इस लेख में मैं उन राष्ट्रों में हिंदी के विकास की तथ्यपरक विवरण की झाँकी दे रहा हूँ। ये राष्ट्र हैं- मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, फीजी, गुयाना, सूरीनाम, ट्रिनीडाड एवं टैबेगो (वेस्ट इंडीज), हालैंड, बर्मा (म्यांमार) आदि।

- डॉ. कामता कमलेश का जन्म 10 जनवरी, 1939 को कुड़वा, अमेठी, सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ।
- उन्होंने एम.ए.(हिंदी) प्रथम श्रेणी प्रथम स्थान, पी-एच.डी., साहित्यरत्न, आचार्य, विद्या-वाचस्पति (मानद) तथा विद्यासागर (डी.लिट.) प्राप्त की है।
- वर्तमान में वे हिंदी विभाग जे.एस. हिंदू कॉलेज, अमरोहा, उ.प्र में अध्यक्ष, रीडर एवं शोध-निर्देशक हैं।
- उन्होंने व्याकरण की पुस्तकें, उपन्यास, कहानी, निबंध संग्रह, यात्रावृत, बाल साहित्य की कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं तथा कुछ रचनाओं का अनुवाद भी किया है और कोश रचना भी की है।

मॉरीशस

हिंद महासागर में स्थित मॉरीशस द्वीप में सर्वप्रथम अगस्त 1834 में भारतीय श्रमिक गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाए गए थे और यह क्रम सन् 1916 तक चला, फलत: इस देश में इस समय लाखों प्रवासी भारतीय हैं जिनके पूर्वज भारत से वहाँ गए थे। काका कालेलकर ने इस बारे में कहा था—मॉरीशस हिंद महासागर के बीच विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों की एक प्रयोगशाला के समान है। अनेक संस्कृतियों के लोग अपने-अपने समाज स्थापित कर यहाँ के बहुवर्गीय समाज में सहअस्तित्व की भावना को निभाते हुए विरासत में प्राप्त अपनी भाषा, धर्म, संस्कृति आदि को अब तक अक्षुण्ण बनाए रखें हैं। हिंदी के विकास के लिए सर्वप्रथम यहाँ 12 जून, 1926 को मोतांई लांग में 'तिलक विद्यालय' की स्थापना हुई जो कि वहाँ के कर्मठ हिंदी सेवी स्व. श्री गिरधारी भगत तथा स्व. श्री रामलाल मंगर भगत के सहयोग से हुआ। कालांतर में इसी विद्यालय में 24 दिसंबर, 1935 में हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई और मोतांई लोंग गाँव का नाम 'धारा नगरी' रखा गया। मैं स्वयं इस संस्था की स्वर्ण जयंती समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में वहाँ गया था। हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना मुख्यत: हिंदी प्रचार, व्याकरण सम्मत प्राथमिक से माध्यमिक स्तर तक पढ़ाने और परीक्षाएँ आयोजित करने और भाषा में साहित्यिकता लाने की दृष्टि से हुई थी। प्रसन्नता है कि आज पूरे मॉरीशस में इसकी देखरेख में लगभग 300 सायंकालीन एवं रविवारीय प्राथमिक तथा माध्यमिक पाठशालाएँ चलती हैं और इसी संस्था में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' की सन् 1946 में सर्वप्रथम परिचय परीक्षा आयोजित की गई थी। छात्रों की बढ़ती रुचि को देखते हुए सन् 1956 में प्रथमा तथा सन् 1962 में मध्यमा तथा उत्तमा की परीक्षा और अध्यापन की व्यवस्था हुई। उस समय उत्तीर्ण छात्रों को साहित्य विशारद तथा साहित्यरत्न की उपाधि से विभूषित किया जाता था। हर्ष एवं गर्व की बात है कि मॉरीशसीय सरकार ने इन परीक्षाओं को मान्यता दे रखी

है जिससे इन परिक्षाओं में उत्तीर्ण छात्रों को शिक्षा विभाग में अध्यापन के लिए सरकारी नौकरी मिल जाती है। आज इस संस्था में यथावत अध्यापन एवं अध्ययन की व्यवस्था है तथा प्रतिवर्ष सम्मेलन की परिक्षाओं का केंद्र भी रहता है। इस संस्था की अध्यापिका श्रीमती राजवंती अयोध्या ने डॉ.कामता कमलेश के निर्देशन में 'साहित्य महोपाध्याय' की उपाधि ग्रहण की है। इससे पहले श्री रामेश्वर ओरी मॉरीशस के प्रथम विद्वान हैं जिन्होंने सर्व प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की 'साहित्य महोपाध्याय' की उपाधि ग्रहण की थी। इस संस्था द्वारा 'पंकज' नाम की हिंदी पत्रिका का प्रकाशन भी होता है, जिसके प्रवेशांक का विमोचन मैंने मॉरीशस में किया था। हिंदी की प्रगति के लिए द्वारा प्रचारिणी सभा द्वारा सन् 1935 में स्व. श्री सूर्य प्रसाद मंगर भगत के संपादन में एक हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' भी निकली थी और 'नवजीवन' नाम से एक अलग पत्र भी प्रकाशित किया गया था। सभा प्रतिवर्ष मॉरीशस में हिंदी साहित्यकारों को प्रोत्साहन देने के लिए कविता, कहानी, निबंध, लघुकथा, बाल-साहित्य आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन करती है तथा विजेताओं को उत्तम पुरस्कार देकर उन्हें हिंदी लेखन से जुड़ने को प्रोत्साहित करती है तथा पुरस्कृत रचनाओं को यथाशक्य पुस्तक रूप में प्रकाशित भी करती है। अपनी स्वर्ण जयंती के अवसर पर सभा ने विश्व के अनेक देशों के हिंदी साहित्यकारों को आमंत्रित कर उनके व्याख्यान भी कराए थे। जिसमें मैं स्वयं भी था। अब तो इस संस्था में साहित्य महोपाध्याय, शिक्षा विशारद, पत्रिकारिता एवं जन संचार, विशारद की परीक्षाओं का आयोजन भी होने लगा है। सभा का अपना विशाल भवन और पुस्तकालय है।

मॉरीशस में इसके बाद 'आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा' है जो कि सन् 1930 में स्थापित हुई थी। इसमें शैक्षणिक उन्नति के लिए सायंकालीन पाठशालाएँ चलती हैं। सन् 1973 से इस केंद्र से 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', वर्धा की माध्यमिक परीक्षाओं का आयोजन भी हो रहा है। मैं स्वयं इस संस्था के प्रधान स्व. श्री मंगल प्रसाद तिलकधारी से भेंट कर चुका हूँ। यह सभा प्रतिवर्ष 'विद्या दिवस' मनाती है तथा हिंदी पढ़ने और लिखने की सभी प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन करती है। हिंदी लेखन का प्रचार और भारतीय संस्कृति का जय घोष अनवरत होता है। स्थानीय रेडियो पर जागृति शीर्षक से हिंदी में साप्ताहिक कार्यक्रम होता है। 'पुरोहित प्रशिक्षण कार्यक्रम' भी इसी सभा द्वारा संपन्न होता है। इसके नेतृत्व में लगभग दो सौ सायंकालीन केंद्र चलते हैं।

इसी श्रृंखला में 'मॉरीशस हिंदी लेखक संघ' की स्थापना 9 दिसंबर 1961 को राजधानी पोर्टलुई में हुई। यह जीवंत और प्रखर साहित्यिक संस्था है। हिंदी लेखक संघ का प्रथम कार्यक्रम जयशंकर प्रसाद जयंती के रूप में हिंदी भवन लोंग माउंटेन में हुआ था। विशाल कवि सम्मेलन 'बोटानिकल गार्डेन' और मनोरम समुद्र तटों पर आयोजित किया जाता है। हिंदी लेखक संघ सन् 1965 से बच्चों की पत्रिका 'बाल सखा' का प्रकाशन भी कर रहा है। हिंदी प्रचारिणी सभा के सहयोग से 'पंकज' पत्रिका के विशेषांक का प्रकाशन भी कर चुका है। नए अंकुर (1967) गांधी स्मृति (1970), सुरभित उद्यान (1973), इंद्र धनुष (1976), आकाश दीप (1983), हिंदी लेखक संघ और साहित्य सृजन का आंदोलन (1993), खिले सुमन (1995), रसपुंज कुंडलियाँ (1998), आर्य समाज के हिंदी सेवी (1998), मॉरीशस की मनोहर बाल कहानियाँ (1999) आदि का

मॉरीशस में सर्वाधिक हिंदी और भारतीय संस्कृति के विकास में आर्य समाज संस्था ने भी अपना बहुमूल्य योगदान देते हुए सतत कार्यरत हैं। आर्य सभा नाम से स्थापना सन् 1903 में हुई थी। यह बहुत ही गतिमान और विवेकशील संस्था है जिसने मॉरीशस में हिंदी भाषा, संस्कृति और सभ्यता के लिए ऐतिहासिक कार्य किया है। एक बार महात्मा गांधी ने भी कहा था कि जहाँ आर्य समाज है वहाँ जीवन है, जागरुकता है। मॉरीशस में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार एवं समाज सुधार के कार्य को हिंदी के माध्यम से करने का संकल्प इस संस्था ने उठा रखा है।

प्रकाशन कर चुकी है। इसके अतिरिक्त संघ के कुछ सदस्य ने स्वंय हिंदी में पुस्तकें लिखकर संघ के बैनर तेल उन्हें प्रकाशित करवा चुके हैं। जैसे डॉ. मुनीश्वर लाल चिंतामणि के लोकप्रिय गीत (1964), हिंदी के आधार स्तंभ (1966), सहमी-सहमी सी आवाज (1977) देश के फूल (1978) तथा इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ की-वरदान (1972), आज की हिंदी (1979), विष्णुदत्त मधु की हास्य वाटिका (1973), मोती तोरल की पुस्तक-शादी से आबादी नहीं बरबादी 1974, पं. धर्मवीर घूरा की आर्य समाज मॉरीशस 1973, मणिलाल नौबत की नचिकेता और यम आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

हिंदी लेखक संघ का कार्य हिंदी प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में मॉरीशस में अपना प्रभाव बनाए हुए है। वहाँ के हिंदी साहित्य के इतिहास में इस स्वैच्छिक हिंदी संस्था का योगदान अपना स्वर्णिम पृष्ठ बना चुका है।

सन् 1963 में 'हिंदी परिषद' की स्थापना में स्व. श्री सोमदत्त बखोरी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे अध्यक्ष के रूप में कार्य करते थे। श्री बखोरीजी को भारत सरकार ने 'हिंदी सेवी पुरस्कार' से सम्मानित भी किया था। मॉरीशस के द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। लेखक स्वयं उनका आतिथ्य ग्रहण कर चुका है। इसके द्वारा हिंदी साहित्य सृजन को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने और उसे एकरूपता प्रदान करने में पूर्ण सहयोग मिला है। इस समय देश में इसकी लगभग 18 प्रांतीय परिषदें कार्य कर रही हैं। सभी प्रांतीय परिषद के सदस्यगण केंद्रीय कार्यालय, पोर्टलुई में एकत्रित हुआ करते हैं।

मॉरीशस सनातन धर्म मंदिर परिषद

इसकी स्थापना मुख्य रूप से मंदिरों, शिवालयों में धार्मिक पूजा-पाठ, विधि-विधान से कर्मकांड और सनातन धर्म की रक्षा के लिए कार्य करना है, जो कि एक मात्र संस्कृत व हिंदी में संपन्न किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों में इसका मुख्य योगदान है। इसके अंतर्गत कई हिंदी पाठशालाएँ चलती हैं, जिनमें धर्म, संस्कृति और हिंदी भाषा का व्यावहारिक ज्ञान सिखाया और पढ़ाया जाता है। 'दर्पण' नाम से एक पाक्षिक पत्र भी निकलता है। शिवरात्रि त्योहार पर इसका प्रमुख सहयोग मॉरीशस में लोकप्रिय है।

मानव सेवा निधि (ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट)

इसकी स्थापना सन् 1967 में स्वामी कृष्णानंद महाराज ने किया था। स्वामीजी वाक्वा नगर के 'रामकृष्ण मिशन' में धार्मिक सेवा शिविर की स्थापना से मॉरीशस में प्रचलित 'क्रियौली बोली' के विकल्प के रूप में हिंदी बोलने को प्रेरित और प्रशिक्षित होने में अपना सहयोग देते थे। रामायण पाठ, भागवत कथा, सत्यनारायण कथा, पुराण कथा आदि को पाठशालाओं के वार्षिकोत्सव पर हिंदी भाषा में बोलने की प्रेरणा और सहायता देकर वहाँ 'क्रियौली' की गतिशीलता को रोकने का सफल प्रयास इस संस्था ने किया था। इस ट्रस्ट द्वारा 'स्वहेश' नाम का हिंदी साप्ताहिक पत्र कई वर्षों तक स्व. श्री धनदेव बहादुर के संपादन में प्रकाशित हुआ था। कई कहानीकारों का संग्रह भी प्रकाशित करवाकर उन्हें हिंदी सृजन से जोड़े रखने का आधार भी दिया। राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी में अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन कर उनके विजेताओं को पुरस्कृत करना ध्येय है। 'कृष्णानंद सेवा आश्रम' में सुबह शाम भजन-कीर्तन, योगासन का भी प्रबंध है। एक अनाथालय तथा आयुर्वेदिक चिकित्सालय भी चलाया जाता है। 'प्रियदर्शिनी' नाम से एक विशाल हिंदी पुस्तकालय भी है। इस केंद्र पर भारत एवं अन्य देशों से आए हुए विद्वानों के ठहरने एवं उनके अध्ययन करने का संतोषजनक प्रबंध भी रहता है। मॉरीशस में महात्मा गांधी के आगमन की शताब्दी सन् 2001 के पावन अवसर पर हिंदी में 'गांधी स्मृति' पुस्तक भी प्रकाशित की जा चुकी है। रेडियो पर साप्ताहिक मानस पाठ 'मानस धारा' कार्यक्रम के अंतर्गत प्रसारित होता है। सांस्कृतिक भाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में इस ट्रस्ट का बहुमूल्य योगदान प्रशंसनीय है।

हिंदी संगठन (हिंदी स्पीकिंग यूनियन)

सन् 1994 में इसकी स्थापना मॉरीशस के भूतपूर्व उपराष्ट्रपति सर रवींद्र धरवरन के संरक्षण में हुई। इसका अपना आदर्श वाक्य—'हिंदी ज्ञान हमारा मान' के उद्देश्य से हुआ। 12 दिसंबर, 1994 को मॉरीशस देश के राष्ट्रपति ने मॉरीशस सरकार द्वारा पारित अधिनियम सं. 33 से इसकी स्थापना को औपचारिकता भी प्रदान कर दी। फलत: 07 जून, 1995 को हिंदी संगठन का विधिवत उद्घाटन हुआ। इसके अंतर्गत हिंदी का विकास, हिंदू संस्कृति की रक्षा करते हुए सर्वोन्नति

के लिए कार्य करना है। मैं स्वयं मॉरीशस की अपनी तीसरी यात्रा के समय इस संगठन में अपना व्याख्यान दे चुका हूँ। इसके द्वारा हिंदी वाद-विवाद प्रतियोगिता, कवि सम्मेलन, निबंध प्रतियोगिता, संवाद और नाट्य मंचन की व्यवस्था भी होती है। मॉरीशस सरकार ने इसकी प्रगति और संगठन को सुदृढ़ रखने के लिए आर्थिक सहायता का प्रावधान भी किया है। संगठन का कार्यालय राजधानी पोर्टलुई में है, जिसका उद्घाटन 15 अगस्त, 2001 को तत्कालीन प्रधानमंत्री सर अनिरुद्ध जगन्नाथ ने किया था हिंदी संगठन द्वारा 'सुमन' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन भी हो रहा है हिंदी संगठन मॉरीशस में हिंदी के पूर्ण विकास, प्रचार-प्रसार और जीवंत गतिविधियों को अपना परम उद्देश्य मानकर काम करने का सफल प्रयास कर रहा है।

मॉरीशस में हिंदी और भारतीय संस्कृति के विकास में आर्य समाज संस्था ने भी अपना बहुमूल्य योगदान देते हुए सतत कार्य किया हैं। आर्य सभा नाम से इसकी स्थापना सन् 1903 में हुई थी। यह बहुत ही गतिमान और विवेकशील संस्था है जिसने मॉरीशस में हिंदी भाषा, संस्कृति और सभ्यता के लिए ऐतिहासिक कार्य किया है। एक बार महात्मा गांधी ने भी कहा था कि जहाँ आर्य समाज है वहाँ जीवन है, जागरूकता है। मॉरीशस में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार एवं समाज सुधार के कार्य को हिंदी के माध्यम से करने का संकल्प इस संस्था ने उठा रखा है। इससे वहाँ हिंदी बोलने, अध्ययन और अध्यापन को बल मिलता है। वस्तुत: आर्य समाज हिंदी को 'आर्य भाषा' के नाम से अभिहीत करता है। सन् 1911 से आर्य पत्रिका का सभा के संरक्षण में लगभग 300 प्राथमिक सायंकालीन पाठशालाएँ और माध्यमिक स्कूल का संचालन भी होता है। सभा द्वारा विद्या विनोद, विद्या वाचस्पति की परीक्षाएँ भी आयोजित होती हैं। सभा द्वारा प्रतिवर्ष राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'विद्या दिवस' मनाया जाता है। छात्रों को प्रमाण-पत्र के साथ ही उत्तम पुरस्कार भी दिया जाता है। इस संस्था द्वारा 'आर्योदय' पत्रिका का प्रकाशन भी अनवरत हो रहा है। हिंदी को सुव्यवस्थित एवं स्तरीय ढंग से पढ़ाने के लिए अनेक निरीक्षक नियुक्त हैं। पाठ्यपुस्तकों की रचना व चयन भी होता है। रेडियो कार्यक्रम के अंतर्गत 'वैदिक वाणी का' प्रति रविवार को प्रात: प्रसारण भी होता है। दूरदर्शन पर भी कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए यह सभा सर्वाधिक रूप से अग्रणी होते हुए अपने सैद्धांतिक आदर्शों को सदैव बढ़ावा देती है। प्रसन्नता की बात है कि 22 सितंबर 2002 को सभा की शतवार्षिकी बड़े धूमधाम से मनाई गई। स्व.मोहन लाल मोहित आर्य समाज के प्राण माने जाते हैं और उनका योगदान हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए सदैव स्वर्ण अक्षरों से लिखा जाएगा।

इन संस्थाओं के द्वारा हिंदी दिवस, हिंदी साहित्यकारों की जयंतियाँ, मानस और गीता पाठ तथा होली, दीवाली पर्व पर विशेष मिलन कार्यक्रम अनवरत होते रहते हैं। नार्वे में नार्वेईयन भारतीय सांस्कृतिक केंद्र द्वारा हिंदी की पढ़ाई होती है। इसके संस्थापक प्रवासी भारतीय श्री सुरेश चंद्र शुक्ल 'शरद आलोक' हैं जो कि विगत लगभग कई दशकों से इस संस्था को चला रहे हैं तथा स्पाईल (दर्पण) नाम से द्विभाषिक हिंदी पत्रिका का प्रकाशन करते हैं और सन् में अनेक साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन भी करते हैं।

सन् 1920 में गीता मंडल नामक संस्था श्रीमद्भगवतगीता के प्रचार-प्रसार के लिए स्थापित हुई। इससे वहाँ के छात्रों को हिंदी पढ़ने की प्रेरणा मिलती है और गीता के आदर्शों को जीवन में उतारने के लिए एक मंच का सहारा भी मिलता है। इससे वहाँ हिंदी की रक्षा होती है और भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था भी बनी रहती है।

इस प्रकार सन् 1925 में हिंदू महासभा की स्थापना हुई रामायण गान और हिंदी निबंध की प्रतियोगिताएँ आयोजित करना इसका परम ध्येय है। गीता और रामायण से संबंधित परीक्षाएँ भी होती हैं। 'सुधा वृष्टि' नाम से इस सभा का साप्ताहिक कार्यक्रम होता है। मॉरीशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के प्राण स्व. दयानंद लाल बसंतराय जी इस संस्था के नियामक माने जाते हैं। हिंदी और भारतीय संस्कृति के आधार को मॉरीशस में सुदृढ़ता प्रदान करने में इस सभा का प्रमुख स्थान है।

दक्षिण अफ्रीका

सन् 1860 में सर्वप्रथम यहाँ भारतीय श्रमिकों का एक जत्था यहाँ पहुँचा था। तब से लेकर 1916 तक लगभग कई सहस्त्र भारतीय यहाँ लाए गए। वे अपने साथ भारतीय संस्कृति एवं मातृभाषा को भी लाए थे। भारतीयों को अपनी मातृभाषा पढ़ाने के लिए स्न 1948 में 'हिंदी शिक्षा संघ' की स्थापना पं. नरदेव वेदलंकार के सहयोग से हुई। इसी सहयोग के द्वारा सांध्यकालीन कक्षाएँ चलीं और कभी-कभी अंशकालीन रूप में भी हिंदी पढ़ाई की जाने लगी। 'हिंदी प्रचार समिति', वर्धा की कोविद और रत्न की परीक्षाओं का आयोजन बराबर होता रहता है। इससे वहाँ हिंदी के विकास को बल मिला। 20वीं शताब्दी के आरंभ से ही भारतीय लोग अपनी भाषा व संस्कृति की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हो चुके थे। संघ के तत्वावधान में हिंदी में नाटक, एकांकी, संगीत, नृत्य, गीता-पाठ, मानस-पाठ का आयोजन होता रहता है। इससे हिंदी को शुद्ध बनाने और उच्चता प्रदान करने में सहायता मिली। जबकि यहाँ तमिल, तेलुगू, गुजराती, उर्दू आदि बोलनेवाले प्रवासी भारतीय भी हैं पर सबसे सामान्य संपर्क करने के लिए हिंदी ही उपयोग में लाई जाती है जो कि हर्ष का विषय है।

सन् 1916 में स्वामी भवानी दयाल सन्यासी ने 'हिंदी' प्रचारिणी सभा की स्थापना की और यहाँ एक साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन किया तथा 'हिंदी' नामक समाचार पत्र का प्रकाशन भी किया। सन् 1925 में 'सनातक धर्म सभा' की स्थापना से हिंदी और संस्कृति के विकास, शिक्षण और अध्ययन आदि की दिशा में आशातीत प्रगति हुई। फलस्वरूप सन् 1977 में सरकारी हाईस्कूलों में और सन् 1984 में प्राईमरी स्कूलों में हिंदी तथा अन्य भाषाओं का अध्ययन एवं अध्यापन प्रारंभ हुआ। रंग भेद के कारण ही इस कार्य में अवरोध आता रहता था। अब तो नई शिक्षा नीति के आधार पर हिंदी, संस्कृत, तमिल, तेलुगू, गुजराती और उर्दू की पढ़ाई आरंभ हुई। पाठ्यक्रम की पुस्तकें भी तैयार की जाती हैं तथा उनका प्रकाशन भी होता है। इस समय वहाँ धर्म-प्रथमा, धर्म-प्रवेश, धर्म-प्रकाश और हिंदुत्व पर डिप्लोमा की परीक्षाएँ होती रहती हैं। सन् 1903 में महात्मा गांधी के अफ्रीका प्रवास के समय 'इंडियन ओपीनियन' साप्ताहिक हिंदी संस्करण भी प्रकाशित हुआ था और इन सबके आधार पर वहाँ हिंदी का विकास स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं और हिंदीभक्तों द्वारा अविरल रूप से प्रवाहमान है।

फीजी

सन् 1879 में भारतीय श्रमिकों का प्रथम जत्था 'लिवनीदास' नामक जलपोत से वहाँ पहुँचा था। सन् 1916 तक श्रमिकों का आना-जाना बराबर चलता रहा। आज फीजी में लाखों प्रवासी भारतीय हैं। प्रारंभ में वहाँ सायंकालीन बैठकाओं में हिंदी की चर्चा होती और किस्से, कहानियाँ, भजन, कीर्तन और लोक कथाओं से हिंदी का ज्ञान कराया जाता था। फीजी में हिंदी के प्रचार-प्रसार सर्वाधिक रामायण मंडलियों और आर्य समाज ने किया। 'रामचरितमानस' के माध्यम से हिंदी और संस्कृत का ज्ञान होता था। धर्म, भाषा और नैतिक जीवन पद्धति के लिए रामायण मंडलियाँ अपना ऐतिहासिक योगदान करती हैं। इस समय सैकड़ों मंडलियाँ पंजीकृत हैं। मैं स्वयं अपनी फीजी यात्रा में नांदी, सुवा, बा आदि शहरों की रामायण मंडलयों में जाकर हिंदी पर व्याख्यान दे चुका हूँ। सन् 1922 में लौटोका नगर में गुरुकुल संस्था की स्थापना हुई। इसमें हिंदी के पठन-पाठन का कार्य होता था। पं. अमीचंद्र वेदालंकार ने इसकी स्थापना की थी। आर्य-समाज, फीजी ने वहाँ हिंदी की पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित भी करवाई तथा अध्यापन की व्यवस्था की। इस संस्था के अंतर्गत पूरे देश में लगभग 15 आर्य समाज केंद्रों की स्थापना हो चुकी है। इससे हिंदी के प्रसार में आशातीत सफलता मिली।

रामायण मंडलियों द्वारा संध्या के समय बैठकाओं में भजन कीर्तन तथा भंडारा होते हैं। नाटक और ख्याल, रामलीला, रासलीला की जाती है। इसके द्वारा हिंदी का प्रचार खूब हुआ। पं. तोताराम सनाढ्य ने भी इस कार्य में सर्वाधिक सहयोग दिया था। रंगमंच नामक एक संस्था की स्थापना से भी हिंदी को लोकप्रियता मिली।

फीजी हिंदी महापरिषद

इसकी स्थापना सन् 1992 में हुई, इसके कारण हिंदी के बहुमुखी विकास में ऐतिहासिक कार्य हुआ है। मानस चतुष्शती समारोह के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर हिंदी पुस्तकालय और पाठ्यक्रम का निर्धारण होने लगा है। हिंदी की प्रतियोगिताएं और व्याख्यान करवाना इसका ध्येय है। स्वर्गीय डॉ. विवेकानंद शर्मा संस्थापक अध्यक्ष ने इस क्षेत्र में सक्रिय कार्य किया था। विश्व में सर्वप्रथम 'मानस-पंचांग' इसी संस्था ने तैयार किया जो आज तक प्रतिवर्ष प्रकाशित होता है।

फीजी हिंदी पत्रकार संघ

इसकी स्थापना से वहाँ के हिंदी लेखकों को संगठित करना तथा उनके सेवाओं को मूल्यांकित करने और प्रकाशन में भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ है। इससे नई पीढ़ी के हिंदी सेवियों को संबल और प्रोत्साहन मिलता है। समय-समय पर साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होता रहता है तथा उसको समाचार पत्रों में प्रकाशित भी कराया जाता है। 'बा कल्चरल सोसाइटी' नाम की संस्था और खालसा कालेज के बैनर तले भी हिंदी का प्रसार-प्रचार होता है। स्व. जोगेंदर सिंह कंवल इस कॉलेज के प्राचार्य रह चुके हैं। मैं स्वयं उन्हीं के आमंत्रण पर फीजी की यात्रा पर गया था। उन्होंने अनेक संस्थाओं को जन्म दिया, जैसे—गुरुद्वारा कमेटी, हिंदी सभा आदि। इस संस्था के माध्यम से भी हिंदी का प्रचार-प्रसार होता रहता है तथा पत्रिकाएँ भी निकलती हैं।

सन् 1987 में फीजी हिंदी समिति की स्थापना स्व. श्री रामनारायण गोविंद ने किया था। इस संस्था के द्वारा हिंदी की विभिन्न विधाओं में साहित्य लिखवाया और करवाया गया, जैसे-कविता, कहानी, नाटक, भेंटवार्ता, लोककथा, लोकगीत और निबंध आदि। इस संस्था के भारतीय सलाहकार 'विश्वयात्री डॉ. कामता कमलेश' को बनाया गया तथा सदस्य के रूप में हिंदी की प्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका डॉ. अर्चना चंदेल पूजा को नामित किया गया। इस संस्था ने अब तक कुछ प्रकाशन और कवि गोष्ठी का आयोजन किया है। श्री गोविंदजी के स्वर्गवास के बाद उनके पुत्र भी इस दिशा में कार्यरत हैं और फीजी के लोक साहित्य पर विशेष रूप से कार्य कर रहे हैं।

सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा

इस सभा ने भजन संग्रह, सरल देव पूजा पद्धति का प्रकाशन कर हिंदी को जन-जन तक पहुँचाया है। इसके पाँच विद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई होती है तथा रेडियो पर प्रतिदिन प्रात: हिंदी में, पत्नी और परिवार, दुल्हन चली पिया के द्वार, किसानों की कहानी अपनी जुबानी, इंद्रधनुष और लोकमाधुरी स्तंभ के अंतर्गत कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। हिंदी महापरिषद संस्था इसकी प्रेरक रही है।

सूरीनाम

सन् 1873 में 'लालाडूख' नामक जलपोत से भारतीय श्रमिकों का प्रथम जत्था यहाँ पहुँचा था। सन् 1916 तक हजारों भारतीय श्रमिक यहाँ लाए गए जो कि देश के विभिन्न भागों में खेतों में काम करने और वाक्साइट की खुदाई में लगाए गए। प्रवासी भारतीय को अपनी भाषा सीखने, पढ़ने के लिए, यहाँ सन् 1928 तक कोई व्यवस्थित कार्य नहीं हुआ। मात्र सांध्य कालीन बैठकाओं एवं मंचों में कुछ मौखिक कार्य अवश्य हुए। सन् 1977 में सूरीनाम हिंदी परिषद नामक संस्था स्थापना राजधानी पारामारिबों में हुई। इस केंद्र में हिंदी की पढ़ाई प्रतिदिन शाम को होती है। यहाँ परिचय, प्रथमा, मध्यमा आदि का अध्यापन अविरल चल रहा है। वह हिंदी प्रचार समिति, वर्धा की परीक्षाओं का केंद्र है। इसके पहले 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा', मद्रास का केंद्र भी रहा है। इस केंद्र पर मैं स्वयं 1984 में अध्यापन कर चुका हूँ तथा 'सूरीनाम दर्पण' पत्रिका का सन् 1984 में प्रकाशन भी करवाया था तथा नारा दिया—'हिंदी पढ़ो ही नहीं वरन् लिखो भी'। क्योंकि वहाँ 'सरनामी हिंदी' को 'रोमनलिपि' में लिखा जाता है। प्रसन्नता की बात है कि इस केंद्र की परीक्षाओं को सूरीनाम सरकार ने 21 मार्च, 1984 को अपनी मान्यता भी दी है। इसीलिए इस तिथि को सूरीनाम हिंदी परिषद प्रतिवर्ष हिंदी दिवस के रूप में मानती है। इसी संस्थान से प्रतिवर्ष सैकड़ों हिंदीप्रेमियों को अपनी भाषा, संस्कृति और अस्मिता की रक्षा का संबल मिलता है।

माता गौरी संस्था

सूरीनाम में इसकी स्थापना श्री महातम सिंह ने किया था जो कि भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के द्वारा वहाँ हिंदी अध्यापन के लिए गए थे। बाद में वे वहीं के निवासी हो गए तथा इस संस्थान की गतिविधियों और हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपने जीवन को लगा दिया। इस संस्थान से, शांतिदूत और सेतुबंध पत्रिका का अनियतकालीन रूप से संपादन और प्रकाशन भी करते हैं। इस संस्थान में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास की परीक्षाओं का केंद्र है जिसमें सैकड़ों छात्र प्रतिवर्ष बैठते हैं। इसके साथ ही हिंदी की सभी प्रकार की गतिविधियों का केंद्र है और सायंकालीन कक्षाएँ अनवरत चलती हैं।

हिंदी प्रचार समिति

इसका श्री गणेश स्व. डॉ. ज्ञान हंस अधीन ने किया था। इन्होंने सन् 1953 में हिंदी डच कोश बनाया जिसका प्रकाशन पुस्तक सदन, पारामारिबो, सूरीनाम ने किया था। सन् 1966 में डच भाषा के माध्यम से स्व. एम.ए. गुलजार ने सूरीनाम के प्रवासी भारतीयों को हिंदी पढ़ाने का कार्य किया। इस समिति के माध्यम से हिंदी के साहित्यिक रूप को बढ़ावा मिलता है तथा लेखन प्रकाशन का निर्देश दिया जाता है।

आर्य समाज और आर्य दिवाकर महासभा

सूरीनाम में आर्य समाज ने हिंदी प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। पारामारिबो में आर्य दिवाकर का विशाल भवन है तथा पूरे राष्ट्र में अनेक स्थानों पर आर्य समाज की साप्ताहिक बैठकें होती हैं, जिनमें वैदिक धर्म, हिंदी और संस्कृत की शिक्षा भी दी जाती है। इसकी लगभग 24 पाठशालाएँ पूरे राष्ट्र में चलती हैं।

इसी संस्था के तत्वावधान में सन् 1984 में 'डॉ.कामता कमलेश हिंदी स्कूल और पुस्तकालय' की स्थापना हुई। इसके संस्थापक अध्यक्ष हैं—आर्य दिवाकर के युवा कार्यकर्ता श्री महेंद्र कुमार प्रसाद। इस स्कूल में हिंदी, संगीत तथा नृत्य की शिक्षा दी जाती है। छात्रों को परिचय एवं प्रथमा की पढ़ाई की सुविधा है। इन परीक्षाओं का प्रधान केंद्र पारामारिबो में है। इसमें लगभग सेकड़ों छात्र सायंकालीन कक्षाओं में अध्ययन करते हैं। समय-समय पर हिंदी के विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन भी होता रहता है।

सरस्वती प्रेस एवं प्रकाशन संस्था

सूरीनाम में यह अकेला हिंदी प्रेस है जो इंदिरा गांधी बेख पर स्थित है। स्व. पं. शिव रतन बरस्त्री ने इसकी स्थापना की थी। संस्था ने अनेक हिंदी पुस्तकों का प्रकाशन भी किया है। हिंदी के विकास में इस प्रेस का वही महत्त्व है जैसा कि भारत में सरस्वती पत्रिका और इंडियन प्रेस का है। सन् 1890 में सरकार ने प्रवासी भारतीयों की पाठशालाओं में हिंदी पढ़ाने की अनुमति दी थी और सन् 1935 में बहनों की बातें, धार्मिक शिक्षा पुस्तक का प्रकाशन, हिंदी की पाठ्य सामग्री सुलभ कराने की दिशा में मुख्य कार्य किया। इसके साथ ही आर्य दिवाकर संदेश पत्रिका का प्रकाशन भी यहीं से होता है।

सनातन धर्म महासभा

सन् 1929 में इसकी स्थापना हुई थी। तब से गीता, मानस, दुर्गा पूजा, यज्ञ के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार होता है। समय-समय पर कीर्तन, आरती व रामायण पाठ और अखंड रामायण पाठ का आयोजन भी होता है। इससे हिंदी को सांस्कृतिक-भाषा के रूप में पहचान बनाए रखने में सहायता मिलती है। हिंदू संस्कारों को क्रियान्वित करने के लिए इस संस्था का संस्कृत और हिंदी का कार्य सराहनीय है।

त्रिनिडाड एंड टोबेगो (वेस्ट इंडीय)

सन् 1845 में यहाँ भारतीय श्रमिकों का प्रथम दल 'फतैलरोजक' नामक जलपोत से आया था। ये सभी भारत के विभिन्न प्रांतों से विशेषकर उत्तर भारत से वहाँ गए थे। हिंदी इनकी प्रमुख बोली थी। अपने धर्म, संस्कृति और मातृभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1904 में आर्य समाज की स्थापना हुई। इसके माध्यम से वैदिक संस्कृत के साथ हिंदी के प्रयोग को बल मिला। सन् 1934 में दीपावली के शुभ अवसर पर यहाँ भव्य आर्य समाज मंदिर की नींव रखी गई, जिसमें हिंदी और संस्कृत की सायंकालीन रविवार कक्षाएँ चलती हैं। इस समय पूरे देश में दस स्कूलों में और पच्चीस सभागारों में हिंदी के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था है। सैंट जोजफ स्कूल में आर्य प्रतिनिधियों ने पहला हिंदी स्कूल खोला था और यहीं से आर्य संदेश नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। सन् 1952 में हिंदी एजूकेशन बोर्ड की स्थापना हुई जो गाँव-गाँव में हिंदी की पाठशाला खुलवाकर परीक्षा और अध्यापन का कार्य करता है।

भारतीय विद्या संस्थान

सन् 1966 में इसकी स्थापना प्रो. हरि शंकर आदेश ने किया था। आदेश जो भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के द्वारा वहाँ हिंदी अध्यापन के लिए गए थे , लेकिन कालांतर में वे वहीं के निवासी हो गए और अब तक इस संस्थान से जुड़े हैं। इस संस्थान में हिंदी, संस्कृत के साथ गायन, वादन, नृत्य आदि की शिक्षा दी जाती है और हिंदी के प्रचार-प्रसार में इसका भरपूर योगदान है। इस

संस्थान के भारतीय सलाहकार विश्वयात्री डॉ. कामता कमलेश रह चुके हैं। इस संस्थान की हिंदी पाठ्य-पुस्तक हिंदी विवेक, दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है तथा ज्योति नाम की द्वैभाषिक हिंदी, अंग्रेज़ी पत्रिका का प्रकाशन भी होता है।

हिंदी निधि

सन् 1986 में इसकी स्थापना हुई थी इसके द्वारा प्राइमरी से लेकर माध्यमिक स्तर तक हिंदी की पढ़ाई होती है तथा कई पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जैसे—हिंदी निधि तथा हिंदी परिचय। इसी संस्थान के प्रयास से ट्रिनीडाड में पाँचवा विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हुआ था। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य हिंदी साहित्य और भाषा को बढ़ावा देकर उसे जनप्रिय बनाना है। समय-समय पर हिंदी के कार्य होते रहते हैं।

सनातन धर्म महासभा

हिंदी के माध्यम से सांस्कृतिक और धार्मिक गतिविधियों को गतिशील बनाने में इसका प्रमुख स्थान है। इस समय वहाँ 45 महासभा कार्य कर रही हैं। जहाँ मानस, गीता, भागवत एवं दुर्गा पूजा आदि के समय हिंदी को ही प्राथमिकता मिलती है। सन् 1979 में एक भारतीय प्रकाशन संस्था ने हिंदी पाठ्यपुस्तकों की 3000 प्रतियाँ छपवाकर वहाँ बँटवाई थीं। वहाँ के प्रत्येक मंदिर में सायंकालीन हिंदी पाठशालाएं चलती हैं तथा हिंदी की गतिविधियों का आयोजन होता रहता है। हिंदू पर्वों एवं त्योहारों पर इसका विशेष महत्त्व होता है जिसके द्वारा हिंदी का प्रचार-प्रसार स्वाभाविक रूप से होता रहता है।

कबीर पंथ

ट्रिनीडाड में कबीर पंथियों का एक प्रमुख समूह है जहाँ कबीर की वाणी, सबद, रमैनी, साखी और दोहों का पाठ होता है। इसके माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार होता ही है साथ ही निर्गुण मत पर चर्चा भी होती है। इस समय ट्रिनीडाड में इसकी कुल तीन पाठशालाओं में हिंदी की पढ़ाई पंथ की देखरेख में होती है। कबीर वाणी, पुस्तिका का प्रकाशन भी हो चुका है। कबीरपंथी साधु ही अपने व्याख्यानों से भारतीय संस्कृति की व्याख्या करते हैं तथा हिंदी में पूरा आयोजन होता है।

गुयाना

सर्वप्रथम सन् 1938 में यहाँ भारतीय श्रमिकों का दल पहुँचा था। पहले इसका नाम 'ब्रिटिश गुयाना' था और जार्जटाऊन इसकी राजधानी है। 'टूटल भाखा' के रूप में हिंदी के बोलचाल के शब्द इसके प्रयोग में आते हैं। वैसे वहाँ अंग्रेज़ी भाषा का पूर्ण बाहुल्य है। दुख है कि बहुत से प्रवासी भारतीय विवशता में ईसाई धर्म स्वीकार कर चुके हैं। सन् 1921 में वहाँ आर्य समाज की स्थापना हुई जिससे हिंदी और भारतीय संस्कृति को सहारा मिला। संस्कार और पूजा, व्यावहारिक कर्मकांड के समय हिंदी के आवश्यक शब्दों का प्रयोग होता और इसकी व्याख्या होती है। 'आर्य ज्योति' पत्रिका का प्रकाशन भी होता है। 'सनातन धर्म सभा' इसी प्रकार कार्य करती है और अमर ज्योति नाम से पत्रिका का प्रकाशन कर मानस, गीत, हनुमान चालीसा, भागवत आदि के कुछ अंशों का प्रकाशन कर हिंदी के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया जाता है। इस देश में 'भारतोदय' नाम की एक संस्था है जो कि हिंदी को बढ़ावा देने के लिए सतत प्रयास करती है। पं. रामलाल हिंदी के प्रबल समर्थक हैं जो कि भारत में शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं।

गुयाना हिंदी प्रचार सभा

यह सन् 1955 से कार्य कर रही है। इस संस्था द्वारा ये परीक्षाएँ सदा आयोजित होती हैं—प्राथमिक, माध्यमिक तथा राष्ट्रभाषा की परीक्षाएँ। यह परीक्षाएँ जनवरी और अगस्त में होती हैं। इसके अतिरिक्त गुयाना आर्य प्रतिनिधि सभा, गुयाना धार्मिक सभा का कार्य भी प्रशंसनीय है। यथार्थ रूप में अब यहाँ हिंदी लोकप्रिय नहीं रह गई है यह चिंता का विषय है।

नीदरलैंड

इसे पहले 'हालैंड' कहा जाता था। इस देश में सूरीनाम से

प्रवासी भारतीय बहुल संख्या में आए क्योंकि सूरीनाम अपनी स्वतंत्रता से पहले हालैंड का ही उपनिवेश था। यहाँ हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कुछ संस्थाएँ कार्यरत हैं।

नीदरलैंड हिंदी परिषद

हिंदीसेवी श्री बी.एल. बृजमोहन अध्यक्ष के रूप में कार्य कर चुके हैं। सायंकालीन केंद्रों पर हिंदी की पढ़ाई होती है तथा परिचय, प्रथमा, मध्यमा की परीक्षाओं की भी व्यवस्था करवाई जाती है। आज पूरे राष्ट्र में इस संस्था की कई शाखाएँ हैं। वर्तमान में डॉ. रामदास इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।

लालारूख

सूरीनाम से आए हुए लाखों प्रवासी भारतीयों ने इस संस्था को स्थापित किया है। बड़े-बड़े नगरों में इस संस्था के केंद्र हैं। आपसी सौहार्द बनाने एवं संगठित रहने के लिए 'एकता-भवन' बनाया गया है। 'लालारूख' नाम से हिंदी एवं डच में एक पत्र भी निकलता है। समय-समय पर कहानी, कविता, वाद-विवाद, एकांकी की प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया जाता है। विजेताओं को प्रमाण-पत्र के साथ उत्तम पुरस्कार से अलंकृत किया जाता है। होली, दीवाली, रक्षाबंधन पर विशेष कार्यक्रम आयोजित होते हैं।

आर्य समाज

इस संस्था के माध्यम से वैदिक धर्म को हिंदी के माध्यम से प्रचारित-प्रसारित किया जाता है। आर्य समाज प्रभाकर, आर्य वेदमाता मंदिर, अपना घर अपना मंदिर आदि नामों से राष्ट्र के बड़े नगरों में इसकी शाखाएँ हैं जहाँ हिंदी का पठन-पाठन होता है। सूरीनाम से आए हुए पं. सूर्य प्रसाद वीरे शूरवीर इसके प्रमुख कार्यकर्ता हैं।

सत्य सनातन वैदिक प्रकाश

इसके माध्यम से संस्कार और नैतिक पक्षों का ज्ञान कराया जाता है। 'वैदिक धर्म नीदरलैंड' के निर्देशन में हिंदी परिषद की परीक्षाएँ भी होती हैं। आर्य पद्धति, पुस्तक का प्रकाशन भी हुआ है। देश में यज्ञ संस्कार शिक्षण के अंतर्गत हिंदी एवं संस्कृत का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। संस्कृत, हिंदी पाठशाला का संचालन भी होता है। प्रवासी भारतीय अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए सभी प्रकार का प्रयास करते हुए ओम वाणी संगठन, हिंदी दिव्य-संदेश नाम से लघु पत्रिकाएँ भी प्रकाशित करते हैं जिससे हिंदी पत्रकारिता को बल मिलता है। यहाँ पर हिंदी की परीक्षाओं का केंद्र है तथा छात्रों को प्रमाण-पत्र से अलंकृत किया जाता है।

म्यांमार (बर्मा)

सन् 1937 तक यह भारत की सीमा में माना जाता था। ब्रह्मदेश के नाम से प्राचीन भारत में गरिमा के साथ इसका नाम लिया जाता था। वर्तमान समय में इसका नाम म्यांमार है। इस राष्ट्र में लाखों मूल भारतीय के वंशज रहते हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए इस देश में अनेक स्वैच्छिक संस्थाएँ हैं, जहाँ बर्मी, हिंदी, संस्कृत, पालि अध्यापन की व्यवस्था है।

बर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन

इसकी स्थापना सन् 1950 में हुई थी। हिंदी की शिक्षा, कार्यक्रम तथा हिंदी की प्रतियोगिताओं को आयोजित करने का प्रयास किया जाता है। प्रौढ़ महिलाओं को हिंदी शिक्षा का कार्य 'प्रौढ़ शिक्षण योजना' के अंतर्गत बहुत दिनों तक चला। इसी संस्था ने प्रयाग के हिंदी साहित्य सम्मेलन की विशारद, साहित्य रत्न, आयुर्वेद रत्न, शिक्षा विशारद, वैद्य विशारद आदि की परीक्षाओं की व्यवस्था होती थी। सन् 1985 तक डॉ. ओमप्रकाश केंद्र के व्यवस्थापक रहे। हिंदी प्रचार समिति, वर्धा की परीक्षाओं का भी संचालन यहाँ होता था। रंगून और जियावाड़ी, चौतगा नगर में इसके केंद्र थे। सन् 1936 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास का केंद्र भी यहाँ खुला। सन् 1940-41 में द्वितीय महायुद्ध के समय सारी व्यवस्थाएँ अस्त-व्यस्त हो गईं। फलत: इन संस्थाओं पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। 'शारदा सदन' नाम से बालिकाओं में हिंदी शिक्षण के लिए इसकी स्थापना हुई। कुछ वर्षों के बाद यह भी बंद हो गई।

आर्य समाज

इस संस्था की स्थापना सन् 1927 में हुई। यहाँ वैदिक धर्म का

प्रचार हिंदी माध्यम से होता है। अखिल वर्मा आर्यन लीग के अंतर्गत लगभग 15 आर्य समाज इस समय कार्यरत हैं। जहाँ हिंदी, संस्कृत आदि की शिक्षा दी जाती है। रंगून, जियावाड़ी में इसके बड़े कार्यालय हैं। आर्य युवक जागृति पत्रिका का प्रकाशन होता है। इससे भी हिंदी प्रचार को बल मिलता है। सन् 1953 में 'ब्रह्मभूमि' पत्रिका प्रकाशन हुआ। बर्मा समाचार, प्राची कलश, साप्ताहिक प्रवासी, दैनिक नवजीवन आदि पत्रों का प्रकाशन इन्हीं संस्थाओं के सहयोग से हुआ था। वर्तमान समय में राजनैतिक अस्थिरता के कारण हिंदी के कार्यक्रमों में अप्रत्याशित रूप से बाधा आ रही है।

इसके अतिरिक्त विश्व के अन्य अनेक राष्ट्रों में भी हिंदी की स्वैच्छिक संस्थाएँ चल रही हैं जो हिंदी को विश्व की पहचान बनाने और इसके महत्त्व को स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो रही हैं, जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, कनाडा में हिंदी परिषद, क्यूबेक में हिंदी संघ, हिंदी लिटेरेरी सोसायटी आदि। सन् 1971 ओटावा में स्थापित मुकुल हिंदी स्कूल, लंदन में यू.के. हिंदी समिति, सन् 1987 में स्थापित हिंदी अंतर्राष्ट्रीय विकास परिषद आदि संस्थाएँ भी हैं। इन संस्थाओं के द्वारा हिंदी दिवस, हिंदी साहित्यकारों की जयंतियाँ, मानस और गीता पाठ तथा होली, दीवाली पर्व पर विशेष मिलन कार्यक्रम अनवरत होते रहते हैं। नार्वे में नार्वेईयन भारतीय सांस्कृतिक केंद्र द्वारा हिंदी की पढ़ाई होती है। इसके संस्थापक प्रवासी भारतीय श्री सुरेश चंद्र शुक्ल 'शरद आलोक' हैं जो कि विगत लगभग कई दशकों से इस संस्था को चला रहे हैं तथा 'स्पाईल' (दर्पण) नाम से द्विभाषिक हिंदी पत्रिका का प्रकाशन करते हैं और वर्ष में अनेक साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन भी करते हैं।

हिंदी की गतिविधियों से सभी को अब समय-समय पर इन संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय लोगों द्वारा लिखित कविता, कहानी संग्रहों का प्रकाशन भी होता है। पर इन संस्थाओं में हिंदी की परीक्षाओं का कोई प्रबंध नहीं है। अपनी अस्मिता की रक्षा के साथ हिंदी को जीवंत बनाए रखने का सफल प्रयास सदैव होता रहता है जो कि प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय साहित्यिक एवं भाषिक-यज्ञ है इसमें हम सभी को अपना अर्ध्य देना चाहिए।

पूर्व हिंदी प्रोफेसर
10, बड़ा बजार, अमरोहा
244221, उ.प्र., भारत

□

छोटी नदियाँ शोर करती हैं और बड़ी नदियाँ शांत-चुपचाप बहती हैं।

— सुत्तनिपात

सीखे गए को भूल जाने पर जो कुछ बच रहता है, वही शिक्षा है।

— स्किनर

जिसके जीने से बहुत से लोग जीवित रहें, इस संसार में वास्तव में वही जीता है।

— विष्णु शमा

7

मॉरीशस में हिंदी तथा हिंदी प्रचारिणी सभा

✍ श्री अजामिल माताबदल, श्री धनराज शंभु

'हिंदी प्रचारिणी सभा' मॉरीशस टापू के उत्तर प्रांत के पाम्प्लेमूससज जिले के लॉन्ग माउंनटेन गाँव में स्थित है। इस गाँव को शुरू-शुरू में 'धारा नगरी' भी बोलते थे, पर आज अंग्रेज़ी में लॉन्ग माउंटेन या फ्रेंच में मोंताईलॉन्ग से प्रसिद्ध है। यह संस्था एक सांस्कृतिक, असांप्रदायिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्था है। इसमें सैकड़ों हिंदी प्रेमी सदस्य हैं। एक अंतरंग समिति द्वारा यह संस्था हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य करती है। कार्यकारिणी सदस्यों के अतिरिक्त दो कर्मचारी स्थायी रूप से कार्य करते हैं।

हिंदी प्रचारिणी सभा का उद्देश्य हिंदी भाषा का प्रचार, हिंदू संस्कृति की रक्षा तथा प्रचार-प्रसार करना है। इसका मूल मंत्र 'भाषा गई तो संस्कृति गई' है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय गिरमिटिया मजदूर 1834 में भारी संख्या में मॉरीशस लाए गए थे। यहाँ आकर निराशाजनक स्थिति में रहते हुए भी वे हिम्मत नहीं हारे। दिन भर की कड़ी मेहनत से मॉरीशस की काया पलटने में जी-जान से लग गए। उन्हें अच्छा मकान, अच्छे कपड़े, खुराक भर अनाज नहीं मिलता था, तब भी उन्हें ज्यादा चिंता नहीं थी। उनकी चिंता का केंद्र था, उनके बच्चे, वे बच्चे जिनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी।

1851 में मॉरीशस में 5000 गोरे और क्रिओल वंशज बच्चे थे, जिनके लिए स्कूल की व्यवस्था थी; परंतु 18000 भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की संतानों के लिए शिक्षा का कोई प्रबंध न था। इस स्थिति पर जाँचकर, तत्कालीन गवर्नर हिगिन्सन ने 6 से 12 वर्ष के सभी बच्चों के लिए विधेयक संख्या 21 के तहत अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की। 1867 तक देश भर में 30 विद्यालय कार्य करने लगे, परंतु उनमें भारतीय वंशज एक भी नहीं था। पहला कारण यह था कि

• धनराज शंभु का जन्म 14 नवंबर, 1956 को मॉरीशस के कांतोरेल ग्राम में हुआ।

• **शिक्षा :** 1977 में प्रशिक्षण महाविद्यालय से प्रशिक्षण प्राप्त कर हिंदी अध्यापक बने और अब तक हिंदी अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

• 1976 में 'तरंगिनी' कविताएँ, 1996 में एहसास कविताओं और गजलों का संग्रह, पत्र-पत्रिकाओं, अखबारों आदि में प्रकाशित होती रही हैं जिनमें बसंत, आक्रोश, पंकज, रिमझिम, प्रभात आदि प्रमुख हैं।

• **संप्रति :** आप देश की अनेक हिंदी संस्थाओं के साथ सक्रिय रुपए प से जुड़े हैं और हिंदी प्रचारिणी सभा के सचिव हैं।

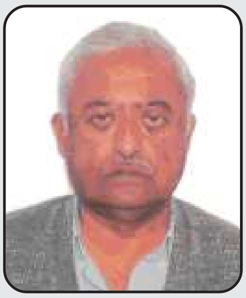

• अजामिल माताबदल का जन्म १९४५ में मॉरीशस स्थित मॉसेल्माँ ग्राम में हुआ।

• हिंदी में उत्तमा तक पढ़ाई करने के पश्चात् पंजाब विश्वविद्यालय से बी.ए. तथा उच्च शिक्षा ग्रहण की।

• पत्रिकारिता में डिप्लोमा के साथ ही इन्होंने अन्य नए अध्यापकों सहित प्रशिक्षण विद्यालय में प्रो. रामप्रकाश से हिंदी प्रशिक्षण हासिल किया है।

- २० वर्षों से भी अधिक हिंदी प्रचारिणी सभा के प्रधान रह चुके अजामिलजी हिंदी संगठन से भी जुड़े हैं तथा मॉरीशस में हिंदी अध्यापन के क्षेत्र में उनका अमूल्य योगदान है।
- वे विश्व हिंदी सचिवालय की शासी परिषद के माननीय सदस्य हैं।
- हिंदी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'पंकज' तथा हिंदी संगठन से प्रकाशित 'सुमन' पत्रिकाओं के संपादक भी हैं।
- इनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं तथा इन्होंने कई पुस्तकों का भी संपादन किया है।

शिक्षण का माध्यम फ्रेंच भाषा थी। दूसरा कारण था, गोरे तथा क्रियोल बच्चों के साथ ही भारतीय बच्चों का शिक्षण। उद्देश्य यह था कि भारतीय मूल के बच्चे धीरे-धीरे अपनी भाषा, संस्कृति तथा धर्म भुला दें और क्रिश्चन बन जाएँ। इसी खतरे के कारण भारतीय मजदूरों ने अपने बच्चों को उन स्कूलों से दूर रखा।

1877 में सर ऑर्थर फेयर का ध्यान इस ओर गया। उन्होंने क्रिश्चन पादरियों की परवाह न करते हुए भारतीय मूल के बच्चों के लिए 5 देशी-भाषा स्कूलों की व्यवस्था करवाई। कैथी लिपि में खड़ी बोली, तमिल, हिंदुस्तानी अर्थात् उर्दू के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। इन देशी स्कूलों के छात्रों ने 'फ्रेंच मीडियम' स्कूलों से अधिक प्रगति दिखाई। इस बात से अप्रसन्न होकर तथा फ्रांसीसी पादरियों के दबाव में आकर नए गवर्नर जे.कंबर ब्राउन के सिर्फ 3 वर्ष बाद अर्थात् 1880 में, पाँचों देशी-भाषा स्कूलों को बंद करवा दिया। भारतीय मजदूरों के पास कोई उपाय न था। वे अपने बच्चों के साथ पेड़ के नीचे, झोंपड़ियों में हनुमान-चालीसा तथा रामचरितमानस का पाठ कराते रहे।

1901 में महात्मा गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते हुए मॉरीशस में रुके। उनकी सलाह पर भारतीय मजदूरों ने अपनी संतानों के लिए तथा भाषा, संस्कृति और धर्म की सुरक्षा के लिए सायंकालीन पाठशालाओं की व्यवस्था आरंभ की और उनको 'बैठक' नाम दिया।

1910 में आर्य सभा (मॉरीशस) की स्थापना हुई, जिसने आर्य समाज के सिद्धांतों के प्रचार के लिए हिंदी भाषा को अपनाया। 12 जून, 1926 को 'तिलक विद्यालय' नाम से एक अन्य संस्था की स्थापना हुई। देश के कोने-कोने में फैले बैठकाओं को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के उद्देश्य से 'तिलक विद्यालय' को 1935 में एक राष्ट्रीय संस्था का रूप दिया गया और 'हिंदी प्रचारिणी सभा' नाम दिया गया। तब से 'हिंदी प्रचारिणी सभा' स्वैच्छिक संस्था के रूप में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने में लगी है।

1910 में आर्य सभा (मॉरीशस) की स्थापना हुई, जिसने आर्य समाज के सिद्धांतों के प्रचार के लिए हिंदी भाषा को अपनाया। 12 जून, 1926 को 'तिलक विद्यालय' नाम से एक अन्य संस्था की स्थापना हुई। देश के कोने-कोने में फैले बैठकाओं को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के उद्देश्य से 'तिलक विद्यालय' को 1935 में एक राष्ट्रीय संस्था का रूप दिया गया और 'हिंदी प्रचारिणी सभा' नाम दिया गया। तब से 'हिंदी प्रचारिणी सभा' स्वैच्छिक संस्था के रूप में हिंदी का प्रचार-प्रसार करने में लगी है।

उपनिवेशीय गवर्नरों व फ्रांसीसी पादरियों का भारतीय धर्म-संस्कृति और भाषा को देश से मिटाने का षड्यंत्र न होता तो शायद हिंदी प्रचारिणी सभा का आज अस्तित्व न होता।

स्थापना

हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना स्व. श्री रामलाल मंगर 'भगत' द्वारा 12 जून, 1926 में क्रेव-कियेर ग्राम में हुई थी। उस समय इसे 'हिंदी प्रचारिणी सभा' नाम न देकर 'तिलक विद्यालय सभा' रखा गया था। 26 दिसंबर, 1935 में इस की उद्घोषणा की गई और 'हिंदी प्रचारिणी सभा' नाम से अध्यादेश संख्या 22, वर्ष 1874 के तहत की गई। उक्त सभा की पंजीकरण संख्या बी. 104 संवत् 1890 में मॉरीशस के राज्यपाल सर विल फ्रिड एडवर्ड फ्रैंसिस जैकसन प्रदत् निगमन शासन पत्र के आधार पर किया गया था। उस समय के प्रथम कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे— पं. बोलोराम मुक्ताराम चटर्जी, श्री शिव शंकरसिंह धूरन (M.B.E), श्री रघुनन रामरतन, गिरिराज बखोरी, श्री रामलाल भगत, गरीबनवज सितोहल, श्री सूरुज प्रसाद मंगर भगत, जानकी प्रसाद लालमन, श्री महावीर फागु, बृजलाल धनपत, श्री रामगुण जिबसिया, गणेश रामफल, श्री अनिरुद्ध द्वारका, नंकेश्वर मनबटल, श्री शिव प्रसाद जीऊलाल तथा राम सुंदर चमन

इन सदस्यों में कुछ भारतीय और कुछ स्थानीय लोग थे। आज इन संस्थापकों में से केवल श्री बृजलाल धनपतजी सत्तानवे की उम्र में अच्छे स्वास्थ्य के साथ जीवित हैं। वे अब तक सभा की सभी गतिविधियों में अपनी उपस्थिति देते हैं।

सभा के उद्देश्य

1. सभा द्वारा स्थापित अन्य विद्यालयों में बालकों के शैक्षणिक एवं सामाजिक विकास के लिए शिक्षण की व्यवस्था करना। 2. सभा द्वारा संचालित विद्यालयों के छात्रों तथा सभा के सदस्यों के लिए पुस्तकालय की स्थापना करना। 3. सामाजिक, सांस्कृतिक शैक्षणिक, दार्शनिक, साहित्यिक तथा नैतिक विषयों पर गोष्ठियों व विचार-सत्रों का आयोजन करना। 4. हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार से संबद्ध व्यक्तियों व संस्थाओं को सम्मानित करना। 5. उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए न्यायपूर्ण ढंग से हर उचित कार्य करना ही सभा का उद्देश्य है।

हिंदी प्रचारिणी सभा की आय उसके 12 बीघे जमीन से होती है। सभा प्रतिवर्ष 5 लाख रुपए उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति में खर्च करती है। 'हिंदी प्रचारिणी सभा' एक स्वैच्छिक संस्था है, जिसे किसी भी प्रकार का अनुदान प्राप्त नहीं है। हालाँकि 2004 से इस संस्था का एक्ट विधानसभा द्वारा पारित हो चुका है, पर सरकार की ओर से अब तक किसी प्रकार का अनुदान नहीं मिलता, फिर प्रश्न यह उठता है कि यह संस्था कैसे पिचहत्तर सालों से अनवरत कार्यरत है। उत्तर यही है कि हमारे निस्स्वार्थ हिंदी प्रेमी हैं जिन्होंने अपनी जमीन दान में दी और आज गन्नों की आमदनी की बदौलत चल रही है।

1926 से आज तक इसके सभी सदस्य सभा को अपनी सेवा नि:शुल्क प्रदान करते आ रहे हैं। उस जमाने में निस्स्वार्थ सेवकों को पाना बड़ी कठिनाई का काम था, क्योंकि जहाँ एक ओर गोरे मालिकों का अत्याचार था, वहीं दूसरी ओर गरीबी कमर तोड़ रही थी। एक ओर जहाँ हिंदी भाषा के प्रति नफरत की भावना जगाई जा रही थी तो दूसरी ओर सिर उठानेवालों को दंड भी झेलना पड़ता था। इन सबके बावजूद, कुछ निष्काम भाववाले कर्मठ सेवक सामने आए—बोलोराम नुक्ताराम चटर्जी, श्री जयनारायण रॉय, पं. सूरुज प्रसाद मंगर, श्री अनिरुद्ध द्वारका, श्री नेम नरायण गुप्त, श्री सूरुज प्रसाद शंभु, श्री निवास जगदत्त, श्री लक्ष्मी प्रसाद मंगरू, श्री भोलानाथ शम्भु, श्री मुनींद्रनाथ वर्मा, पं. रविशंकर कौलेसर, श्री नरेश रागेन।

प्रथम विद्यालय की स्थापना

उपनिवेशकालीन वातावरण में, जहाँ पर हिंदी पढ़ने की मनाही थी, जहाँ छिप-छिपकर पढ़ना पड़ता था; ऐसी स्थिति में, 1926 में हिंदी प्रचारिणी सभा का प्रथम विद्यालय पहाड़ों के बीच स्वच्छ वातावरण और प्रकृति की सुमधुर गोद में 'सरस्वती कन्या पाठशाला' क्रेवकेर गाँव में खोला गया। इस पाठशाला में पूरे सप्ताह तक पूरे दिन में हिंदी का शिक्षण होता रहा। मार्के की बात यह थी कि जहाँ कन्याओं को पढ़ाने की अनुमति नहीं थीं, वहाँ ज्यादा से ज्यादा कन्याओं को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इस तरह हिंदी पठन की एक मजबूत नींव डाल दी गई।

हिंदी प्रचारिणी सभा से संबद्ध विद्यालय

आज 2011 में सभा की उपशाखाओं के माध्यम से चलनेवाली बैठकों की संख्या 152 है, जहाँ पर पहली कक्षा से छठी तक शिक्षण होता है। इसमें 12,000 छात्र हिंदी भाषा पढ़कर सभा द्वारा आयोजित परीक्षा में भाग लेकर प्रमाण-पत्र पाते हैं।

माध्यमिक पाठशालाओं की संख्या 75 है, जहाँ पर सप्ताह के दिनों में शनिवार या रविवार को पढ़ाई चलती है। इनमें प्रवेशिका से उत्तमा साहित्य रत्न तक का शिक्षण होता है। प्रवेशिका और परिचय की परीक्षाएँ सभा द्वारा आयोजित होती है और प्रथमा से उत्तमा साहित्यरत्न की परीक्षाएँ भारत के हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद द्वारा की जाती है। इन परीक्षाओं का आयोजन, प्रमाण-पत्र वितरण तथा छात्रों को पुरस्कृत करने की जिम्मेदारी हिंदी प्रचारिणी सभा ही लेती है।

परीक्षाएँ

सभा-एक्ट पारित होने के पश्चात् सभा का अधिकार है कि वह परीक्षाओं का आयोजन राष्ट्रीय स्तर पर करे। सरकार द्वारा हिंदी ओहदों के लिए मान्यता भी प्राप्त है। सभा द्वारा कई स्तरों पर परीक्षाओं का आयोजन होता है। सभा प्रतिवर्ष दूसरी से छठी (प्राथमिक कक्षाओं) की परीक्षाओं का आयोजन तथा जुलाई-अगस्त में 'प्रवेशिका परीक्षा' का आयोजन करती है। दिसंबर में भारत के हिंदी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं की व्यवस्था करती है। जिसमें परिचय सम्मेलन 1946 से हो रहा है। प्रथमा 1956 से, मध्यमा 1963 से, उत्तमा साहित्य रत्न 1965 से। सम्मेलन की परिचय, प्रथमा, मध्यमा एवं साहित्य रत्न में उत्तीर्ण छात्रों की संख्या 70 हजार से अधिक है। सभा द्वारा आयोजित

इन परीक्षाओं से प्राप्तपत्रों की सरकार के समय मान्यता प्राप्त है। इन्हीं प्रमाण पत्रों के आधार पर देश के अधिकांश हिंदी शिक्षक नियुक्त हुए हैं।

साहित्य सृजन

भारत से बाहर हिंदी साहित्य का सबसे समृद्ध रूप मॉरीशस में ही देखने को मिलता है। अंग्रेज़ी, औपचारिक भाषा और फ्रेंच सबसे अधिक प्रचलित होने के बावजूद, मॉरीशस में हिंदी सबसे अधिक प्रचलित है। मॉरीशसीय हिंदी साहित्यकार विश्व-ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

ऐसी बात है कि मॉरीशस में हिंदी की राह में रुकावट व रोड़े नहीं हैं। यदि हिंदी वहाँ फल-फूल रही है तो उसके पीछे निश्चय ही हिंदी की स्वेच्छा और निस्स्वार्थ रूप से प्रचार-प्रसार कार्य कर रही संस्थाओं का हाथ हैं।

वार्षिक लेखन प्रतियोगिताएँ

सभा द्वारा कई प्रकार और स्तर की प्रतियोगिताओं का आयोजन समय-समय होता रहता है। उनमें मुख्य रूप से निम्न विधाएँ हैं और उनके पुरस्कार जिन दाताओं के नाम से दिए जाते है वे निम्न प्रकार से हैं—कविता लेखन प्रतियोगिता के लिए 'श्री सोमदत्त बखोरी पुरस्कार', कहानी लेखन प्रतियोगिता के लिए 'श्री मंदोदरी रामलाल भगत पुरस्कार', एकांकी लेखन प्रतियोगिता के लिए 'श्री जयनारायण राय पुरस्कार, निबंध-लेखन प्रतियोगिता के लिए 'पं. उमाशंकर गिरजानत पुरस्कार', बालकथा लेखन के लिए 'श्री सूरुज प्रसाद मंगर भगत पुरस्कार', लोककथा लेखन पुरस्कार के लिए 'श्री अनिरुद्ध द्वारका पुरस्कार' दिए जाते हैं।

अन्य मौखिक प्रतियोगिताओं का आयोजन राष्ट्रीय स्तर पर होता है और आकर्षक पुरस्कारों से छात्रों को प्रेरणा प्रदान की जाती है। जैसे—प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता, वाद-विवाद, वाचन एवं कविता पठन प्रतियोगिताएँ।

वार्षिक आयोजन

हिंदी प्रचारिणी सभा की ओर से कुछ सामान्य गतिविधियाँ हर साल की जाती हैं। उनमें स्थापना दिवस (12 जून को), हिंदी दिवस (गोस्वामी तुलसीदास जयंती के उपलक्ष्य पर, समावर्तन समारोह 'दिसंबर महीने में', सामयिक रूप में कवि सम्मेलन तथा साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन होता है। साल के प्रथम और द्वितीय अवधि में छात्रों एवं अध्यापकों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है।

ऐतिहासिक आयोजन

सभा द्वारा कुछ ऐतिहासिक आयोजन खास मौके पर हुए हैं, जिनका उल्लेख नई पीढ़ी के लिए लाभदायक सिद्ध होगा। प्रो. बासदेव विष्णु दयालजी के सहयोग से मॉरीशस में 1941 में प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन हुआ था। प्रथम बार हिंदी परीक्षा का आयोजन 1946 में हुआ था। 'बिरहा' गायन प्रतियोगिता 1959 में आयोजित हुई थी। सभा की रजत जयंती 1960 में मनाई गई थी। हिंदी सप्ताह तथा हिंदी दिवस का आयोजन 1963 में हुआ था। मुंशी प्रेमचंद सप्ताह 1980 में आयोजन हुआ। देश भर में 82 पुस्तकालयों की स्थापना की गई थी, जिन में सस्ता साहित्य मंडल-नई दिल्ली का सहयोग प्राप्त हुआ था। स्वर्ण जयंती 1985 में आयोजित की गई थी 1993 में शिक्षण लघु प्रशिक्षण सत्र। हीरक महोत्सव तथा अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन 1995 में। प्रो. रामप्रकाश सरकारी पाठशाला का नामकरण एवं महा रजत जयंती (platinum belike) 2000 में।

हिंदी प्रचारिणी सभा की उपशाखाएँ

सभा की कुछ मुख्य उपशाखाएँ हैं, जिनमें हिंदी भाषा और संस्कृति की रक्षा के लिए हिंदी-शिक्षण किया जाता है, साथ में कार्यक्रमों एवं उत्सवों का आयोजन होता रहता है। वे रिवियेर दे जाँगी, वाक्वा, क्रेवकेर (कन्या विद्यालय), लालूसी रॉय (बेल एअर) तथा प्लेन दे पापाय (शारदा पाठशाला) में स्थित है।

प्रकाशन

सभा ने हिंदी भाषा के प्रचार के लिए बहुत पहले से प्रयत्न किया है, जब यहाँ पर प्रकाशन की सुविधा भी नहीं थी। 1935 में हस्तलिखित ऐतिहासिक पत्रिका 'दुर्गा' से प्रारंभ किया था। उसके

बाद समय-समय पर कई रचनाओं का प्रकाशन, संपादन एवं वितरण किया। उनके साथ निम्न 'दुर्गा' (हस्तलिखित पत्रिका) 1935 में संपादित की गई।

1. जीवन संगिनी (देश का प्रथम नाटक) — जयनरायण रॉय
2. काव्य विथिका — एस.एम. भगत
3. काव्य संकलन — डॉ. ब्रजेंद्र 'मधुकर' भगत
4. सुधा कलश — जयरुद्र दोसिया
5. प्रभात — हरिनरायण सीता
6. मॉरीशस का इतिहास — मुनींद्रनाथ वर्मा
7. सरल हिंदी शिक्षा — पं. रविशंकर कौलेसर
8. स्मारिका — एस. एम. भगत (श्रद्धांजली स्मारिका)
9. सुस्मिता — कहानी संग्रह (संपादक-अजामिल माताबदल)
10. रसधारा — कविता संग्रह (संपादक-अजामिल माताबदल)
11. काव्य परिचय — कविता संग्रह (संपादक-अजामिल माताबदल)
12. दुर्गा — कहानी संग्रह (संपादक-अजामिल माताबदल)
13. सुगम हिंदी — चार भाग (पाठ्य पुस्तक)
14. बस चली गई — (बाल कहानियाँ) लेखक यंतुदेव बुधू
15. मुली लौट आई — (बाल कहानियाँ) लक्ष्मी प्रसाद मंगरु
16. पंकज — (त्रैमासिक पत्रिका) संपादक अजामिल माताबदल
17. मॉरीशस में हिंदी भाषा का इतिहास — जयनारायी रॉय
18. हिंदी भाषा का प्रचार एवं प्रसार — अनुवाद-(अजामिल माताबदल)

कार्यकारिणी समिति

सभा को चलाने के लिए समय-समय पर विभिन्न विस्वार्य कार्यकारिणी के सदस्य आए। सभी ने अपने कार्यों का लोहा मनवाया। अभी वर्तमान कार्यकारिणी के सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं—

सभा की कार्यकारिणी कमिटी के अतिरिक्त विभिन्न उप-समितियाँ गठित हैं, जो पाठ्यक्रम-पाठ्यपुस्तक निर्माण, परीक्षाओं, प्रतियोगिताओं का आयोजन एवं प्रकाशन की व्यवस्था करती है।

आज भी हिंदी प्रचारिणी सभा इन सदस्यों पर विश्वास रखती है और भविष्य में भी सभा सभी के सहयोग से प्रगति करती रहेगी। भविष्य की योजनाओं में कई कार्यों पर ध्यान दिया जा रहा है, जैसे छठी कक्षा तक पाठ्य पुस्तक की तैयारी, प्रवेशिका एवं परिचय कक्षाओं में स्थानीय रचनाकारों की रचनाओं का प्रयोग एवं तैयारी, कार्यशालाओं का आयोजन, पुस्तकालय को एक अनुसंधान केंद्र बनाना आदि।

भविष्य

अपने आरंभिक काल में हिंदी प्रचारिणी सभा ने कन्या पाठशाला की स्थापना की थी। कन्याओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। आज भी संयोग से हिंदी अध्ययन करनेवाली कन्याओं की संख्या ही अधिक है।

भविष्य के लिए यह शुभ है। कहा जाता है कि एक लड़के को शिक्षित बनाएँ तो एक व्यक्ति ही शिक्षित होता है, परंतु एक लड़की की शिक्षा से एक परिवार तथा उनकी भावी संतान की शिक्षा की भी व्यवस्था हो जाती है।

मॉरीशस में हिंदी के प्रचार-प्रसार की व्यवस्था में हिंदी प्रचारिणी सभा के अतिरिक्त विभिन्न अन्य संस्थाओं का सहयोग प्राप्त हो रहा है। युवा इन संस्थाओं की गतिविधियों में भाग लेकर हिंदी के प्रति अपनी रुचि दिखा रहे हैं।

हिंदी में रोजी-रोटी प्राप्त होने की कम संभावनाओं के बावजूद हिंदी तथा भारतीय दर्शन के छात्रों की संख्या दिनोदिन बढ़ती दिखाई दे रही है। मॉरीशस में हिंदी की पढ़ाई में हिंदी प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

श्री अजामिल माताबदल,
प्रधान, हिंदी प्रचारिणी सभा,
उप-प्रधान, हिंदी संगठन,
और
श्री धनराज शंभु मंत्री, हिंदी प्रचारिणी सभा

☐

8

हिंदी और काशी की नागरी प्रचारिणी सभा

✍ **राकेश कुमार दूबे**

- डॉ. राकेश कुमार दुबे का जन्म 15 अक्तूबर, 1982 को नेहिया, वाराणसी में हुआ।
- उन्होंने वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय एवं काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से बी.ए., एम.ए. तथा पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है।
- डॉ. राकेश दुबे ने कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों में सक्रिय सहभागिता देते हुए शोध पत्र भी प्रस्तुत किए हैं।
- उनके शोध-पत्र तथा लेख भारत एवं भारत से बाहर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

काशी और हिंदी का अविच्छेद्य संबंध है। हिंदी को उत्पन्न करने, पालने और पुष्ट करने का श्रेय काशी को है। गुरुगोरखनाथ, महात्मा रामानंद और उलटी-सीधी कहनेवाले कबीर से लेकर भारतेंदु तक तो हिंदी काशी की ही बनी रही। उसके बाद भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदर दास, जगन्नाथदास रत्नाकर, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, रायकृष्णदास और रामदास गौड़ अपनी एकांत साधना से उसके पुष्ट करने का कार्य करते रहे। लाला भगवानदास की सेवाएँ भी नहीं भूली जा सकतीं। समाचार-पत्रों द्वारा काशी ने हिंदी की जो सेवा की है , यह उसे राष्ट्रभाषा बनाने में कम सहायक नहीं हुआ। विद्याराष्ट्ररत्न शिवप्रसादजी, बाबूराव विष्णु पराड़कर ने हिंदी को जिस प्रकार गौरवान्वित किया है, यह इतिहास की महत्त्वपूर्ण सामग्री है। इसी काशी में नागरी के उत्थानार्थ नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई जिसने हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार एवं विस्तार में महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका निभाई।

नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना 16 जुलाई ,1893 ई. को काशी में छोटे-छोटे बालकों द्वारा की गई, जिसके मूल में नागरी (हिंदी भाषा और नागरी लिपि) का प्रचार प्रमुख था। इसके स्थापनकर्ता त्रय पं. रामनारायण मिश्र, बाबू श्यामसुंदर दास और बाबू शिवकुमार सिंह थे। भारतेंदु हरिशचंद्रजी ने हिंदी के लिए जो उद्योग आरंभ किया था उनके देहावसानोपरांत उन समस्त कार्यों का उद्‌घाटन ही नागरीप्रचारिणी सभा का इतिहास है, जैसा कि विश्वनाथ प्रसाद मिश्रजी ने लिखा है कि भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र और उनके सहयोगियों ने जो प्रस्तावना की थी उसी का उद्‌घाटन नागरी प्रचारिणी सभा के पचास वर्षों का इतिहास है। 'इस चार युगों से अधिक समय में सभा ने नागरी लिपि के प्रचार के साथ ही हिंदी के संस्कार और साहित्य के संवर्द्धन में जैसा योग दिया उससे स्पष्ट है कि हिंदी की वर्तमान समृद्धि का वास्तविक हेतु सभा ही है। इसने सहित्य क्षेत्र में जिस बीज का वपन किया, उस उसको अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित करने में अन्य संस्थाओं का सहयोग उसे मिला। 16 जुलाई,1893 ई. को ही सभा के जो उद्देश्य निर्धारित किए गए वे इस प्रकार हैं—

(क) इस सभा के सभासदों का मुख्य कर्तव्य यह है कि नागरी भाषा से अपनी उन्नति करें। नागरी जाननेवाले इष्ट मित्रों से नागरी अक्षर और भाषा में पत्र व्यवहार करें। लोगों की रुचि इस ओर आकर्षित करें।

(ख) नागरी लेख लिखने का अभ्यास करें और उन्हें सामयिक पत्रों में प्रकाश करवावें।

(ग) इसके सभासद अन्य स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभाओं से पत्र व्यवहार द्वारा एकता और मित्रता करें।

(घ) यथासाध्य दूसरे स्थानों में ऐसी सभा स्थापन करने का प्रयत्न करें।

(ड) दूसरी भाषा के उत्तम एवं उपयोगी ग्रंथों को हिंदी में अनुवाद करें।

(च) परस्पर में मित्रता और ऐक्य बढ़ाएँ।

जिस समय सभा की स्थापना हुई उस समय हिंदी की बिल्कुल भी पूछ नहीं थी। इस समय हिंदी में न तो कोई अच्छा व्याकरण, न कोई शब्दकोश और न ही हिंदी साहित्य का इतिहास ही था। हिंदी की लेख-प्रणाली और लिपि-प्रणाली भी अत्यंत दोषपूर्ण थी। हिंदी में वैज्ञानिक ग्रंथों एवं शब्दकोशों की बात सोचना कल्पना से परे था। हिंदी की क्या अवस्था थी ? यह बात बाबू श्यामसुंदर दास के कथन से ही स्पष्ट हो जाता है कि 'इस समय हिंदी की बड़ी बुरी अवस्था थी। वह जीवित थी यहीं बड़ी बात थी। राजा शिवप्रसाद के उद्योग तथा भारतेंदुजी के उसके लिए अपना सर्वस्व आहुति दे देने के कारण उसको जीवनदान मिला था। हिंदी का नाम लेना भी इस समय पाप समझा जाता था। कचहरियों में इसकी बिलकुल पूछ नहीं। हिंदी बोलनेवाला तो गँवार कहा जाता था। वह बड़ी हेय दृष्टि से देखा जाता था।'

अतएव इस अपमान की अवस्था में बालकों के खिलवाड़ की तरह सभा की स्थापना हुई। सभा के स्थापनोपरांत ही इस बात का उद्योग होने लगा कि भारतेंदुजी के अनुयायी तथा अन्य सभी हिंदी-हितैषी विद्वान सभा में सम्मिलित किए जाए। फलस्वरूप सभा को अपनी शैशवावस्था में ही सर्वश्री राधाकृष्णदास, म.म. सुधाकर द्विवेदी, पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र, डॉ. छन्नूलाल और रायबहादुर प्रमदादास मित्र जैसे लोग सभा को पथ-प्रदर्षक के रूप में प्राप्त हो गए। धीरे-धीरे सभा अपनी ओर भारत भर के हिंदी-प्रेमियों का ध्यान खींचने लगी। सर्वश्री मदनमोहन मालवीय, कालाकॉकर-नरेश राजा रामपाल सिंह, राजाशशिशेखर राय, कांकरौली-नरेश महाराज बालकृष्णलाल, अंम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक, ज्वालादत्त शर्मा (लाहौर), नंदकिशोरदेव शर्मा (अमृतसर), कुवर जोधसिंह मेंहता (उदयपुर), समर्थदान (अजमेर), डॉ. ग्रियर्सन आदि जैसे अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों ने पहले ही वर्ष सभा की संरक्षकता और सदस्यता स्वीकार कर ली।

प्रथम वर्ष में ही सभा ने जिन कार्यों को अपने हाथ में लेने का विचार किया उनमें हिंदी की प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज कराना, हिंदी के एक बड़े कोश का निर्माण, हिंदी हस्त-लिपि की परीक्षा आरंभ करना, हिंदी भाषा के इतिहास का निर्माण, हिंदी उपन्यासों का निर्माण, भारतवर्ष का इतिहास तैयार कराना, यात्राओं के वर्णन तैयार कराना, हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास लिखाना, विज्ञान-मस्तिष्क विषयों के ग्रंथ लिखाना एवं हिंदी के प्राचीन पद्य-ग्रंथों को प्रकाशित कराना इत्यादि बातें शामिल थीं।

अपनी स्थापना के उपरांत ना.प्र. सभा ने एक समान भाषा एवं लिपि के माध्यम से देश को एक सूत्र में बाँधना आरंभ किया। समान भाषा व लिपि के माध्यम से प्रथम वर्ष में ही देश के 72 महानुभावों को जोड़ा। अपने उददेश्यपूर्ति के लिए स्थापना के दूसरे वर्ष ही सभा ने कायस्थ कांफ्रेंस, लखनऊ तथा इलाहबाद में अपने डेपुटेशन भेंजे। समस्त राष्ट्र को समान भाषा के माध्यम से जोड़ने के उद्देश्य से ही नागरीप्रचारिणी पत्रिका में राष्ट्रभाषा शीर्षक लेख में लिखा कि जिन लोगों का एक राष्ट्र होता है उनके सुख-दुख समान होने के लिए उनके विचार कलापों का एक होना अत्यंत आवश्यक है। पत्रिका ने लिखा क्या ही अच्छा हो, यदि 28 कोटि प्रजा की एक भाषा हो जाए और काशी से रामेश्वरम् और पंजाब से आसाम पर्यंत प्रत्येक मनुष्य को विचार करने का एक साधन उपलब्ध हो जाए तो यह समझ लेना चाहिए कि भारत की आधी विपत्ति दूर हो गई।

हिंदी भाषा और नागरी लिपि को सर्वप्रिय बनाने और उसकी ओर जनता को अधिक-से-अधिक आकृष्ट करने हेतु सभा ने 1894 ई. से प्रतिवर्ष 10, 8, और 5, रु. के तीन पारितोषिक नगरी अक्षर लिखनेवाले बालकों में से सर्वोत्कृष्ट प्रथम तीन बालकों को देने का निर्णय किया। इसके प्रबंध के लिए प्रांतिक शिक्षा-विभाग में प्रार्थना की गई और पत्र-व्यवहार हुआ। शिक्षा-विभाग ने सभा की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। सभा ने वर्नाक्यूलर स्कूलों में ही वरन् सब प्रकार के स्कूल-कॉलेजों में यह परीक्षा आयोजित करने का प्रयास किया। संवत् 1976 से यह परीक्षा शिक्षा-विभाग की आज्ञा से सब प्रकार के स्कूलों एवं कॉलेजों में आयोजित होने लगी। सं.1993 तक कुल 43 वर्षों में सभा ने इस कार्य पर 1871 रुपए का पुरस्कार देकर देशवासियों को जागृत करने का महान कार्य किया।

अपनी स्थापना के दूसरे वर्ष सभा ने सरकारी दफ्तरों और कचहरियों में नागरी के प्रवेश के लिए आंदोलन आरंभ किया और प्रांतीय बोर्ड ऑफ रेवेन्यू का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि सन् 1875 और 1881 के क्रमश: 19 वें और 12 वें विधानों के अनुसार 'समन' आदि हिंदी और उर्दू दोनों में भरे जाने चाहिए परंतु इस नियम का पालन नहीं होता। सभा के आंदोलन का फल यह हुआ कि 20 अगस्त 1896

के पत्र में प्रांतीय सरकार ने सभा को बताया कि सब जिले के हाकिमों को सूचना दे दी गई है कि 'समन' आदि सब कागज हिंदी में भी जारी किए जाए'। इस प्रकार सभा माल विभाग में नागरी को प्रवेश दिलाने में सफल हो गई।

अपने शुरुआती कार्यों से उत्साहित हो सभा ने नागरी को शिक्षा के माध्यम तथा संयुक्त प्रांत के राजकीय कार्यालयों में स्थान दिलाने के लिए 2 मार्च 1898 ई. को गवर्नमेंट हाउस, इलाहबाद में लेफिटनेंट गवर्नर सर एंटनी मैकडानेल को पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधवासी प्रजा की ओर से साठ हजार हस्ताक्षरों की सोलह जिल्दों तथा मालवीयजी की पुस्तक 'कोर्ट कैरेक्टर एंड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ वेस्ट प्राविंसेस एंड अवध' की एक प्रति के साथ निवेदन पत्र (मेमोरियल) अर्पण किया गया जिसमें मुख्य रूप से यह बात कही गई कि अदालतों में नागरी-अक्षरों का प्रचार न होने से प्रजा, विशेषकर ग्रामीण प्रजा को, बड़ी असुविधा और कष्ट होता है तथा आरंभिक शिक्षा के प्रचार में बाधा उपस्थित होती है। इस विषय पर दो वर्ष तक व्यापक आंदोलन होता रहा। इस विषय में सभा को आंशिक सफलता तब मिली जब व्यापक और पूर्ण विचार करके और बोर्ड आफ रेवेन्यु, हाईकोर्ट तथा जुडिशियल कमिश्नर अवध से सम्मति लेकर प.प्र. और अवध के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने 18 अप्रैल, 1900 ई को अपने आज्ञापत्र नं.585/3-343सी -68,1900 द्वारा कचहरियों और दफ्तरों में नागरी के प्रयोग की अनुमति प्रदान कर दी। यह सभा की बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

अतएव इस अपमान की अवस्था में बालकों के खिलवाड़ की तरह सभा की स्थापना हुई। सभा के स्थापनोपरांत ही इस बात का उद्योग होने लगा कि भारतेंदुजी के अनुयायी तथा अन्य सभी हिंदी-हितैषी विद्वान सभा में सम्मिलित किए जाए। फलस्वरूप सभा को अपनी शैशवावस्था में ही सर्वश्री राधाकृष्णदास, म.म. सुधाकर द्विवेदी, पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र, डॉ. छन्नूलाल और रायबहादुर प्रमदादास मित्र जैसे लोग सभा को पथ-प्रदर्षक के रूप में प्राप्त हो गए। धीरे-धीरे सभा अपनी ओर भारत भर के हिंदी-प्रेमियों का ध्यान खींचने लगी।

सभा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य हिंदी को विश्वस्तर पर प्रचारित करना था जिसके लिए प्रथम प्रयास भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा किया गया था। जब 5 सितंबर, 1896 ई. से 'इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरिएंटलिस्ट' का 11वाँ अधिवेशन पेरिस में हुआ, जिसमें संसार भर के पुरात्त्व तथा भाषात्त्व वेत्ता शामिल थे, में सभा ने विद्वानों का ध्यान हिंदी की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से एक पत्र और उसके साथ ही अंग्रेज़ी में एक लेख, जिसमें संक्षेप में हिंदी का इतिहास, हिंदी की उत्तमता, हिंदी में अत्यंत उपयोगी ग्रंथों का वर्तमान होते हुए भी अंधकार में पड़े रहना तथा एशियाटिक सोसाइटी के थोड़े से प्रयास से जिन उत्तम ग्रंथों का पता चला उनका वर्णन इत्यादि लिख भेजा। इस बात से अत्यधिक उत्साहित हो इसके थोड़े दिन बाद ही प्रो. सिल्वान लेवी, जो प्राच्य विभाग के अध्यक्ष थे, 1897 ई. में ही सभा में आए और उसके कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

1896 ई. से सभा ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। सर्वसाधारण जनों की रुचि परिभाषित करने और उत्तमोत्तम विषयों में प्रवृत्ति उत्पन्न करवाने के लिए ही सभा ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन किया। पत्रिका का प्रकाशन क्यों आरंभ किया गया यह सभा के वार्षिक विवरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि सभा की निर्णीत बातों को जनसाधारण तक पहुँचाना तथा हिंदी के सुयोग्य लेखकों के लेखों को सुरसिक पाठकों तक पहुँचाना और हिंदी में भाषातत्त्व, भूतत्त्व, विज्ञान, इतिहास आदि विद्या विषयक लेखों के अभाव की पूर्ति हेतु नागरीप्रचारिणी पत्रिका का त्रैमासिक प्रकाशन आरंभ किया गया। नागरी प्रचारिणी पत्रिका ने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर तो लेख प्रकाशित किया ही साथ ही साहित्येतर विषयों पर भी गंभीरतापूर्ण शोधपत्र प्रकाशित किया। वास्तव में भारत में प्राच्य विषयों पर भारतीय भाषाओं में गहन अनुसंधान के आधार पर शोध का आरंभ 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका से शुरू होता है और आज भी यह पत्रिका शोध के क्षेत्र में

महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

सभा में हिंदी की लेख प्रणाली और लिपि प्रणाली के सुधार के लिए 4 जुलाई, 1894 ई. को ही पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का प्रस्ताव पेश हुआ। 1898 ई. में सभा ने भाषा के विद्वानों का मत संग्रह करके एक निश्चित मत स्थिर करने के लिए सभा से आठ प्रश्न भाषातत्त्व वेत्ताओं से किए गए और इन पर सम्मति संग्रह करने और विचार करने के लिए ग्यारह चुने हुए विद्वानों की एक उपसमिति गठित कर दी और प्रश्न प्रसिद्ध भारतीय और यूरोपीय विद्वानों (कुल 59) के पास भेजे गए। सभा ने इस पर दो सन् तक कठिन मेहनत किया और मत संग्रह किया इसके उपरांत सर्वसम्मति से 8 जनवरी, 1900ई. को भाषा संबंधी सब-कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। यह जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसमें लेख एवं लिपि प्रणाली कैसी होनी चाहिए, विभक्ति, प्रत्यय,चंद्रबिंदु इत्यादि का प्रयोग कैसे होना चाहिए के साथ-ही-साथ साधारण साहित्य एवं उच्चकोटि के साहित्य की भाषा कैसी होनी चाहिए, इन बातों का विस्तृत वर्णन है। इस रिपोर्ट में कुल 24 पृष्ठ हैं। उत्तरदाताओं की सूची में जहाँ भारतभर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान देखे जा सकते हैं वहीं विदेशी विद्वानों में जी.ए.ग्रियर्सन, मि.ई.ग्रीब्ज, मि.जे.जी. ड्यान और डॉ. डब्ल्यू हूपर सदृश लोग देखे जा सकते हैं। इस रिपोर्ट की सर्वत्र प्रशंसा हुई और समस्त प्रांतों की शिक्षा-विभाग ने इसे हिंदी की लेख तथा लिपि प्रणाली के मानक के रूप में स्वीकार कर लिया।

जनवरी 1900ई. में इंडियन प्रेस, प्रयाग से 'सरस्वती' नाम की सचित्र हिंदी मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ और इसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय नागरी प्रचारिणी सभा को ही है। भाषा एवं लिपि का परिष्कार एवं संवर्द्धन के साथ ही देशभाषा द्वारा देशवासियों को जागृत करने एवं उन्हें राष्ट्र निर्माण हेतु प्रेरित करना इस पत्रिका के मूल में था। वास्तव में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का आरंभ हुआ और इस पत्रिका ने भाषा और साहित्य के साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में निर्णायक भूमिका निभाई।

सन् 1900 ई. से सभा ने हिंदी की प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य आरंभ किया जिसके हिंदी भाषा तथा साहित्य के उत्थान से घना संबंध था। सभा के सभासदों का यह पूर्ण विश्वास था कि जब तक हिंदी के प्राचीन ग्रंथों की खोज का काम नहीं होगा तब तक भारत, विशेषकर उत्तर भारत की बहुत सी साहित्यिक तथा ऐतिहासिक बातें अंधकार में विलीन रहेगी। सभा ने भारत सरकार, एशियाटिक सोसाइटी, पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकार और पंजाब सरकार से ऐसा करने के लिए पत्र-व्यवहार किया परंतु यह कार्य न हो सका तब 1900 ई. से अपने प्रधान स्तंभ बाबू श्यामसुंदर दास ने निरीक्षण में खोज विभाग की स्थापना की और यह कार्य प्रारंभ किया और पहले ही वर्ष में बनारस, रीवां, जयपुर, नागौद, लखनऊ, कालपी, आगरा और मथुरा में खोज का कार्य किया गया और 257 ग्रंथों के विवरण लिए गए जिनमें 169 ग्रंथों की रिपोर्ट की गई जो कि बारहवीं सदी से लेकर 19 वीं सदी तब की थे। सरकार ने 1900 ई. और 1901 ई. की रिपोर्ट प्रकाशित कर इसकी प्रतियाँ देश-विदेश के अनेक विद्वानों के पास भेजीं, जिनमें से डॉ. हार्नली, डॉ. ग्रियर्सन, श्री ग्रिफिथ, श्री बार्थ, डॉ. पिशेल आदि विद्वानों ने श्री श्यामसुंदर दास को व्यक्तिगत रूप से पत्र लिख कर इन रिपोर्टों की बहुत प्रशंसा की। सभा ने हिंदी की हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य जारी रखा और संयुक्त प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड)'राजपूताना, बुंदेलखंड, पंजाब, दिल्ली, कलकत्ता इत्यादि प्रदेशों में जहाँ स्वयं खोज का कार्य किया वहीं बिहार और उड़ीसा में 'बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी' के द्वारा यह कार्य संपन्न करवाया।

1943 ई. तक शताब्दी क्रम से ग्रंथकारों और ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है—

शताब्दी	11	13	14	15	16	17	18	19	20	अज्ञात	योग
ग्रंथकार	1	2	33	6	358	797	1230	1342	110	2216	6095
ग्रंथ	1	2	48	143	1080	1833	2651	2610	191	6187	14746

सभा ने खोज का जो अद्वितीय कार्य किया, जो कि हिंदी को और नागरी प्रचारिणी सभा को छोड़ यह सौभाग्य और किसी को प्राप्त नहीं हुआ, के फलस्वरूप प्रभूत ग्रंथ प्रकाश में आए जिनके विषय रासो, इतिहास और विरूदावलियाँ, सिद्धों का साहित्य (योगधारा), संत साहित्य (निर्गुण धारा), भक्ति साहित्य (सगुणधारा), सूफी प्रेमाख्याएँ, भारतीय प्रेम कथाएँ, साहित्य शास्त्र, पिंगल, कोश, काव्य, नाटक, आत्मकथा, यात्रा, लावनी और ख्याल तथा गद्य ग्रंथ थे। इस प्रकार सभा ने उद्योग कर प्राचीन अलभ्य, दुष्प्राप्य भाषा पुस्तकें जो

लुप्तप्राय हो मुमूर्षदशा को प्राप्त हो रही थी, अनुसंधान कर जनसाधारण के संमुख उपस्थित कर उन्हें अमरत्व पदवी प्रदान करने का उद्योग किया। खोज के कार्य द्वारा उपलब्ध सामग्री का उपयोग कर 1931 ई. में सभा के सभासद मिश्र बंधुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' नाम का विशाल ग्रंथ तीन खंडों में लिखा। जिसमें चार हजार से अधिक कवियों एवं लेखकों का तिथिवार वर्णन है। इसके उपरान्त 1920 ई. तक सभा ने खोज का जो कार्य किया था उसके आधार पर आचार्य रामचंद्रशुक्ल के द्वारा 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखा गया जो कि हिंदी साहित्य का सबसे प्रामाणिक इतिहास है।

सभा का हिंदी में शब्दकोश और व्याकरण के अभाव की पूर्ति का प्रयास भी सराहनीय रहा है। हिंदी में विज्ञान के परिभाषिक शब्दों के अभाव की पूर्ति के लिए सभा ने 1898 ई. में 'हिंदी वैज्ञानिक कोश' बनाने का उद्योग आरंभ किया और इस कार्य में संपूर्ण भारत के विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया। 1906 ई. में इस कोश के प्रकाशित होने पर देश भर के विद्वानों और सभा समाजों से सभा को बधाई पत्र प्राप्त हुए। यहाँ तक कि इंग्लैंड के वैज्ञानिक पत्रों में भी इस कृति की सुंदर समालोचना हुई। भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक कोश होने का सर्वप्रथम सौभाग्य ना.प्रा. सभा के उद्योग से हिंदी को ही प्राप्त है। 1912 ई. में हिंदी में एक सर्वांगपूर्ण व्याकरण बनाने का उद्योग सभा ने आरंभ किया और श्री कामता प्रसाद गुरु के अथक प्रयास से 1920 ई. में इस कमी को भी पूर्ण कर दिया। 9 सितंबर, 1907 ई. के रेवरेंड ई. ग्रीब्ज प्रस्ताव पर 1908 ई. से सभा ने 'हिंदी- शब्दसागर' नामक विशाल शब्दकोश बनाने का उद्योग आरंभ किया और इस कार्य में हिंदी के भारतीय एवं विदेशी सभी विद्वानों का सहयोग लिया। 22 वर्षों के निरंतर उद्योग एवं 108720 रुपए की लागत से 1929 ई में 93115 शब्द और 4281 पृष्ठों के शब्दकोश को सभा ने पूरा किया। सभा के इस महान् कार्य की देश और विदेश सर्वत्र प्रशंसा हुई। सभा द्वारा प्रकाशित शब्दकोश अत्यंत प्रामाणिक था और ब्रिटिश, अमेरिकी एवं रूसी शब्दकोशों की समकक्षता रखता था।

सभा ने देशवासियों में चेतना लाने, देश की अशिक्षा दूर करने, सर्वसाधारण में ज्ञान-विज्ञान का लोकभाषा हिंदी में प्रचार करने हेतु अक्टूबर, 1904 ई. में 'सुबोध व्याख्यामाला' आरंभ किया। यूरोपीय देशों की 'युनिवर्सिटी इक्सटेंशन लेक्चर्स' के आधार पर ही सभा ने व्याख्यानमाला आरंभ की और इसमें आशातीत सफलता प्राप्त की। भारतीय सभा-समाजों और विश्वविद्यालयों में ऐसा करने का प्रथम श्रेय सभा को ही प्राप्त है। आज भी ज्ञान-विज्ञान के प्रचार का एक सर्वोत्तम माध्यम है।

सभा ने 1894 ई. में ही समस्त पुस्तकें एक ही स्थान पर मिल जाए, इस उद्देश्य से 'नागरी भंडार' नामक पुस्तकालय स्थापित किया जिसका नाम बाबू गदाधर सिंह के प्रस्ताव पर 'आर्यभाषा पुस्तकालय' कर दिया गया। सभा ने इस पुस्तकालय को खूब समृद्ध किया फलस्वरूप 1943 ई. तक इसमें 31000 पुस्तकें हो गईं और यह संसार का हिंदी का सबसे बड़ा पुस्तकालय बन गया। आज इस पुस्तकालय में हिंदी की लाखों दुर्लभ पुस्तकें, हजारों हिंदी की प्राचीन पत्र-पत्रिकाएँ एवं छह हजार से अधिक हस्तलेख हैं जो कि संसार में अन्यत्र कहीं नहीं हैं।

29 दिसंबर, 1950 ई. को काशी ना.प्रा. सभा में बाबू रमेशचंद्र दत्त की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया जिसमें बाल गंगाधर तिलक, अंबालाल शकरलाल देसाई, सर भालचंद्र कृष्ण, प्रो. एन.बी. रानाडे, प्रो. क्षीरोध प्रसाद विद्याभूषण, मि. विजय राघवाचार्य सदृश लोग उपस्थित थे। इस सभा में भाषण करते हुए उपर्युक्त समस्त लोगों ने हिंदी भाषा एवं नागरी लिपि का समर्थन किया था और नागरी को ही राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रीय लिपि का दर्जा देने की वकालत की थी। हिंदी का प्रचार करने एवं उसे उसका वास्तविक पद प्रदान करने के उद्देश्य से 10 अक्टूबर, 1910 को ना.प्रा. सभा में मालवीयजी की अध्यक्षता में प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया। अदालतों में नागरी का प्रचार, पाठ्यपुस्तकों का हिंदी में प्रचलन, विश्वविद्यालयों में हिंदी का प्रवेश, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि का पद हिंदी को दिलाना, स्टांपों और सिक्कों पर नागरी को स्थान दिलाना, प्रांतीय कॉन्फ्रेंसों द्वारा नागरी का आदर तथा नृपतिगणों से नागरी प्रचार की प्रार्थना इत्यादि बातें सम्मेलन के उद्देश्यों में शामिल की गईं। 1916 में गांधीजी अपने 36 समर्थकों सहित ना.प्रा. सभा आए और 5 फरवरी, 1916 को सभा में भाषण करते हुए आजीवन हिंदी के व्यवहार की शपथ ली। गांधीजी के हिंदी पर अत्यधिक जोर देने के कारण ही उन्हें हि.सा.स. के इंदौर अधिवेशन का सभापति बनाया गया। उनके प्रयास से सुदूर दक्षिण में हिंदी का प्रचार करने के लिए 1918 ई. में मद्रास

में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार समिति स्थापित की गई। सम्मेलन ने हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में जो कार्य किया है वह तो सर्वविदित ही है जिसका श्रेय निश्चित रूप से काशी की सभा को दिया जाना चाहिए।

ना.प्रा. सभा ने हिंदी भाषा में विविध विषयों के ग्रंथों को लिखने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु विविध पुरस्कार एवं पदक प्रदान करने का आयोजन किया। अपने शुरुआती दौर में ही सभा ने कई सोने एवं चाँदी का पदक देने का आयोजन किया। इसके बाद भी जहाँ जोधसिंह पुरस्कार, रत्नाकर पुरस्कार, बटुकप्रसाद पुरस्कार, डॉ. छन्नुलाल पुरस्कार, राजा बिड़ला पुरस्कार एवं विनायक नंदशंकर मेहता पुरस्कार प्रदान किया वहीं राधाकृष्ण पदक, रेडिचे पदक, सुधाकर पदक, गुलेरी पदक, ग्रीब्ज पदक, द्विवेदी स्वर्ण पदक, बलदेवदास पदक, एवं डॉ.हीरालाल स्वर्ण पदक सदृश कितने ही पदक देने का आयोजन किया गया।

हिंदी भाषा में विविध ग्रंथों का अभाव देखकर उसके प्रणयन एवं संवर्द्धन के निमित्त सभा ने कई ग्रंथमालाओं का प्रकाशन किया। नागरी प्रचारिणी ग्रंथमाला, नागरी प्रचारिणी लेखमाला, मनोरंजन पुस्तकमाला, देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला, सूर्यकुमारी पुस्तकमाला, बालाबख्श–राजपूत–चारण पुस्तकमाला, देव पुरस्कार ग्रंथावली, रुक्मिणी तिवारी पुस्तकमाला, रामविलास पोद्दार स्मारक ग्रंथमाला, महेंदुलाल गर्ग विज्ञान ग्रंथावली, नवभारत ग्रंथमाला, महिला पुस्तकमाला, प्रकीर्णक पुस्तकमाला और सत्यज्ञान पुस्तकमाला जैसी ग्रंथमालाएँ एवं कितने ही अभिनंदन ग्रंथ एवं संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर कचहरी हिंदी कोश एवं कोशेत्सव स्मारक संग्रह सदृश कितने ही ग्रंथ सभा ने प्रकाशित किए। इन ग्रंथमालाओं एवं पुस्तकमालाओं में सभा ने हजारों ग्रंथ प्रकाशित किए।

नागरी (हिंदी भाषा और नागरी लिपि) के माध्यम से सभा ने न केवल संपूर्ण भारतवर्ष वरन् हिंदी के विदेशी विद्वानों को भी सभा से जोड़ा और विदेशी विद्वान सभा का सभासद होना अपने लिए गौरव की बात समझते थे। जार्ज ग्रियर्सन, आर.ई. ग्रीब्ज, टी. ग्राहम बेली और जे.सी. जैक्सन ब्रिटेन से; डॉ. जुल्स बलॉक फ्रांस से; डॉ. एल्सडार्फ एवं ताराचंद रॉय जर्मनी से; प्रो. स्टेफन स्टेसियक पोलैंड से; प्रो. नार्मन ब्राउन अमेरिका से; जार्ज एम. सिक्लेयर हवाई द्वीप से; डॉ. जी. टूसी इटली से; आर. क्लोडिक विलहर जेवा युगोस्लाविया से; प्रो. जी. मार्गेनस्टर्न नार्वे से; डॉ. आंद्रेशार्फ बेल्जियम से; डॉ. एफ.बी.जे. कुलपर और डॉ. जे. वोगेल हालैंड से और प्रो. ए. बारान्निकोफ रूस से, सदृश लोग काशी के सभासद और अधिकारी थे।

काशी की इस सभा ने प्रवासी भारतीयों को भी जोड़ने और उनके बीच हिंदी का प्रचार–प्रसार करने का भी प्रयास किया क्योंकि यह बात सभा के उद्देश्यों में शामिल थी। 19वीं सदी के प्रथम दशक में ही सभा के 12 संस्थापक सदस्यों में एक शंकरनाथ, जो बाद में स्वामी शंकरानंद हुए, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में हिंदी का जोरदार प्रचार किया। सभा ने नागरी का जो आंदोलन आरंभ किया और हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की उसके फलस्वरूप न केवल संपूर्ण भारतवर्ष वरन् विदेशों में भी नागरी प्रचारिणी सभाओं और हिंदी साहित्य सम्मेलनों की स्थापना का आंदोलन आरंभ हो गया। सभा से ही प्रेरणा लेते हुए भवानी दयाल संयासी ने नेटाल में 'हिंदी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। बाद में ट्रांसवाल, जर्मिस्टन, न्यूकासल, डेनहाउसर, हाटिंगस्प्रुट, लेडीस्मिथ, विनेन एवं जेकोब्स आदि स्थानों में भी नागरी प्रचारिणी सभाएं स्थापित हुई। इन संस्थाओं को एक केंद्रीय मंडल के अंतर्गत करने के लिए दक्षिण अफ्रीका हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया। इतना ही नहीं, सन्यासीजी नए 'जगरानी प्रेस' की स्थापना की और 'हिंदी' नामक विख्यात पत्रिका का प्रकाशन किया। काशी की सभा ने संयासी जी के कार्यों की आरंभ से ही सराहना की, जब हिंदी पत्रिका आर्थिक तंगी से गुजर रही थी तभी उसके सहायतार्थ 50 रु. भेजी। संयासी जी की हिंदी सेवाओं को मान्यता प्रदान करते हुए काशी की सभा द्वारा उन्हें अपने 'अर्द्ध–शताब्दी उत्सव' का सभापति चुना गया था।

सभा के सभासदों ने उपनिवेशों एवं अन्य देशों में अपनी सामर्थ्य के अनुसार हिंदी का पुरजोर प्रचार किया। क्वेटा (बिलोचिस्तान) में हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई जिसके सभासदों की संख्या 1940 ई. तक 150 थी। फारस की खाड़ी मस्कट और मन्ना में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई जिसके मुख्य कार्यकर्ता विश्राम जे.पटेल थे। मॉरीशस में 1926 ई. में स्थापित 'तिलक विद्यालय सभा' का नाम बदलकर 1935 ई. में 'हिंदी प्रचारिणी सभा' मोताईलोंग कर दिया जिसके तत्त्वावधान में पोर्टलुई में 'प्रथम मॉरीशस हिंदी साहित्य सम्मेलन' आयोजित हुआ। श्री के.एम. भगत, त्रिभुवन सिंह और डॉ. जे. शिवगोविंद सदृश लोग इसके मुख्य कार्यकर्ता थे। इसके अतिरिक्त सभा के सभासदों यथा सत्यनारायण शर्मा ने श्रीलंका में; रणधीर विद्यालंकार, रमनभाई

जे. पटेल और सत्यपाल ने कीनिया में; दयालजी भीमभाई देसाई ने युगांडा में; डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, गोपालदास, श्यामचरण मिश्र और रामजीदास शर्मा ने वर्मा में; प्रकाशवती दयाल ने नेटाल में; वैद्यनाथ वर्मा ने न्यूयार्क में हिंदी प्रचार का कार्य किया। नागरी प्रचारिणी सभा ने स्वयं नेपाल, मॉरीशस, ट्रिनीडाड, नैरोबी, दक्षिण अफ्रीका इत्यादि देशों में हिंदी प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न किया परंतु धन और कार्यकर्ताओं की कमी के कारण उस उत्साह का उपयोग नहीं कर सकी जो उसने भारत में किया।

सभा का एक सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हिंदी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करवाना था। अपनी स्थापना के बाद से ही सभा ने राजभाषा का आंदोलन आरंभ कर दिया था और ज्यों-ज्यों भाषा विवाद बढ़ता गया और सांप्रदायिकशक्तियाँ हिंदी का विरोध कर रही थीं, त्यों-त्यों सभा ने हिंदी का पक्षपोषण किया और सांप्रदायिक ताकतों का विरोध किया। 1940ई. आते-आते जब भाषा विवाद चरम पर पहुँच गया तब सभा ने दिसंबर 1939 ई. में 'हिंदी' पत्रिका का प्रकाशन चंद्रबली पांडे के संपादन में आरंभ किया और इस पत्रिका ने वास्तविकता का प्रतिपादन करने और सांप्रदायिक ताकतों का विरोध करने में निर्णायक भूमिका निभाई। भाषा आंदोलन के इतिहास में इस पत्रिका का पृष्ठ-पृष्ठ दस्तावेज है। हिंदी साहित्य सम्मेलन के साथ मिलकर और देश की समस्त हिंदी संस्थाओं का सहयोग लेकर सभा ने तब तक आंदोलन किया जब तक कि भारत की संविधान निर्मात्री सभा ने न पूर्णत: सही आंशिक रूप में ही सही 14 सितंबर, 1949 ई. को हिंदी को भारत कई राजभाषा घोषित कर दिया। हिंदी के क्षेत्र में सभा की यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी क्योंकि उसने उस कार्य को पूर्ण किया जिसका शुभारंभ उसने 57 सन् पूर्व किया था।

सन् 1986 के बाद खोज के द्वारा हिंदी की सामग्री का विस्तार होता गया और स्वतंत्रता प्राप्ति तथा हिंदी के राजभाषा होने पर अपने हीरकजयंती (सं 2010) के अवसर पर सभा ने 'हिंदी विश्वकोश' और 'हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास' प्रस्तुत करने की योजना बनाई। सभा के तत्कालीन सभापति तथा इस योजना के प्रधान संपादन डॉ. अमरनाथ झा की प्रेरणा से इस योजना ने मूर्तरूप ग्रहण किया। भारत के राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी ने इसमें रुचि ली और प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया। इस प्रकार प्रत्येक विभाग के लिए अलग-अलग मान्य विद्वान् एवं संपादक नियुक्त कर 30 वर्षों से कुछ अधिक समय में लगभग 5 लाख रुपए व्यय करके सभा ने 'हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास' 16 खंडों में तैयार किया। इस प्रकार हिंदी के उद्‌गम से लेकर आज तक का इतिहास क्रमबद्ध ढंग से सभा ने तैयार कराया। वहीं, 1956 ई. में 'हिंदी विश्वकोश' की योजना भारत सरकार द्वारा स्वीकृत हो जाने पर सभा ने 1957 ई. से कार्य आरंभ किया और 14 वर्षों के अथक परिश्रम के बाद स. 2013 वि.(1970 ई.) में 'हिंदी विश्वकोश' का निर्माण कार्य पूरा किया। मानक के रूप में हिंदी में इस कोश का वही स्थान है जो स्थान अंग्रेज़ी में 'एनसाइक्लो-पीडिया ब्रिटानिका' का है। इस कार्य द्वारा सभा ने हिंदी में एक बड़े अभाव की पूर्ति की।

इस प्रकार सभा के समस्त कार्यों का अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ सभा ने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं को परिपूर्ण किया वही हिंदी की लेख एवं लिपि प्रणाली सुधारने का महान् कार्य किया। नागरी प्रचारिणी एवं सरस्वती पत्रिकाओं के माध्यम से जहाँ हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में निर्णायक भूमिका निभाई वहीं 1900 ई. से हिंदी हस्तलेखों की खोज कर हिंदी में प्रभूत ग्रंथ उपस्थित कर दिया तथा साहित्यिक व ऐतिहासिक दोनों अभावों की पूर्ति की। इसके अलावा कितने ही शब्दकोशों एवं ग्रंथमालाओं का प्रकाशन किया, साथ ही विविध पुरस्कार एवं पदक प्रदान कर लोगों को हिंदी साहित्य के विविध अंगों को परिपूर्ण करने हेतु प्रेरित किया। हिंदी के माध्यम से संपूर्ण देश को जोड़ने का उद्योग किया, हिंदी को विश्व स्तर पर प्रचारित किया और प्रवासी भारतीयों को भी एक भाषा के माध्यम से जोड़ने का कार्य किया। भारत की समस्त हिंदी संस्थाओं का नेतृत्व करते हुए तब तक आंदोलन किया जब तक कि हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित नहीं कर दिया गया। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि न केवल भारत वरन् समूचे विश्व के इतिहास में किसी एक नगर एवं किसी एक संस्था ने किसी भी एक भाषा एवं उसके साहित्य के लिए इतना बड़ा स्थान, महत्त्व और प्रसिद्धि नहीं पाई है जितना कि हिंदी के लिए काशी और काशी की नागरी प्रचारिणी सभा को प्राप्त है।

Kashi Hindu Univesity

Vanarasi

□

9

विदेशों में हिंदी शिक्षण

✍ **प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी**

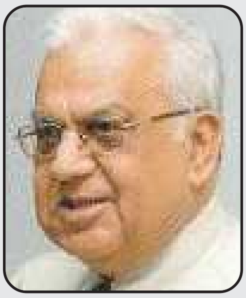

- प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी प्रगत अभिकलन विकास केंद्र, संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत में सलाहकार (भाषा प्रौद्योगिकी) हैं तथा एम.टैक में शिक्षण और संयोजन तथा प्रकृत भाषा संसाधन प्रयोगशाला में परामर्शदाता हैं।
- उन्होंने हिंदी में एम.ए. तथा पी एच.डी. के साथ ही भाषा विज्ञान में एम.लिट. हासिल की है।
- हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी, संस्कृत तथा ढीधुं भाषाओं का ज्ञान रखने वाले प्रो. गोस्वामी अनुवाद और शैली विज्ञान के विशेषज्ञ हैं।
- भाषा विज्ञान, कोश विज्ञान और निर्माण, भाषा प्रौद्योगिकी, भाषा शिक्षण तथा हिंदी साहित्य में इनकी रुचि है।
- वे नई दिल्ली हिंदी सांध्यकालीन हिंदी संस्थान तथा विश्व नागरी विज्ञान संस्थान के निदेशक होने के साथ ही महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के सदस्य, भारत सरकार के संचार विभाग, पर्यटन विभाग एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के भी सदस्य हैं।
- कई शोध निर्देशन कर चुके प्रो. गोस्वामी प्रशासन, अध्यापन, लेखन, कोश निर्माण, अनुवाद से जुड़े हैं।
- कई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, गोष्ठियों, कार्यशालाओं में भाग ले चुके हैं तथा इंटरनेट के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार कार्य से जुड़े हैं।

भाषा-शिक्षण एक अनुप्रयोगात्मक विधा है। अनुप्रयोग होने के कारण इसमें उद्देश्य निहित रहता है। वास्तव में भाषा किसी-न-किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन के लिए सीखी-सिखाई जाती है। जब तक भाषा शिक्षण के उद्देश्य और प्रयोजन निर्धारित नहीं होते, उसकी सार्थकता और संप्राप्ति को आँका नहीं जा सकता। भाषा शिक्षण की अपनी सिद्धि निर्धारित प्रयोजन की सिद्धि है, जो शिक्षार्थी सापेक्ष होती है। हिंदी भाषा शिक्षण के संदर्भ में देखा जाए तो उसके एक ओर एक ऐसा भाषाभाषी समुदाय है, जिसे न तो हिंदी भाषा का ज्ञान है और न ही व्यक्तिपरक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जानना आवश्यक समझता है और दूसरी ओर एक समुदाय है, जो न केवल हिंदी का सामान्य ज्ञान रखता है बल्कि उसके मानक रूप से भी परिचित है। भाषा शिक्षण का संबंध मातृभाषा और अन्य भाषा शिक्षण दोनों से है। इन दोनों के संदर्भ में हिंदी शिक्षण की प्रकृति और प्रणाली शिक्षार्थी की आवश्यकता, प्रयोजन और अभिप्रेरणा के कारण अलग-अलग हो जाती है।

अन्य भाषा-शिक्षण के अंतर्गत द्वितीय भाषा के रूप में और विदेशी भाषा के रूप में शिक्षण होता है। वास्तव में मातृभाषा से अलग भाषा द्वितीय भाषा मानी जाती है। जो अधिकतर सामाजिक दृष्टि से प्रकार्यात्मक अथवा व्यावहारिक कारणों से सीखी जाती है, क्योंकि अपने देश के नागरिक के रूप में वक्ता इसके प्रत्यक्ष मूल्यों से जुड़ा रहता है। कुछ देशों में अपनी भौगोलिक सीमा के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय जीवन के कुशल संचालन के लिए एक से अधिक भाषाएँ समायोजित होती हैं। विदेशी भाषा देश की भौगोलिक सीमा तथा संस्कृति एवं परंपरा दोनों संदर्भों से अलग मानी जाती है। विदेशी भाषा का शिक्षण अन्य देश की संस्कृति को जानने अथवा ग्रहण करने के प्रयोजन से होता है।

विश्व के अनेक देशों में हिंदी शिक्षण के विभिन्न पाठ्यक्रम चल रहे हैं। इन पाठ्यक्रमों में भाषा की विभिन्न इकाइयों ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य आदि का शिक्षण कराया जाता है और उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से परिचित कराया जाता है। हर देश की अपनी भाषिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ हैं और उनमें हिंदी का शिक्षण उन्हीं की स्थितियों के अनुरूप कराने की आवश्यकता पड़ती है। विश्व में

लगभग डेढ़ सौ विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है। इन विश्वविद्यालय में अन्य भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। विदेश में 12 विश्वविद्यालय ऐसे हैं, जो दक्षिण-एशियाई अध्ययन से जुड़े हुए हैं और इनमें हिंदी माध्यम से पी-एच.डी. शोध करने की व्यवस्था है। लगभग 22 विश्वविद्यालयों में आरंभिक स्तर से हिंदी शिक्षण होता है। जिन देशों में भारतवंशी अधिक संख्या में हैं, उनमें हिंदी शिक्षण अधिकांशत: द्वितीय भाषा के रूप में होता है और जहाँ उस देश के मूल निवासी हिंदी सीखते हैं, वहाँ हिंदी का शिक्षण विदेशी भाषा के रूप में होता है। इस दृष्टि से विदेशों में हिंदी शिक्षण दो आयामों में होता है। एक, भारतवंशी बहुल देशों में और दो, यूरोपीय, एशियाई देशों और अमेरीका में।

भारतवंशी बहुल देशों में हिंदी शिक्षण : मॉरीशस के पोर्ट लुई स्थित रॉयल कॉलेज में हिंदी की पढ़ाई 1892 में प्रारंभ हुई। यहाँ हिंदी शिक्षण प्राथमिक स्तर से प्रारंभ होता है। मॉरीशस विश्वविद्यालय में बी.ए. तथा महात्मा गांधी संस्थान में एम.ए. तथा पी-एच.डी. स्तर पर हिंदी एक विषय है। इस देश में स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं का योगदान भी काफी सराहनीय है। हिंदी लेखक संघ, हिंदी अकादमी, इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र तथा इंद्रधनुष सांस्कृतिक परिषद् में उत्तम कार्य हो रहा है। क्रियोली (भाषा) के अलावा भोजपुरी यहाँ की संपर्क भाषा रही है।

दक्षिण अमेरिका के देश वेनेजुएला के समुद्र तट से कुछ ही दूरी पर कैरेबियन सागर में दो सुंदर द्वीपों का एक देश है—त्रिनिडाड एवं टुबैगो। त्रिनिडाड के अनेक गाँवों मे छोटी-छोटी पाठशालाएँ खोलकर हिंदी पढ़ने-पढ़ाने का काम शुरू किया गया। कैनेडियन मिशन स्कूल में सभी विद्यार्थियों को हिंदी पढ़नी पड़ती थी। 1969 में स्थापित भारतीय विद्या संस्थान में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार में अभूतपूर्व कार्य हुआ है। चनका सीताराम तथा अन्य हिंदी प्रेमियों ने 1986 में त्रिनिडाड में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी निधि नामक संस्था की स्थापना की। त्रिनिडाड के एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा संस्थान निहरस्ट के स्कूल ऑफ लैंग्वेजेस में भी हिंदी कक्षाओं का आयोजन होता है। इसके अतिरिक्त गांधी सेवा संघ, डिवाइन लाइफ सोसाइटी, आर्य प्रतिनिधि सभा, हिंदू प्रचार केंद्र आदि संस्थाएँ हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में जुटी हैं।

सूरीनाम में भारत के विभिन्न प्रदेशों से गए विविध भाषा-भाषी भारतीयों को जोड़ने का काम हिंदी करती है, इसलिए यहाँ हिंदी भारतीय अस्मिता की प्रतीक बन गई है। सूरीनाम में राजभाषा डच के साथ-साथ भारतवंशियों के घर, मंदिर और मसजिद में सर्वत्र हिंदी भाषा का प्रयोग सरनामी के रूप में होता हैं। हॉलैंड में सूरीनाम से अधिकतर प्रवासी भारतीय हॉलैंड में आकर बस गए है। आज हॉलैंड में एक लाख से अधिक हिंदी भाषी हैं। यहाँ सूरीनामियों की भारतीय संस्कृति की अनेक संस्थाएँ हैं, जिनके अंतर्गत हिंदी का प्रचार-प्रसार तथा शिक्षण कार्य होता है, 'लल्लारूख' भारतवंशियों की प्रमुख संस्था है, जिनका हिंदी शिक्षण में विशेष योगदान है।

फीजी में कक्षा 1 से लेकर 10वीं कक्षा तक हिंदी भाषा की शिक्षा दी जाती है और उसकी परीक्षाएँ भी होती हैं। हिंदी का उच्च अध्ययन एवं प्रशिक्षण यहाँ के टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेजों में होता है। आर्यसमाज, सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, रामकृष्ण मिशन, हिंदी परिषद् आदि फिजी की प्रमुख प्रचारक संस्थाएँ हैं।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के रूप में पहुँचे। स्वामी भवानी दयाल संन्यासी ने अपने घर पर ही भारतीय बच्चों को हिंदी पढ़ाना प्रारंभ किया था। प्रो. परमानंद एवं शंकरानंद इसी प्रकार हिंदी और धार्मिक शिक्षण का कार्य करते थे। स्वामी भवानी दयाल ने हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना की और सन् 1916 में एक साहित्यिक सम्मेलन का आयोजन किया। सन् 1948 में हिंदी शिक्षा संघ की स्थापना हुई। दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के बीच ही महात्मा गांधी का राजनीतिक जीवन प्रारंभ हुआ था। दक्षिण अफ्रीका में हिंदी अध्ययन-अध्यापन के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने वालों में शिवनारायण पांडेय, नरदेवजी वेदालंकार, प्रो. रामभजन सीताराम, डॉ. ऊषा शुक्ल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारत के पड़ोसी देश नेपाल, म्याँमार, श्रीलंका और पाकिस्तान में हिंदी शिक्षण सुचारु रूप से चल रहा है। नेपाल को हिंदी का एक विशाल क्षेत्र माना जा सकता है। हिंदी की विकास धारा के साथ-साथ नेपाली भी विकसित हो गई है। नेपाल के पूर्व प्रधानमंत्री जी.पी. कोईराला, मातृका प्रसाद कोईराला, सूर्य प्रसाद उपाध्याय, रामनारायण मिश्र, भद्रकाली मिश्र आदि ने हिंदी को द्वितीय राष्ट्रभाषा का दरजा दिलाने के लिए भरसक प्रयास किया। नेपाल की राष्ट्रभाषा

नेपाली है, लेकिन लिपि देवनागरी है। काठमांडु में स्थित त्रिभुवन विश्वविद्यालय में एम.ए. हिंदी का पाठ्यक्रम सुचारु रूप से चल रहा है।

पाकिस्तान में कराची, इस्लामाबाद और लाहौर तीन विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण होता है। इसमें प्रमाणपत्र, डिप्लोमा पाठ्यक्रमों के साथ-साथ एम.ए. हिंदी की पढ़ाई भी आरंभ हो चुकी है। इन विश्वविद्यालयों में अधिकतर महिलाएँ हैं। यहाँ पर हिंदी में भारतीय संस्कृति तो मिलती ही है, साथ ही इसका मिजाज और रंग-ढंग भी अपना है। कहीं-कहीं फारसी का प्रभाव भी मिलता है। श्रीलंका में हिंदी भाषा के लोकप्रिय होने पर भी हिंदी शिक्षण की सुविधाओं का अभाव है। श्रीलंका में हिंदी निकेतन की विभिन्न शाखाओं में, कॅलणिय विश्वविद्यालय, कोलंबो विश्वविद्यालय, श्री जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय तथा निजी संस्थानों में हिंदी का अध्यापन उपाधि स्तर पर लगातार चल रहा है।

यूरोपीय, एशियाई देशों और अमरीका में हिंदी शिक्षण : इंग्लैंड में खुले ओरियंटल सेमिनार में हिंदुस्तानी की पढ़ाई 1798 में शुरू हुई थी और लगभग 150 साल पहले ही कैंब्रिज विश्वविद्यालय में हिंदी की पढ़ाई शुरू हो गई थी। यहाँ के विद्वानों में डॉ. रोनाल्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर उच्चकोटि के अनुवादक, संत काव्य के विशेषज्ञ और व्याकरण के पंडित हैं। उन्होंने मौखिक हिंदी अभ्यास माला, आउट लाइन ऑफ हिंदी ग्रामर जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। उन्होंने नंददास की 'रास पंचाध्यायी' और 'भ्रमरगीत' का प्रभावशाली अनुवाद किया। हिंदी के शिक्षक रूपर्ट स्नेल का हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा का अनुवाद महत्त्वपूर्ण कार्य है, जो इस समय अमेरिका के टेक्सास विश्वविद्यालय हिंदी शिक्षण में संलग्न है।

चैक गणराज्य के चार्ल्स विश्वविद्यालय, प्राहा, ओरियंटल हिंदी इंस्टीट्यूट, प्राग यूनिवर्सिटी आदि में हिंदी शिक्षण का कार्य होता है। इसमें विविध प्रामाणिक शिक्षण, सामग्री के निर्माण तथा प्रणयन पर अधिक से अधिक ध्यान दिया जाता है। विकास में ओदोलन स्मेकल की विशेष भूमिका रही है।

जर्मनी विश्व के उन प्रमुख देशों में है, जहाँ विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा का शिक्षण एवं साहित्य का विधिवत् पठन-पाठन हो रहा है। हुम्बोल्ट विश्वविद्यालय के अंतर्गत सन् 1950 से एशियाई अध्ययन संस्थान की स्थापना हुई है, जिसमें हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं संस्कृत, उर्दू तथा बँगला का भी अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। हिंदी, बँगला, कन्नड़ तथा रूसी के जर्मन विद्वान लोठर लुत्से ने प्रो. बहादुर सिंह के साथ मिलकर एक हिंदी पाठ्यपुस्तक की रचना की, जो जर्मनी के अनेक विश्वविद्यालयों में सहायक पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त माइग्रेट गाल्सलाफ़, बरबरा ब्यूरनट, लुप्त बगान्स, हन्नी लोटस्क कई वर्षों से हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में संलग्न हैं।

हिंदी भाषा के प्रति रोमानिया का अनुराग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिंदी का अध्ययन-अध्यापन रोमानिया के बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में ऐच्छिक विषय के रूप में सन् 1965 में सर्वप्रथम प्रारंभ हुआ था। 1971 में रोमानिया के बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में हिंदी का चार वर्षीय पाठ्यक्रम शुरू हुआ। इसके स्नातक छात्रों को विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन एक मुख्य विषय लेकर करना होता है।

पोलैंड के वार्सा विश्वविद्यालय में हिंदी पाठ्यक्रम का शुभारंभ श्रीमती तात्याना रूत्कोव्सका ने किया। इसके बाद सन् 1966 में मारिया क्रिस्टोफर बृस्की के प्रयास से हिंदी के प्रारंभिक शिक्षण के साथ-साथ एम.ए. पाठ्यक्रम भी चल रहा है। हिंदी साहित्य और भाषा पर शोध कार्य भी हो रहा है।

इटली में रोम, नेपल्स, तोरिनो, मिलान, वेनिस आदि शहरों में हिंदी पढ़ाई जाती है। रोम, तोरिनो एवं मिलान में नगरपालिका द्वारा चलाई जा रही कुछ शिक्षण संस्थाओं में हिंदी का दो वर्षों का पाठ्यक्रम है। मुख्य रूप से हिंदी की पढ़ाई नेपल्स तथा वेनिस विश्वविद्यालय में होती है। फ्रांस के पेरिस विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण पिछले कई वर्षों से निरंतर चल रहा है। यहाँ पर हिंदी शिक्षण का प्रारंभ अक्षर ज्ञान से लेकर लघु निबंध लेखन तक किया जाता है। यह अध्ययन भाषा, साहित्य और संस्कृति के स्तर पर होता है।

हंगरी के बुडापेस्ट में हिंदी का पाँच वर्षीय पाठ्यक्रम है। पिछले 10-15 वर्षों से हंगरी में भारतीय संस्कृति तथा भाषाओं के प्रति लोगों की रूचि बढ़ रही है। विश्वविद्यालय के अतिरिक्त भारतीय दूतावास में भी हिंदी की नियमित कक्षाएँ होती हैं। हंगरी में हिंदी

भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार में भारत सरकार तथा बुडापेस्ट में स्थित भारतीय राजदूतावास के प्रयास महत्त्वपूर्ण हैं। बहुभाषाविद् मारिया नेज्येशी हिंदी शिक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हुए तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की भी अध्येता है।

स्वीडन के उपसाला विश्वविद्यालय में 1968 से हिंदी पढ़ाने की शुरुआत हुई। आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिए स्वीडन में एक केंद्र स्थापित किया गया है, जिसमें हिंदी के अतिरिक्त तमिल, बँगला, आदि भारतीय भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं का एक केंद्र स्वीडन के राजधानी स्टाकहोम में भी स्थित है।

बल्गारिया के सोफिया विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्ययन–अध्यापन स्नातक स्तर पर होता है। वास्तव में हिंदी शिक्षण की नियमित व्यवस्था सन् 1974 से प्रारंभ हुई, जब विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या विभाग में चीनी, जापानी, मंगोलियन, फारसी तुर्की आदि भाषाओं के साथ हिंदी को भी जोड़ा गया। इस द्विवर्षीय पाठ्यक्रम में हिंदी ध्वनि और उच्चारण पर अधिक बल दिया जाता है।

हिंदी भाषा के प्रति रोमानिया का अनुराग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिंदी का अध्ययन-अध्यापन रोमानिया के बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में ऐच्छिक विषय के रूप में सन् 1965 में सर्वप्रथम प्रारंभ हुआ था। 1971 में रोमानिया के बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में हिंदी का चार वर्षीय पाठ्यक्रम शुरू हुआ। इसके स्नातक छात्रों को विदेशी भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन एक मुख्य विषय लेकर करना होता है।

जापान और भारत का सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संबंध बहुत प्राचीन है। जापान में आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्यापन का आरंभ सन् 1908 में तांक्यो विदेशी भाषा महाविद्यालय में हुआ था। सन् 1921 में ओसाका यूनिवर्सिटी ऑफ फोरेन स्टडीज की स्थापना हुई, तांक्यो की एक विद्यापीठ में 1962 से हिंदी का चार वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम चलता है। तांक्यो के आसाही संस्कृत स्थान, भारत–जापान परिषद्, सर्वोदय के अनुयायी हिरोकी नागा के एशिया–अफ्रीकी भाषा विद्यालय में हिंदी अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त ताइशो, ओतानी, ओत्तेमोन गाकुइन और कन्साई विदेशी अध्ययन विश्वविद्यालय में भी हिंदी की पढ़ाई होती है। इस प्रकार जापान में विश्वविद्यालयों, कॉलेजों और निजी शिक्षा–संस्थाओं में हिंदी सीखने वालों की संख्या प्रतिवर्ष 200 से भी अधिक होती है।

दक्षिण कोरिया में विश्वविद्यालयी स्तर पर हिंदी का अध्ययन–अध्यापन व्यवस्थित ढंग से हो रहा है। इसकी राजधानी सिओल में स्थित हानकुक विश्वविद्यालय के विदेशी भाषा अध्ययन विभाग में 1972 से हिंदी की पढ़ाई हो रही है। सियोल के अतिरिक्त पुसान विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में भी हिंदी का शिक्षण होता है। इस प्रकार सियोल के तीनों कैंपस में 300 से अधिक हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या है। इन विश्वविद्यालयों के प्रो. ली जंग हो, प्रो. वू.जो. किम और प्रो. खो ने हिंदी शिक्षण साहित्य तथा हिंदी व्याकरण पर विशेष कार्य किया है।

चीन में हिंदी अध्ययन–अध्यापन की नियमित व्यवस्था का श्रीगणेश सन् 1942 में खुनमिड़ में स्कूल ऑफ ओरियंटल लैंग्वेज एंड लिटरेचर में दो वर्षीय पाठ्यक्रम से हुआ। पेइचिंग विश्वविद्यालय में भारत विद्या और हिंदी शिक्षण की व्यवस्था प्रो. यिन ने की थी। इस विश्वविद्यालय के अध्यापकों ने स्वयं हिंदी शिक्षण पुस्तक की रचना भी की है। इसमें देवनागरी लिपि, उच्चारण और व्याकरणिक नियमों को वैज्ञानिक ढंग से इस प्रकार समझाया गया है, जिससे छात्र हिंदी स्वयं सीख सकता है।

अमेरिका महाद्वीप के तीनों खंडों उत्तरी, केंद्रीय एवं दक्षिणी अमेरिका में हिंदी समझने और सीखने वालों की संख्या लाखों में है। उत्तरी अमेरिका के संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा आदि देशों में हिंदी अध्ययन–अध्यापन स्कूल स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर और शोध स्तर तक हो रहा है। केंद्रीय अमेरिका के मैक्सिको तथा दक्षिणी अमेरिका के अर्जेंटिना, ब्राजील, वेनेजुएला, कोलंबिया, क्यूबा, पेरू और चिली देशों में सामान्य स्तर पर हिंदी पाठ्यक्रम

चल रहे हैं। इन देशों में हिंदी अध्येता दो प्रकार के हैं—एक, अप्रवासी भारतीय हैं और दो, मूल अमेरिकी।

आधुनिकतम भाषा विश्लेषण के सिद्धांतों के आधार पर हिंदी का सबसे अधिक अध्ययन कार्य संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ है। इस अध्ययन के आधार पर विभिन्न प्रकार की शिक्षण सामग्री—पाठ्यपुस्तकें, प्रवेशिकाएँ, कोश तथा अन्य सहायक सामग्री अर्थात् भाषा प्रयोगशाला के लिए ऑडियो कैसेट और कंप्यूटर पर आधारित शिक्षण सामग्री का निर्माण एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसमें यमुना काचरू, सुरेंद्र गंभीर, तेज भाटिया, वेद प्रकाश बटुक, भूदेव शर्मा, सुषम बेदी, अंजना संधीर, सुधा ओम ढींगरा आदि प्रवासी भारतीयों का विशेष योगदान है। इन देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में पुस्तकालयों, पत्र-पत्रिकाओं, हिंदी फिल्मों, वीडियो फिल्म, आकाशवाणी, दूरदर्शन के कार्यक्रमों के अतिरिक्त विभिन्न साहित्यिक, धार्मिक तथा अन्य संस्थाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

अमेरिका में ब्रिटिश कोलंबिया, इलिनाय, इंडियाना, हवाई, बोस्टन, पिट्सबर्ग, कैलिफोर्निया, शिकागो, पेंसिलेनिया, न्यूयॉर्क, ओहायो, कार्नेल, मिशीगन, विस्कांसिन, टेक्सॉस, वॉशिंगटन, मिनिस्सोटा, वर्जीनिया आदि विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी तथा भारत संबंधी अध्ययन के व्यापक कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। अमेरिकी सरकार ने टेक्सॉस विश्वविद्यालय में हिंदी-उर्दू फैलोशिप की परियोजना हिंदी शिक्षण और प्रचार-प्रसार के लिए प्रारंभ की है। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन भाषाविज्ञान के कार्यक्रमों के अंतर्गत, दक्षिणी एशिया केंद्र, एशिया-अफ्रीका अध्ययन केंद्र, प्राज्य विद्या केंद्र अथवा विदेशी भाषा विभाग के अंतर्गत चल रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक संस्थाएँ महानगरों में निजी स्तर पर हिंदी सिखाने का कार्य कर रही हैं। ये संस्थाएँ भारतीय मूल के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दे रही हैं। कुछ हाई स्कूलों में भी हिंदी शिक्षण जोरों से हो रहा है।

विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति, हिंदी साहित्य सभा, हिंदी साहित्य संघ तथा धार्मिक संस्थाएँ हैं। प्रवासी भारतीयों में हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग आदि संस्थाओं ने किया है। अमेरिका विद्वानों में केरीन शोमर, माईकल सी. शपीरो, लिहांडेस, हर्मन वान ऑल्फन आदि का हिंदी भाषा और साहित्य में विशेष योगदान है। न्यूयॉर्क में भारतीय विद्या भवन एक प्रमुख संस्था है, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार में विशेष कार्य कर रही है।

कनाडा का समाज बहुजातीय एवं बहुभाषीय है। कनाडा में हिंदी पढ़ाने के आठ केंद्र बैंकूवर, टोरंटो, विंडसर, मांट्रियल, रंजीना विश्वविद्यालय आदि हैं। प्रायः सभी प्रमुख शहरों के विश्वविद्यालयों मे हिंदी पढ़ाई जाती है। टोरंटो के हाईस्कूल में अन्य विषयों के साथ हिंदी भाषा की कक्षाएँ भी लगती हैं। ओटावा में मुकुल हिंदी स्कूल की सभी कक्षाओं में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। कनाडा में हिंदी परिषद, क्यूबेक हिंदी संघ, हिंदी लिट्रेरी सोसाइटी, हिंदी विद्यापीठ आदि अनेक संस्थाएँ हैं, जो हिंदी के विकास में कार्यरत हैं।

इस प्रकार हिंदी भाषा के जनपदीय और राष्ट्रीय महत्त्व के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व भी है। यह भाषा मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, गुयाना, टोबेगो एवं त्रिनिडाड आदि देशों में बसे भारतीय मूल के जन समुदाय की भाषा है। उस समुदाय ने अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखने के लिए हिंदी भाषा को सुरक्षित रखा है। इन देशों में जो भारतीय प्रवासी लगभग 200 वर्ष पहले गए थे, वे अपने साथ बोलियाँ भी ले गए थे, लेकिन भारत में हुए परिवर्तनों के कारण अब वे शैक्षिक प्रयोजन आदि के लिए मानक हिंदी का प्रयोग करते हैं। ये देश छोटे हैं, इसलिए उनमें उच्च शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। यही कारण है कि इन देशों में हिंदी का उच्च अध्ययन, हिंदी में शोध, साहित्य-सृजन आदि का अभाव दिखाई पड़ता है। इनमें प्रयोजनमूलक पक्षों में हिंदी का प्रयोग हो तो इसके व्यापक प्रचार को बल मिलेगा।

1764, औट्रम लाइंस,
डॉ. मुखर्जी नगर,
(किंग्जवे कैंप), दिल्ली 110009
kkgoswami1942@gmail.com

□

10

प्रो. राम प्रकाश : न भूतो न भविष्यति

✍ **राज हीरामन**

भारत और मॉरीशस स्वतंत्रता से पहले भी एक-दूसरे के करीब रहे थे। भारत मॉरीशस के प्रति एक अनुज का सा व्यवहार करता रहा है। कारण—भाषा, संस्कृति, धर्म, सभ्यता और राजनीति भी है। यह संबंध और अधिक प्रगाढ़ बनता गया, क्योंकि मॉरीशस के बहुसंख्यक भारतीय मूल के हैं और मॉरीशस की स्वतंत्रता (1968) से अब (2003 से 2005 तक के समय के अतिरिक्त) तक यहाँ की बागडोर एक भारतीय आप्रवासी के हाथ में ही रही है।

1901 में मोहनदास करमचंद गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते हुए इत्तेफाकन मॉरीशस में कुछ दिनों के लिए रुके थे। यहाँ गिरमिटिया मजदूरों (भारतीय) की दयनीय स्थिति का जायजा लिया और उन्हें सलाह दी थी—

(1) अपने बच्चों को दीक्षित कीजिए,

(2) उन्हें राजनीति में जाने के लिए प्रेरित कीजिए और

(3) भारत की ओर देखते रहिए।

सचमुच, हम मॉरीशसीय भारत की ओर नजरें टिकाए रहे! वह सांस्कृतिक हो, धार्मिक हो, कला और संगीत हो, भाषा हो या राजनीति तथा सुरक्षा ही क्यों न हो!

- राज हीरामन का जन्म 11 जनवरी, 1953 को मॉरीशस के उत्तरी प्रांत ग्रां बे में हुआ।
- पाँच सालों तक प्राथमिक सरकारी पाठशाला में हिंदी अध्यापक रहे।
- वे टाइम्स ऑफ इंदिया (बंबई) से पत्रकारिता में अनुभव प्राप्त कर चुके हैं।
- उन्होंने मास्को (रूस) अंतर्राष्ट्रीय पत्रकारिता संस्थान से डिप्लोमा इन जर्नलिज्म प्राप्त किया तथा स्थानीय रेडियो और दूरदर्शन में चार सालों तक पत्रकार के रूप में कार्यरत रहे। साथ ही साथ राज हीरामनजी ने स्वदेश हिंदी साप्ताहिक का तीन सालों तक संपादन किया।
- 10 सालों से भी अधिक प्राथमिक सरकारी तथा माध्यमिक पाठशालाओं के हिंदी पाठ्य-लेखन पैनल का सदस्य रह चुके हीरामनजी आजकल महात्मा गांधी संस्थान के सृजनात्मक एवं लेखन विभाग में 'रिमझिम' तथा 'वसंत' पत्रिका के वरिष्ठ उप-संपादक हैं।

1901 में आए गांधीजी ने युवा बैरिस्टर और फ्रेंच के ज्ञाता मणिलाल डॉक्टर को यहाँ 1907 में भेजा। उन्होंने यहाँ के भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की सेवा की। उनके हक में कानूनी लड़ाई मणिलाल ने लड़ी और देश में प्रथम गुजराती, हिंदी, अंग्रेजी समाचार-पत्र 'हिंदुस्तानी' की स्थापना की। 1909 में मणिलाल भारत लौटे तो उन्होंने डॉ. चिरंजीव भारद्वाज को यहाँ भेजा। डॉ. भारद्वाज भारत में उस समय के उतने पढ़े एकमात्र मेडिकल डॉक्टर थे। वह भी लंदन से दीक्षित! उन्होंने मणिलाल द्वारा स्थापित आर्य समाज का काम आगे बढ़ाया, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाता है और आज भी निभा रहा है। डॉ. भारद्वाज ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' का अंग्रेजी में अनुवाद किया था।

आर्य समाज, फिर हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना (1935) और उसी समय मजदूर दल की स्थापना हो जाती है। 1937 में जयनारायण राय और 1939 में वासुदेव विष्णुदयाल जैसे विद्वान् भारत से उच्च शिक्षा प्राप्त कर लौटने लगते हैं और हिंदी की शिक्षा-दीक्षा तथा प्रचार-प्रसार में एक नई और क्रांतिकारी लहर दौड़ने लगती है। हिंदी तथा बैठकाओं द्वारा देश की स्वतंत्रता की भूमि पक्की बनने लगती है। दोनों मॉरीशसीय विद्वानों ने यहाँ की राजनीति में भारतीय रंग मिलाया। सांस्कृतिक तथा पूर्वीय भाषा (हिंदी) का खूब प्रचार किया, फलस्वरूप हम भारतमय हो गए।

1947 में भारत आजाद हुआ। मॉरीशस झूम उठा और 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस तिरंगा फहराकर मनाने लगा। मॉरीशस के अंग्रेजी हुकूमत के सामने डॉ. शिवसागर रामगुलाम (उन्होंने ही मॉरीशस को आजादी दिलवाई और देश के प्रथम प्रधानमंत्री भी बने और वे ही देश के राष्ट्रपिता हैं) ने भारत से एक ऐसे विद्वान् मँगाने की माँग की, जो

मॉरीशस के गिरमिटिया मजदूरों की संतानों को संस्कृति की शिक्षा देते हुए भारतीय भाषाओं, हिंदी, उर्दू, तमिल और मराठी के शिक्षण के लिए सरकार को सलाह दे और व्यवस्था करे (वसंत 120, वर्ष 25 त्रैमासिक, पृष्ठ 31, बेणीमाधो रामखेलावन)।

मॉरीशस में प्रो. राम प्रकाश का आगमन

भारत की नई-नवेली सरकार ने 1949 में मॉरीशस के लिए एक नगीना भेजा—प्रो. रामप्रकाश। प्रो. रामप्रकाश 14 भाषाओं के अतिरिक्त फ्रेंच भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। (वसंत 102 वर्ष 25, पृष्ठ 31, बेणीमाधो रामखेलावन)। प्रो. राम प्रकाश विभाजन पूर्व भारत के लाहौर एम.डी. कॉलेज में संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी के प्रोफेसर रह चुके थे और विभाजन के बाद अंबाला में संस्कृत, हिंदी, फ्रेंच और अंग्रेजी पढ़ाते थे। (वसंत 102 वर्ष 25, पृष्ठ 1, संपादकीय डॉ. बी. जागासिंह)

जयनारायण रॉय, पं. वासुदेव विष्णुदयाल और डॉ. शिवसागर रामगुलाम जैसे स्वतंत्रता-प्रेमी आजादी के संघर्ष-अखाड़े में उतर चुके थे। वे उपनिवेशकों से देश लेने संघर्ष में मस्त थे, पर आजादी को सँभालने के लिए गिरमिटिया मजदूरों और उनकी संतानों को तैयार करता कौन? बहुत हद तक पं. विष्णुदयाल ने सांस्कृतिक और धार्मिक जागरण के द्वारा हिंदी भाषा में यह कार्य किया। जयनारायण राय ने हिंदी संस्था तथा स्वयं राजनीति में आकर यह कार्य किया। पर वह प्रो. राम प्रकाश ही थे, जो गाँव-गाँव गए, हिंदी संस्थाएँ खुलवाईं, विद्वानों और आम लोगों से संपर्क स्थापित किया। (वसंत 120, वर्ष 25 डॉ. बी. जागासिंह) तथा पूरे देश में क्रांति के स्वर फूँके, उनके नाम के साथ-साथ मानो स्वाधीनता का देवता दृष्टिगोचर होता रहा (इंद्रधनुष, वर्ष 6-अंक 7 दिसंबर 1994 संपादकीय प्र. रामशरण)। हिंदी प्रचारिणी सभा के 27वें समावर्तन समारोह (1963) में उन्होंने अपने भाषण में कहा था— ''यह आवाज, यह आह्वान, यह ललकार स्वतंत्रता की है, दासत्व की शृंखलाओं को तोड़ देने की है, यदि हमने एकता का पल्ला न छोड़ा तो शीघ्र ही मॉरीशस में स्वतंत्रता, समता और भाईचारे का आविर्भाव होगा। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की नींव पड़ेगी, दुख दूर होंगे, सुख के दिन आएँगे।'' प्रो. राम प्रकाश राजनेताओं तथा अंग्रेजी उपनिवेश के बीच दाँतों के बीच जीभ जैसे थे। फिर भी सबसे मिलकर, संघर्ष करके, हिंदी का रास्ता सुगम बनाया (वसंत 120, वर्ष 25 डॉ. बी. जागासिंह) मॉरीशस के पूरे हिंदू समाज ने उन्हें शीघ्र ही पहचान लिया था। बहुत कम लोग जानते हैं कि उन्होंने इस देश के भारतीय मूल के लोगों का अस्तित्व बनाया और बचाया। खेर जगतसिंह ने अमृतसर से उन्हें 16 अगस्त, 1956 में एक पत्र में लिखा था— ''आप ऐसे एक ही व्यक्ति हैं जो मॉरीशस के हिंदुओं के लिए कुछ कर सकते हैं।'' तब तक खेर जगतसिंह का मॉरीशस आना नहीं भी हुआ था। बाद में खेर जगतसिंह स्वतंत्र मॉरीशस के शिक्षा मंत्री भी बने। देश के अहिंदू भी उनके तेजोमय मुखमंडल की आभा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। फ्रेंच के महाविद्वान् जॉं एरेन ने 5 जनवरी, 1952 में प्रो. राम प्रकाश को लिखा भी—परम गुरु और मित्र, मैं अपने को एक में समेटना चाहता हूँ और मुझे एक परम हिंदू भाई चाहिए जो मेरा मित्र हो, मेरा गुरु हो।''

प्रो. राम प्रकाश जैसे विलक्षण प्रतिभावाले तथा कार्य करने की अद्‌भुत क्षमतावाले प्राध्यापक बराबर चर्चा का केंद्रबिंदु तथा अप्रतिम प्रेरणास्रोत बने रहेंगे (वसंत 102, वर्ष 25, पृष्ठ 86, मुनिश्वरलाल चिंतामणि) उनका व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था कि उनके संपर्क में आए हुए लोग-छात्र प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे। उस पारस के स्पर्श में न जाने कितने हैं, जो देखते-देखते सुवर्ण बन गए (इंद्रधनुष)। प्रो. राम प्रकाश अदम्य साहस वाले व्यक्ति थे। चाहे घर में हो या दफ्तर में; चाहे स्कूलों में हो या प्रशिक्षण महाविद्यालय में, परिवार में बच्चों के साथ समुद्र पर जाते तो वे उमड़ती लहरों के आर-पार निकल जाना चाहते थे। अपनी बाँहों में ज्वार-भाटों का शक्ति के साथ सामना करते थे।

प्रो. राम प्रकाश जैसे विलक्षण प्रतिभावाले तथा कार्य करने की अद्‌भुत क्षमतावाले प्राध्यापक बराबर चर्चा का केंद्रबिंदु तथा अप्रतिम

प्रेरणास्रोत बने रहेंगे (वसंत 102, वर्ष 25, पृष्ठ 86, मुनिश्वरलाल चिंतामणि) उनका व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था कि उनके संपर्क में आए हुए लोग–छात्र प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे। उस पारस के स्पर्श में न जाने कितने हैं, जो देखते–देखते सुवर्ण बन गए (इंद्रधनुष)।

प्रो. राम प्रकाश अदम्य साहस वाले व्यक्ति थे। चाहे घर में हो या दफ्तर में; चाहे स्कूलों में हो या प्रशिक्षण महाविद्यालय में, परिवार में बच्चों के साथ समुद्र पर जाते तो वे उमड़ती लहरों के आर–पार निकल जाना चाहते थे। अपनी बाँहों में ज्वार–भाटों का शक्ति के साथ सामना करते थे। (वसंत 105 पृष्ठ 22, बेटी मीनाक्षीसिंह) वे यही चाहते रहे कि भारतीय गिरिमिटिया मजदूरों की संतानें, उनके छात्र–छात्राएँ साहसी हों और साहस के साथ अंग्रेजी भाषा का सामना करें। अपनी आजादी हासिल करें।

''1974 में प्रो. राम प्रकाश (मध्य) उनके दाएँ तरफ शिक्षण महाविद्यायल के प्रशिक्षक डॉ. चिंतामणि और बाई ओर श्री प्रेमचंद ओरी तथा कुछ छात्र–अध्यापक''

प्रो. राम प्रकाश की मॉरीशस में आवश्यकता

प्रो. राम प्रकाश 1949 में मॉरीशस पधारे। डॉ. शिवसागर रामगुलाम एक वर्ष पूर्व देश के सांसद निर्वाचित हो चुके थे। उनका प्रस्ताव था कि तत्कालीन सरकार (जो अंग्रेजी सरकार थी) हिंदी भाषा तथा अन्य भाषाओं के शिक्षण को, सरकारी स्कूलों में पूरे दिन पढ़ाने की व्यवस्था करे (पंकज 2010 आजामिल माताबदल, संपादकीय) वरना हिंदी और सरकारी पाठशालाओं में ? 1946 से हिंदी की पढ़ाई सिर्फ सुबह और शाम को की जाने लगी थी। दिन में अंग्रेजी, फ्रेंच, गणित और भूगोल पढ़ाए जाते थे (वसंत 102 संपादकीय डॉ. जगासिंह)। यह ताज्जुब है कि स्कूलों में चपरासी का वेतन 44 रुपए था, जबकि एक हिंदी अध्यापक को 12.50 रुपए ही मिलता था। और पूर्णकालिन अध्यापक को 25 रुपए। प्रो. राम प्रकाश और डॉ. शिवसागर रामगुलाम के सतत प्रयास से 15 मार्च, 1954 से सरकारी पाठशालाओं में भारतीय भाषाओं की पढ़ाई पूरे दिन शुरू हो गई (पंकज 2010 पंडित बेणीमाधो रामखेलावन)।

हिंदी के कार्य में, उसकी उन्नति में, इसके विकास में और उनको सम्मानित कराने में प्रो. राम प्रकाश मेहनत और अथक परिश्रम करते रहे। उन्होंने हिंदी को उचित दर्जा दिलवाया। इस कार्य में वे किसी से पीछे नहीं रहे। पूर्वीय भाषाओं को सरकार की दृष्टि में सम्मानित कराने का श्रेय बहुतांश में उन्हीं को है (आर्योदय 20 अगस्त, 1971 उदयनारायण गंगू)।

उन्होंने हिंदी भाषा, संस्कृति की पगडंडी को साफ और चौड़ा किया, जिसके कारण आज की हिंदी सुगम रास्ते पर तेज रफ्तार में चलती गाड़ी की तरह प्रगति की ओर बढ़ती जा रही है। (वसंत 102 धनराज शंभु पृष्ठ 74)। हिंदी भाषा के अध्यापकों का स्तर अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा के अध्यापकों के स्थान पर लाना आप ही का काम है। (वसंत 102, पृष्ठ 70–71)।

इस देश में हिंदी के विकास और भारतीय संस्कृति को सुदृढ़ बनाने के लिए प्रो. राम प्रकाश का कदम मॉरीशस की हिंदी के लिए वरदान साबित हुआ। (पंकज 2010)

जिस तरह से एक मोटर को चलाने के लिए एक चालक की आवश्यकता होती है, उसी तरह से मॉरीशस में भारतीयों की संस्कृति को प्रगति के पथ पर लाने के लिए एक कर्मठ विद्वान् की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति प्रो. राम प्रकाश के महान् योगदान से हुई। (पंकज 2010)

प्रेरणस्रोत

प्रो. राम प्रकाश हजारों–हजारों के प्रेरणास्रोत रहे। शिक्षा हो, कला हो, साहित्य हो, क्रांति हो, जिसे की जो खूबियाँ होती थीं, उन्हें उस दिशा के लिए प्रेरित करते थे। सोए हुए छात्र–छात्राओं को झिड़कियाँ देकर कुरेदते थे, जगाते थे। लेखक, कवि, संगीतकार, चित्रकार आदि के प्रति उसके मन में अत्यंत प्रेम था (वसंत 102, रामदेव धुरंधर, पृ. 68)। इस लेख का लेखक उन्हीं की प्रेरणाओं का फल है, जो आज 20–22 पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्रो. जी की प्रेरणा बार–बार मुझे उच्च पढ़ाई की ओर खींच रही

थी। मैं बी.ए, एम.ए, पी-एच.डी. बना (वसंत 102 डॉ. उदय नारायण गंगू)। प्रो. राम प्रकाश से वे न मिले, न ही उसके साथ शिक्षा ग्रहण की, फिर भी उनकी प्रेरणाओं से अछूते नहीं रहे। उनसे जब बात हुई और जब उनसे मुलाकात हुई तो उनके प्रेरणा भरे शब्द सुनकर ऐसा लगा कि हम जीवन में बहुत कुछ खो बैठे, क्योंकि उनके साथ पढ़ने का मौका ही नहीं मिला। (वसंत 102, पृष्ठ 74)

प्रशिक्षण महाविद्यालय में कोई भी छात्र-छात्रा उठकर किसी संगीत को सुनकर नाचने लगते तो प्रो. राम जी उन्हें मना नहीं करते थे। उपरांत उन्हें और नाचने को कहते और आगे के लिए प्रेरित करते। 1973 में प्रशिक्षण महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं ने प्रो. राम प्रकाश के खिलाफ नारे लिखे। पर उन्होंने कभी किसी को दबाने या दंडित करने का प्रयास नहीं किया, न किसी से बदला लेने की भावना रखी।

उलटे प्रो. राम जी ने उनकी सराहना की थी और क्रांति के स्वर बुलंद करने की प्रेरणाएँ भी दी थीं। उस विरोध में इस लेख का लेखक भी शामिल था। प्रो. राम प्रकाश अपने प्रति विरोध का स्वागत करते थे। उनकी इज्जत करते थे, सम्मान करते थे। उनके अंदर क्रांति होते देखना चाहते थे। (भूली बिसरी याद : काली चरण जनार्धन, स्टार पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006)

प्रो. राम प्रकाश और हिंदी अध्यापन

प्रो. राम प्रकाश का मॉरीशस में सबसे बड़ा योगदान हिंदी के क्षेत्र में रहा। हिंदी का अध्यापन, प्रशिक्षण और हिंदी में पाठ्य-पुस्तकों की रचना। उनका अध्यापन बड़ा कुशल और मनोरंजक होता था। वे सच्चे अर्थों में कलाकार थे। उनकी वाणी, उनकी मुद्राएँ और उनके हाथों के इशारे, सब के जरिए वे उन अर्थों को प्रकट करते थे, जो वे अपने छात्रों को सिखाना चाहते थे। (स्वामी कृष्णानाथ, इंद्रधनुष अंक 71 वर्ष 4/1994)

प्रो. राम प्रकाश के मॉरीशस आगमन के पूर्व हिंदी के कुछ जानकार, जो पंडित (पुजारी हुआ करते थे) हिंदी पढ़ा रहे थे—शिक्षण कला, पाठ्य-पुस्तक, पठन विधि आदि का न तो उन्हें प्रशिक्षण मिला था, न ज्ञान ही था! प्रो. राम प्रकाश के प्रयास से मॉरीशस में शुद्ध हिंदी भाषा-शिक्षण की परंपरा चल पड़ी। (इंद्रधनुष अंक 71 वर्ष 4/1994 डॉ. उदयनारायण गंगू)

प्रो. राम प्रकाश ने कुछ योग्य हिंदी अध्यापकों के सहयोग से 'नवीन हिंदी' भाग 1 से 6 तक तथा 'दाल का दाना' पुस्तक की रचना की। इससे पहले राष्ट्रभाषा पुस्तक माला जारी थी। (इंद्रधनुष, अंक 71, वर्ष 4, 1994 डॉ. एल.पी. रामयाद पृष्ठ 19)

'मेरी यात्राएँ' में रामधारीसिंह दिनकर लिखते हैं—'नवीन हिंदी' पाठमाला के नाम से उन्होंने 6 पुस्तकें प्रकाशित की हैं, जो विलक्षण हैं। ऐसे पाठ्य ग्रंथ अभी अंग्रेजी और फ्रेंच में भी नहीं निकले हैं।

आज अगर पूर्वीय भाषाओं, विशेष कर हिंदी में हम मॉरीशस में प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओं के लिए स्वयं पाठ्य-पुस्तकें तैयार कर रहे हैं, प्रश्न-पत्र तैयार करके संशोधन भी कर रहे हैं; तो यह सब प्रो. राम प्रकाश के ही तैयार किए हुए शिष्य कर रहे हैं। जब 'नवीन हिंदी' के 6 भाग छह कक्षाओं के लिए तैयार होकर प्राथमिक पाठशालाओं में गई तो केवल हिंदी को ही यह श्रेय प्राप्त है कि आधुनिक भाषा सिद्धांत के अनुसार मॉरीशस के वातावरण के अनुकूल 'नवीन हिंदी' पुस्तक माला (भाग 1 से 6 तक) और 'दाल का दाना' तैयार की गई। (सूर्यप्रसाद मंगर भगत, नव जीवन, 24.12.1962)

प्रो. राम के आते ही हम मॉरीशस में हिंदी पाठ्य-पुस्तक लेखन में अंग्रेजी और फ्रेंच से आगे निकल गए।

प्रो. रामप्रकाश और भारतीय संस्कृति

प्रो. राम प्रकाश ने मॉरीशस में न सिर्फ हिंदी की गंगा बहाई और हिंदी के साहित्यकारों को जन्म देकर प्रेरित किया, परंतु उन्होंने इस देश में हिंदुत्व के प्रति सब का ध्यान भी आकर्षित किया। वे रॉयल कॉलेज कयुर्पिप और पोर्ट लुई, क्वीन एलीजाबेथ कॉलेज, जॉन केनेडी कॉलेज जैसे उच्च सरकारी माध्यमिक कॉलेजों में हिंदुत्व का पाठ देने जाते। प्रशिक्षण महाविद्यालय के अंग्रेजी-फ्रेंच के छात्र-छात्राओं को भी यह शुभावसर मिला।

सैंकड़ों छात्राध्यापक उनसे अनुप्राणित होकर भारतीय संस्कृति के प्रेमी बने। (स्वामी कृष्णानाथ, इंद्रधनुष वर्ष 6, अंक 7, वर्ष 1994 पृष्ठ 26) स्वामी कृष्णानाथ स्वयं ईसाई धर्मावलंबी थे, प्रशिक्षण महा विद्यालय में अंग्रेजी और फ्रेंच के छात्राध्यापक थे, पर वे प्रो. राम प्रकाश की किसी भी कक्षा में अनुपस्थिति नहीं होते थे। 'जब उन्होंने रामचंद्र कृष्ण और गौतम बुद्ध आदि भारतीय महापुरुषों के जीवन पर प्रकाश डाला तब मैं हिंदुत्व के अनमोल रहस्यों में विचरण करने लगा।' (इंद्रधनुष वर्ष 6 /अंक 7/ वर्ष 1994/ पृष्ठ 26/ स्वामी कृष्णानाथ)

प्रो. राम प्रकाश ने अपनी उत्कट इच्छा, अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम से इस देश में हिंदुत्व, भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा की अमृत धारा बहा दी। (पंकज जून 2010 अंक 39 वर्ष 14 पृष्ठ 10, बेनीमाधो रामखेलावन)

प्रो. राम प्रकाश से मॉरीशस के हिंदू और गैर हिंदू भी बहुत प्रभावित हुए थे। वे उन श्रेष्ठतम (फ्रेंच) विद्वानों से मिलते थे, जिनके विचार भारतीय कला, साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में सर्वमान्य थे। (वसंत 102 वर्ष 25 मीनाक्षी सितलसींह (प्रो.जी की बेटी) पृष्ठ 22)

कैसे भूल सकता हूँ आचार्य राम प्रकाश को, जिन के चरणों में बैठकर मैंने उस महान् धर्म का प्रथम पाठ पढ़ा था, जिसकी मैं एक प्रसिद्ध एवं आधिकारिक प्रचारक हूँ। (डॉ. उदय नारायण गंगू)

इस तरह 'काली चमड़ी' के नफरत पानेवाले गैर हिंदू सिर्फ प्रो. राम प्रकाश के गहरे सांस्कृतिक ज्ञान के कारण गिरमिटिया से निकलकर देश की आजादी सँभालने के काबिल बने। प्रो. राम प्रकाश का प्रभाव, उनकी विद्वत्ता और शालीनता को देखकर फ्रेंच के विद्वान् मालकोम दे शाजाल ने प्रो. जी के माध्यम से भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं.जवाहर लाल नेहरू को एक पत्र लिखा—

श्री नेहरू को पता होना चाहिए कि भारत के हिंदुओं और मॉरीशस के हिंदुओं में बहुत पुराना और सजीव संबंध है। भारत के प्रति मॉरीशस के अगाध प्रेम से भारत महान् बना।

अंग्रेजी के महान् कवि रोबर्ट एडवर्ड हार्ट ने प्रो.जी के सांस्कृतिक और फ्रेंच ज्ञान के कारण ही दोस्ती का हाथ बढ़ाया था। उस महान् कवि ने प्रो. राम प्रकाश को लिखा भी था—''अगर आप का सावान (दक्षिण प्रांत का जिला) आना हो तो कृपया मेरे यहाँ आइए! आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी'' (25.3.1953)

प्रो. रामप्रकाश और पूर्वीय भाषाओं का शिक्षण

आज हिंदीभाषी को छोड़कर प्रो. राम प्रकाश का नामलेवा नहीं हैं। जबकि प्रो. राम प्रकाश ने हिंदी के साथ-साथ अन्य पूर्वीय भाषाओं की भी गाड़ी चलाई। उर्दू, तमिल, तेलुवगु, मराठी आदि भाषाओं पर पूरा अधिकार रखते थे और इन भाषाओं के छात्र-छात्राओं को प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रशिक्षण भी देते थे। चार भाषाओं पर अधिकार रखनेवाले, फिर मराठी, तेलुगु, उर्दू के प्राध्यापकों को प्रशिक्षण देनेवाले वे पहले महाविद्वान् थे (वसंत 102 वर्ष 25 डॉ. जागासिंह संपादकीय) अपने उस संपादकीय में ही डॉ. जागासिंह लिखते हैं—''बैठकाओं, मदरसों और कोविलों से भारतीय भाषाओं को सरकारी स्कूलों में औपचारिक जगह दिलवाई और माध्यमिक कॉलेजों तक फलते-फूलते देखा तथा विश्वविद्यालय तक का रास्ता तैयार कर दिया।''

प्रो. राम प्रकाश भारतीय भाषाओं के सूर्य थे। (इंद्रधनुष 1994 डॉ. एल.पी. रामयाद, पृष्ठ 19)

साहित्यिक प्रेरणा

प्रो. राम प्रकाश के आगमन (1949) से पूर्व जयनारायण रॉय और पं. वासुदेव विष्णुदयाल को छोड़ कुछ पंडिताऊ हिंदी लिखने वाले सामने आ गए थे। पर असल में हिंदी साहित्यकार उनके मॉरीशस आने के बाद ही पैदा हुए। इस देश में हिंदी का कौन ऐसा साहित्यकार है, जो प्रो. राम प्रकाश के सान्निध्य में न आया। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व से प्रभावित न हुआ हो। बीसियों साहित्यकार हुए, हिंदी उद्यान में नए-नए पौधे पुष्पित और फलित हुए। (वसंत 120, बेणीमाधो रामखेलावन)

मेरी तरह तमाम अपरिपक्व रचनाकारों को उन्होंने कला के क्षेत्र में हाथ पकड़कर चलना सिखाया; लेकिन कभी अधिकारपूर्वक जताया नहीं कि हमारे लिए महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं उनकी प्रत्येक बात ने विशेष रूप से एक जादू का काम किया, जिसके फलस्वरूप आज भी लेखन प्रक्रिया से जुड़ा हुआ हूँ। (वसंत 102, रामदेव धुरंधर, पृष्ठ 68)

आप एक पंक्ति भी लिख लीजिए, प्रो. जी पढ़ेंगे, सराहेंगे और कक्षा के सामने पढ़कर सुनाएँगे। लोगों की स्वरचित कविताओं, कहानियों आदि का संशोधन करके अपना सुझाव देना वे नहीं भूलते थे। उनके ही प्रोत्साहन के फलस्वरूप हिंदी अध्यापकों में कई अच्छे लेखक तथा कवि पैदा हुए। (वसंत 102, डॉ. मुनिश्वरलाल चिंतामणि पृष्ठ 35)

इस लेख के लेखक ने अपनी 20 पुस्तकों की भूमिका में यही लिखा है—''मैं अपने आचार्य प्रो. राम प्रकाश को दिया लगातार लिखते रहने का वचन पूरा कर रहा हूँ। जब तक मेरा स्वास्थ्य रहेगा, तब तक मैं हर साल एक न एक पुस्तक प्रकाशित करता रहूँगा।''

'वसंत', 'पंकज', 'इंद्रधनुष' जैसी पत्रिकाएँ चलाने और संपादित करनेवाले प्रो. राम प्रकाश के ही शिष्य हैं। ये पत्रिकाएँ उनपर विशेषांकों का प्रकाशन भी कर चुकी हैं। आज मॉरीशस की धरती पर हिंदी के वृक्ष पर कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना आदि साहित्यिक

फल विकसित हुए हैं। उनमें अधिकांश प्रोफेसर राम प्रकाश द्वारा पल्लवित एवं पुष्पित हुए हैं। आज मॉरीशस की धरती पर हिंदी के वृक्ष पर कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना आदि साहित्यिक फल विकसित हुए हैं।* उनमें अधिकाश प्रो. राम प्रकाश द्वारा पल्लवित एवं पुष्पित हुए है। (कालीचरण जनार्धन)

प्रो. राम प्रकाश का मॉरीशस के प्रति त्याग

प्रो. राम प्रकाश मॉरीशस के लिए (1949–1985) मर मिटे। उन्होंने इस देश में भारतीय भाषाओं को उच्चशिक्षा तक पहुँचाने के लिए अपना सबकुछ न्योछावर कर दिया। (पंकज 2010 वर्ष 18, अंक 39. पृष्ठ 10, बेणीमाधव रामखेलावन)

डॉ. उदयनारायण गंगू का मानना है कि इस महान् हिंदी–सेवी (प्रो. राम प्रकाश) ने अपनी जवानी के 27 वर्ष मॉरीशस की हिंदी फुलवारी को सुशोभित करने में लगा दिए (इंद्रधनुष पृष्ट 23)। आगे उसी लेख में डॉ. गंगू लिखते हैं—''मॉरीशस के हिंदी जगत् में प्रो. राम प्रकाश वह नक्षत्र हैं, जिनकी आभा सदा अक्षुण्ण बनी रहेगी। मॉरीशसीय हिंदी भाषा का कोई भी इतिहास तब तक अपूर्ण समझा जाएगा जब तक प्रो. राम प्रकाश के नाम और काम से वंचित रखा जाएगा।''

डॉ. एल.पी. रामयाद ने (इंद्रधनुष) में लिखा है कि जिस तरह से राजा हरिश्चंद्र ने सत्य के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया था, उसी प्रकार प्रो. राम प्रकाश ने इस देश में भारतीय भाषाओं को उच्चशिक्षा तक पहुँचाने के लिए अपनी सारी जवानी न्योछावर कर दी।

निष्कर्ष

प्रो. राम प्रकाश ने शिवसागर के साथ ही युग की माँग की पहचान की। देश को उपनिवेश के शासन का सामना करने के लिए एक शिक्षित पीढ़ी की आवश्यकता थी। उस पीढ़ी को तैयार करना था और वह पीढ़ी भारतवासियों की ही हो सकती थी। कारण :

(1) गोरों के हाथों पीड़ित,

(2) पितृदेश भारत ने हाल ही में विश्व को स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया था (पंकज 2010 संपादकीय, अजामिल माताबदल)।

प्रो. राम प्रकाश लगभग 29 वर्षों तक मॉरीशस में कार्य करते रहे (यह छोटा शब्द है) हिंदी की सेवा करके, हमारा उद्धार करके और गिरमिटियों को उनका अधिकार दिलाकर भारत लौट गए। 1949–1978 तक वे मॉरीशस में रहे। इस कार्यकाल में हिंदी और हिंदी भाषा शिक्षण में जो काया पलट हुआ, वह अभूतपूर्व है। जिस लगन, निष्ठा और आत्मीयता से उन्होंने हिंदी का ध्वजारोहण किया, हिंदी आंदोलन चलाया, पाठ्य–पुस्तकों के साथ–साथ सहायक सामग्री भी तैयार की और उनका प्रचलन कराया, बैठकाओं से निकालकर हिंदी को प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय के स्तर तक सम्मानित करवाया। ये सब मॉरीशसीय हिंदी के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। (इंद्रधनुष, वहीं, संपादकीय)

''हिंदी प्रो. रामप्रकाश की आत्मा थी और भारतीय संस्कृति उनका हृदय! कर्म उनकी पूजा, भक्ति तथा साधना थी! कर्मण्येवाधिकारस्ते उनके जीवन का लक्ष्य था। कर्म में वे भगवान् के दर्शन करते थे। यही उनका वास्तविक परिचय है।'' (कालीचरण जनार्धन, भूली बिसरी यादें, पृष्ठ 37)

प्रो. राम प्रकाश से पूर्व मॉरीशस की धरती पर ऐसे विद्वान्, हिंदी–प्रेमी, कर्मठ सेवी, संस्कृति के पुजारी का पदार्पण नहीं हुआ था और शायद बाद में भी नहीं होगा, क्योंकि प्रो. राम प्रकाश परिस्थिति के अनुकूल बने थे।

प्रो. राम प्रकाश 1982 में भारत लौट गए। 4 सितंबर, 2001 को 91 वर्ष की आयु में उन्होंने अपना शरीर त्यागा। दो वर्ष पूर्व उनकी धर्मपत्नी रूप सुधा का स्वर्गवास हो गया। दु:ख–विपदाओं ने भी उन्हें कभी विचलित नहीं किया था। उन का एकमात्र पुत्र भारत में डॉक्टरी करते समय मृत्यु को प्राप्त हो गया था तो भी उन्होंने अपने कुछ छात्रों से कहा था—ये अस्ति न नास्ति, जो आया है उसे जाना पड़ेगा।

उनके कहे कुछ वाक्य तो लगभग सभी मॉरीशसीय लोगों के कानों में आज भी गूँजते हैं—

''जो अपना खाता है वह पाप खाता है''(ऋग्वेद)

''अधिकार आसमान से नहीं टपकता! अधिकार तो कर्तव्यों की पूर्ति में छिपा है।''

''आप समाज का सम्मान प्राप्त करने के अधिकारी बनिए।''

Senior Assistant Editor
Vasant/ Rimjhim
MGI Moka
rajheeramun@gmail.com

☐

* उनमें अधिकांश प्रो. राम प्रकाश द्वारा पतलवित एवं पुष्पित हुए हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी और विश्व में हिंदी

हिंदी ब्लॉगिंगः कुछ पुनर्विचार

✍ बालेंदु शर्मा दधीच

लगभग आठ साल की अवधि में हिंदी ब्लॉगिंग ने अपनी न सिर्फ इंटरनेट, बल्कि जनसंचार के माध्यमों तथा रचनाकर्म के बीच भी अलग पहचान और जगह बनाई है। हिंदी रचनाकर्म के क्षेत्र में व्याप्त आलस्य, ठहराव और शीतलता के बीच ब्लॉगिंग, जो कि वास्तव में एक तकनीकी परिघटना तथा माध्यम मात्र है, ने वह हलचल और ऊष्मा पैदा की है जिसकी अनुपस्थिति हिंदी साहित्य, पत्रकारिता और भाषाप्रेमियों को व्यथित करने लगी थी। हिंदी में पिछली बार ऐसी रचनात्मक हलचल टेलीविजन चैनलों के प्रस्फुटन के दौर में देखी गई थी। लगभग बीस साल के वायवीय अंतराल में ब्लॉगिंग ने, जो कि वास्तव में कोई हिंदी-केंद्रित तकनीक नहीं है, हमारे साहित्यिक सूनेपन में दमदार हस्तक्षेप किया। इसके साथ ही रचनात्मकता का एक उफान सा आया जिसने स्तरीय साहित्यिक सामग्री रचनेवालों से लेकर घटिया रचनाओं की अंतहीन जुगाली करनेवालों तक को हिंदी अभिव्यक्ति संसार के व्यापक कलेवर के भीतर समेट लिया। आज हिंदी ब्लॉगिंग उत्कृष्ट रचनाओं से लेकर दैनिक जीवन से जुड़ी महत्त्वहीन निजी टिप्पणियों, राजनैतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाक्रम की उपयोगी मीमांसाओं से लेकर अप्रिय किस्म के बहस-मुबाहिसों, रचनाकर्मियों के एक अद्वितीय मंच से लेकर गुटबाजी, आत्मश्लाघा एवं चापलूसी के अड्डे तथा जागरूकता फैलाने के सार्थक साधन से लेकर आरोप-प्रत्यारोपों के सहज सुलभ माध्यम का रूप ले चुका है। कुछ अच्छा, कुछ बुरा, हिंदी ब्लॉग जगत वह पंचमेल खिचड़ी है जिसे खाने पर हर व्यक्ति को अलग-अलग स्वाद आता है। वास्तव में ब्लॉगिंग की अवधारणा भी यही है। सीमाओं से मुक्त, स्वच्छंद, सरल और सबको एक-दूसरे से जोड़नेवाला माध्यम।

- बालेंदु शर्मा दधीच प्रमुख हिंदी वेब पोर्टल प्रभासाक्षी.कॉम के समूह संपादक हैं।
- तकनीकीविद् और स्तंभकार बालेंदु शर्मा दधीच सूचना प्रौद्योगिकी और न्यू मीडिया के क्षेत्र में एक सुपरिचित नाम है। उनकी गणना हिंदी और तकनीक के बीच अनुकूलता विकसित करने में जुटे हिंदी-सेवियों में होती है। हिंदी-भाषियों के तकनीकी सशक्तीकरण की दिशा में उन्होंने बहुपक्षीय प्रयास किए हैं।
- हिंदी सॉफ्टवेयरों, वेब अनुप्रयोगों आदि के विकास, तकनीकी विषयों पर लेखन, शैक्षणिक संस्थानों में तकनीक, हिंदी और मीडिया से जुड़े विषयों पर नियमित व्याख्यानों और कार्यशालाओं में भागीदारी, सॉफ्टवेयर कंपनियों के एप्लिकेशंस के हिंदीकरण अभियानों में सक्रिय योगदान और केंद्र तथा राज्य सरकारों के तकनीकी विभागों और संस्थानों की योजनाओं-परियोजनाओं में भूमिका आदि क्षेत्रों में अपना योगदान देते आए हैं।
- कंप्यूटर पर हिंदी में मानक टंकण सिखाने वाले उनके सॉफ्टवेयर स्पर्ष का मार्च 2011 में लंदन में लोकार्पण हुआ।
- इन दिनों वे हिंदी और कंप्यूटरीय हिंदी सिखाने वाले व्यापक पैकेज पर कार्य कर रहे हैं। विंडोश सहित माइक्रोसॉफ्ट के कई उत्पादों के हिंदीकरण की प्रक्रिया में उन्होंने हाथ बँटाया है।

हिंदी ब्लॉगिंग का एक अहम कालखंड पूरा हो चुका है। इसने बहुत सी उम्मीदें जगाई हैं और कुछ तोड़ भी दी हैं। किंतु अब हिंदी ब्लॉगिंग के 'तीव्र प्रसार' संबंधी आत्मसंतोष, आनेवाले दिनों की सुखद कल्पनाओं और ब्लॉग विश्व की विविधताओं की प्रशंसा करते रहने का समय नहीं रहा। तकनीकी और साहित्यिक दुनिया में आठ साल का अरसा किसी भी विधा या माध्यम को परिपक्व बनाने के लिए छोटा नहीं होता। इससे पहले कि हम हिंदी ब्लॉगिंग के दूसरे तथा अधिक चुनौतीपूर्ण दौर में प्रवेश करें, इस बात का संजीदा, ईमानदार तथा व्यावहारिक मूल्याँकन किए जाने की जरूरत है कि अपने पहले चरण में क्या यह माध्यम वाकई उतना ही सफल तथा क्रांतिकारी सिद्ध हुआ जितनी संभावनाएँ इसके भीतर मौजूद थीं। हिंदी ब्लॉगिंग के अधिकांश

मंचों पर तथाकथित उपलब्धियों, खुशफहमियों और प्रचारात्मक बिंदुओं पर आधारित मुद्दे हावी हो जाते हैं। ऐसे मंचों पर प्राय: ईमानदार समालोचना और तटस्थ मूल्यांँकन का अभाव रहता है। इतने वर्षों बाद ब्लॉगिंग की वाहवाही करते रहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अंतत: हम यह प्रचार उन्हीं लोगों के बीच कर रहे हैं जो स्वयं ब्लॉगर हैं या हिंदी से जुड़े हैं। हिंदी ब्लॉगिंग की वास्तविकताएँ उनसे छिपी नहीं हैं। स्वयं को निरंतर आश्वस्त करते रहने से ब्लॉगिंग का विकास होनेवाला नहीं है और न ही उसमें आनेवाली असुरक्षा की भावना समाप्त होगी। यदि उसे समाप्त करना है तो इस माध्यम की चुनौतियों और विकास के मद्दों पर ध्यान केंद्रित करने की जरूरत है। ब्लॉगिंग का सुखद, सुदर्शन चित्र खींचते रहने से उसका कोई विशेष लाभ नहीं होगा। बहुत हुआ तो यथास्थिति कायम रह जाएगी (हालाँकि ताजा चुनौतियों के मद्देनजर इस बात में भी गंभीर संदेह हैं)। आज उसके वास्तविक परिदृश्य को अनावृत्त करने की आवश्यकता है, भले ही वह कितना भी सुखद या अनाकर्षक हो। अंग्रेज़ी में इसके लिए एक अच्छा शब्द इस्तेमाल किया जाता है—'रियलिटी चेक।' यदि हम अपनी सीमाओं को स्वीकार ही नहीं करेंगे तो उनसे आगे कैसे बढ़ेंगे?

साहित्य और ब्लॉगिंग

हिंदी ब्लॉगिंग के भीतर और बाहर एक सवाल बार-बार उठाया जाता है कि ब्लॉग लेखन साहित्य है? इसी से जुड़ा एक अन्य प्रश्न भी चर्चा में रहता है कि क्या हिंदी ब्लॉगिंग ने हिंदी साहित्य में कितना योगदान दिया है। अलग-अलग मंच पर इसका अलग-अलग उत्तर मिलेगा। यदि ब्लॉगरों की संगोष्ठी में पूछा जाए तो इस बात पर लगभग सर्वानुमति दिखाई देगी कि हिंदी ब्लॉगिंग यकीनन साहित्य है और उसने साहित्य को बहुत समृद्ध बनाया है। किंतु साहित्यकारों के मंच पर उठने पर इसी प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होगा।

मेरी दृष्टि में दोनों ही पक्ष कुछ हद तक सही हैं। हिंदी ब्लॉगिंग ने इस मायने में हिंदी साहित्य के प्रति महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है कि उसने लेखन, रचनाकर्म और अभिव्यक्ति के प्रति आम लोगों की अभिरुचि को पुनर्जीवित किया है। आधुनिक युग की व्यस्तताओं, विवशताओं तथा दैनिक जीवन में बढ़ते तकनीकी हस्तक्षेप के कारण आम हिंदीभाषी व्यक्ति लिखना तो छोड़ ही दीजिए, पढ़ने से भी दूर होता जा रहा था। इस स्थिति में कोई बहुत नाटकीय बदलाव आज भी नहीं आया है, लेकिन फिर भी हिंदी ब्लॉगिंग की बदौलत छात्रों, युवकों और अन्य नवोदित लेखकों का ऐसा वर्ग तैयार हुआ है जिसने हिंदी में साहित्य रचना शुरूकिया है। यहाँ गुणवत्ता का प्रश्न गौण है क्योंकि आज नहीं तो इनमें से कई उभरते रचनाकर्मी हिंदी के अच्छे साहित्यकारों की श्रेणी में शामिल होंगे।

हिंदी ब्लॉगिंग ने एक बड़ा योगदान इंटरनेट को समृद्ध करने में दिया है। हिंदी तथा भारत से जुड़ी विविधतापूर्ण सामग्री उन्होंने वेब पर डाली है जो सर्च इंजनों के माध्यम से करोड़ों इंटरनेट प्रयोक्ताओं तक पहुँची है। कंप्यूटर पर हिंदी में काम कर उन्होंने हिंदी के प्रसार में भी योगदान दिया है और दूसरे हिंदीभाषियों को भी कंप्यूटर कौशल से युक्त किया है। तकनीकी क्षेत्र में हिंदी को लोकप्रिय बनाने में उन्होंने जितना बड़ा योगदान दिया है, वैसा न सरकारें दे सकी हैं और न ही कंपनियाँ। आम हिंदी ब्लॉगर ने इस धारणा को निर्मूल सिद्ध करने में मदद की है कि हिंदी में यह संभव नहीं है या वह नहीं हो सकता। उन्होंने हिंदी-विश्व का आत्मविश्वास बढ़ाया है। उसे स्वयं के प्रति अधिक आश्वस्त किया है।

किंतु जहाँ तक साहित्य और ब्लॉगिंग का मुद्दा है, सिक्के का एक दूसरा पहलू भी है। हिंदी ब्लॉगिंग में उस किस्म के स्तरीय तथा उत्कृष्ट लेखन की मात्रा कम है, जिसे 'साहित्य' की श्रेणी में गिना जा सके। जो ब्लॉगर अपने लेखन को 'साहित्य' का दर्जा दिलाने के लिए उतावले होकर दलीलें देते हैं वे संभवत: साहित्य और ब्लॉगिंग दोनों ही अवधारणाओं के साथ न्याय नहीं करते। ब्लॉगिंग का मूलभूत उद्देश्य 'साहित्य-सृजन' नहीं है और न ही साहित्य में 'ब्लॉगिंग' जैसी कोई विधा शामिल हो पाई है।

लगभग तीन वर्ष पहले एक वरिष्ठ हिंदी ब्लॉगर ने साहित्य और ब्लॉगिंग का संदर्भ आने पर टिप्पणी की थी कि ब्लॉगिंग साहित्य से भी कहीं आगे बढ़कर है। साहित्य के पाठकवर्ग का दायरा बहुत सीमित है जबकि ब्लॉग इंटरनेट के जरिए भौगोलिक सीमाओं से मुक्त हो चुका है। इस तरह की दलीलें भावुकतापूर्ण ही हैं। कारण, प्रसार का दायरा साहित्य की गुणवत्ता आँकने का पैमाना नहीं है। वह

अभिव्यक्ति की गहराई, भाषा सौष्ठव, मनोरंजन, नवीनता, स्तरीयता, चिंतन की गहराई, बौद्धिक विमर्श तथा पाठक के प्रति अवदान जैसे पैमानों पर मापी जाती है। जो लेखन इन मापदंडों पर खरा है, वह 'साहित्य' की श्रेणी में गिना जाएगा, भले ही उसे पाठक के नाम पर एक भला आदमी भी नसीब न हो। दूसरी तरफ, कितने ही लेखकों के उपन्यास लाखों की संख्या में बिकते हैं लेकिन वे साहित्यकारों की श्रेणी में नहीं गिने जाते। उनका साहित्य मनोरंजक अवश्य है इसलिए लोकप्रिय भी है। किंतु उत्कृष्ट साहित्य कहलाने के लिए आवश्यक अन्य अवयवों के लिहाज से इन रचनाओं की बहुत सी सीमाएँ हैं।

स्वच्छंद अभिव्यक्ति के मायने

डिक कोस्टलो के अनुसार, "The Internet destroyed most of the barriers to publicatian. The cost of being a publisher dropped to almost zero with two interesting immediate results anybody can publish, and more importantly, you can publish whatever you want." अपनी तबीयत के हिसाब से कुछ भी प्रकाशित करने की आजादी ब्लॉग की मूलभूत अवधारणा के लिहाज से उसकी बड़ी मजबूती है। किंतु साहित्य के बरक्स देखेंगे तो यही उसकी कमजोरी बन जाती है। यहाँ प्रकाशित रचना किसी दूसरे व्यक्ति, और वह भी विशेषज्ञ स्तर के व्यक्ति, के हाथ से नहीं गुजरती। साहित्यिक गुणवत्ता का तटस्थ निर्धारण नहीं हुए बिना ही वह प्रकाशित होती है। उसे भाषा–सौंदर्य, त्रुटिहीनता, तथ्यात्मकता, शैली, प्रामाणिकता, मौलिकता, काव्यगत अनुशासन जैसे पैमानों पर कसने की व्यवस्था नहीं है। हर ब्लॉगर रचनात्मक हो, यह आवश्यक नहीं लेकिन साहित्य के लिए वह आवश्यक है। यहाँ 'आज तबीयत नासाज है' से लेकर 'लखनऊ में अच्छी बेडमी कहाँ मिलेगी' जैसे विषयों पर भी पोस्ट लिख सकते हैं और वह भी लिखने का मन न हो तो कहीं से कॉपी–पेस्ट कर सकते हैं। कुछ बहुत अच्छी साहित्यिक परियोजनाएँ, कुछ बहुत अच्छे रचनाकर्मी, और उच्चस्तरीय ब्लॉग भी मौजूद हैं, इसमें दोराय नहीं है। लेकिन कहीं कोई सीमा भी तो नहीं है। ब्लॉगिंग एक स्वांत: सुखाय अभिव्यक्ति, रचनात्मकता और संचार का साधन है। वह पत्रकारिता तो है किंतु अनौपचारिक किस्म की, अप्रमाणित पत्रकारिता। वह साहित्य भी हो सकता है, किंतु छिन्न–भिन्न, असंगठित, अप–रिमार्जित और स्वच्छंद जिसमें से 'सबस्टेंस' ढूँढने के लिए उसे काफी छानने की जरूरत है।

हिंदी ब्लॉगिंग के भीतर और बाहर एक सवाल बार-बार उठाया जाता है कि ब्लॉग लेखन साहित्य है? इसी से जुड़ा एक अन्य प्रश्न भी चर्चा में रहता है कि क्या हिंदी ब्लॉगिंग ने हिंदी साहित्य में कितना योगदान दिया है। अलग-अलग मंच पर इसका अलग-अलग उत्तर मिलेगा। यदि ब्लॉगरों की संगोष्ठी में पूछा जाए तो इस बात पर लगभग सर्वानुमति दिखाई देगी कि हिंदी ब्लॉगिंग यकीनन साहित्य है और उसने साहित्य को बहुत समृद्ध बनाया है। किंतु साहित्यकारों के मंच पर उठने पर इसी प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होगा।

एक अनावश्यक बेताबी

एक बात जो मुझे उलझन में डालती है, वह है हम हिंदी ब्लॉगरों के बीच स्वयं को साहित्य–सर्जक कहलाने की आकांक्षा। यह आकांक्षा अन्य भाषाओं के ब्लॉगरों में दिखाई नहीं देती। हाँ, वे इस माध्यम को साहित्य तथा पत्रकारिता में 'योगदान' देने वाला, उसकी विविधता में हाथ बँटानेवाला माध्यम अवश्य मानते हैं। हिंदी में इस मुद्दे पर एक अनावश्यक छटपटाहट दिखाई देती है। उदाहरण के लिए इन टिप्पणियों को देखिए—

अत्यंत दुख के साथ यह लिखना पड़ रहा है कि ब्लॉग पर उपलब्ध साहित्य की सुधबुध लेनेवाला कोई नहीं है। इस पर उपलब्ध साहित्य को हिंदी में कोई तवज्जो भी नहीं दी जाती है। पत्र–पत्रिकाओं में उपलब्ध साहित्य की अपेक्षा इसे उपेक्षा भाव से ही देखा जाता है। इसे हल्का–फुल्का, चलताऊ व दोयम दर्जे का मानकर इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। ब्लॉग के साहित्य लेखक को तो कोई साहित्यकार मानने को भी तैयार ही नहीं है। जबकि वह बिना किसी विवाद, गुट या विमर्श में पड़े लगातार सृजन कर रहा है।

•ब्लॉग पर अन्य विधाओं में जितनी भी रचनाएँ हैं, भले ही वह कम हों पर उच्चकोटि की हैं। इन्हें किसी भी तरह से दोयम दर्जे की रचनाएँ नहीं सिद्ध किया जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि ब्लॉग पर उपलब्ध साहित्य को भी गंभीर व विचार-योग्य साहित्य माना जाए। आलोचक, समीक्षक इन विभिन्न ब्लॉग पर उपलब्ध साहित्य पर विचार कर अपनी महत्त्वपूर्ण राय दें।

•अगर देखा जाए तो सभी पत्रिकाएँ भी तो श्रेष्ठ साहित्य लिए हुए नहीं होती फिर ब्लॉग तो बहुत **वस्तृरित** मंच है। आज नहीं तो कल साहित्य के पुरोधा इसे जान लेंगे। अभी शायद उन्हें कंप्यूटर का ज्ञान नहीं हैं।

यहाँ हमारे ब्लॉगर मित्र सही बिंदु को पकड़ने में चूक गए हैं। वास्तव में ब्लॉग है क्या? लॉरैल ने क्या खूब कहा है—Your blog is your unedited version of yourself. "हम न जाने क्यों उसे यह या वह बना देने पर आमादा हैं। सिमोन ड्यूमेंको लिखते हैं—Blogging is just writing-writing using a particularly efficient type of publishing technology. यह तो एक माध्यम है, विविधतापूर्ण माध्यम जिसका जो चाहे, जैसे चाहे, जिस उद्‌देश्य के लिए चाहे इस्तेमाल कर सकता है। हिंदी के सबसे सफल ब्लॉगों में से एक यशवंत सिंह का 'भड़ास' है जिसे आप साहित्य की श्रेणी में गिनना नहीं चाहेंगे। भारत में अंग्रेज़ी का सबसे सफल ब्लॉग अमित अग्रवाल का 'डिजिटल इन्स्पिरेशन' माना जाता है जो पुन: साहित्य से दूर-दूर का भी रिश्ता नहीं रखता। वे इस माध्यम का सकारात्मक दोहन करने में सफल रहे हैं, साहित्यिकता की बहस में उलझते तो शायद वे यहाँ तक नहीं पहुँचते।

कुछ समय पहले वरिष्ठ साहित्यकार और संपादक राजेंद्र यादव ने कहीं टिप्पणी की थी कि ब्लॉग पर उपलब्ध साहित्य दोयम दर्जे का है। इसने ब्लॉग विश्व में उबाल ला दिया। हर टिप्पणी पर भावनात्मक प्रतिक्रिया की आवश्यकता नहीं है। ब्लॉग तो एक लोकतांत्रिक दुनिया है, जिसमें हर विचार का स्वागत होना चाहिए, उसे समझने का प्रयास होना चाहिए। जरा सोचिए, भले ही ब्लॉगिंग का एक हिस्सा साहित्यिक रचनाओं के प्रति समर्पित है, लेकिन क्या उस पर श्रेष्ठ हिंदी साहित्य उपलब्ध है? ब्लॉग विश्व में सक्रिय साहित्यकारों की संख्या आज भी बहुत सीमित है (यहाँ कविता कोश, अभिव्यक्ति-अनुभूति जैसी वेबसाइटों पर प्रकाशित सामग्री को न गिना जाए क्योंकि वे 'ब्लॉग' नहीं हैं)। इस लिहाज से, ब्लॉगिंग हिंदी साहित्य की एक छोटी सी बानगी मात्र उपलब्ध करा सकती है। जो साहित्यकार यहाँ सक्रिय हैं, वे भी कौन से अपनी सभी रचनाओं या उत्कृष्ट रचनाओं को ब्लॉग पर उपलब्ध कराते हैं? नहीं, क्योंकि इस माध्यम पर जिस तरह की 'कॉपी-पेस्ट' अराजकता व्याप्त है, वह अपनी बौद्धिक संपदा की रक्षा के साहित्यकार के अधिकार तथा चिंता में फिट नहीं बैठती। प्राय: उन्हीं रचनाओं को ब्लॉग पर उपलब्ध कराया जाता है जो या तो पारंपरिक माध्यमों में इस्तेमाल की जा चुकी हैं, या फिर जिनके छपने की संभावना नहीं है। सिर्फ यही वे रचनाएँ हैं जिन्हें 'उठा' लिए जाने और धृष्टता के साथ अपने नाम के साथ या बिना नाम किसी अन्य ब्लॉग या प्रकाशन में शामिल कर लिए जाने पर उन्हें अफसोस नहीं होगा। ब्लॉग पर सक्रिय बने रहने की आकांक्षा सबकी है, किंतु अपने साहित्यिक तथा कारोबारी सरोकारों के साथ समझौता किए बिना। परिणाम? हिंदी का सर्वश्रेष्ठ साहित्य ब्लॉग पर नहीं आता, आती है तो बस उसकी छोटी सी बानगी। बाकी साहित्य आज भी किताबों और पत्रिकाओं तक सीमित है और काफी समय तक रहने वाला है।

माध्यम और भी हैं

पत्रकारिता को देखिए। उसका इतिहास कई सौ साल पुराना है। पत्र-पत्रिकाओं में भी साहित्यिक सामग्री—कहानी, कविता, उपन्यास अंश, समीक्षा, व्यंग्य, साक्षात्कार, निबंध आदि—बहुतायत से प्रकाशित होती हैं। किंतु पत्रकारिता की मूल प्रकृति साहित्य नहीं है। कहा भी गया है कि यह जल्दी में लिखा गया साहित्य है। पत्रकारिता को 'साहित्य' का दर्जा कभी नहीं मिला और न ही कभी मिलने की संभावना है। किंतु पत्रकारिता वह दर्जा पाने के लिए बेचैन भी नहीं है, न ही ऐसा दर्जा न मिलने पर व्यथित या निराश है। वह ऐसा दावा ही नहीं करती। तब ब्लॉगिंग स्वयं के 'साहित्य' होने या न होने को लेकर इतनी उत्कट क्यों हो? वह क्यों अपनी निजी, अद्वितीय पहचान खोकर दूसरी पहचान ओढ़ लेने को आतुर है, जिसकी कोई आवश्यकता

ही नहीं है? ब्लॉगिंग साहित्य नहीं है और न ही उसे 'साहित्य' कहलाने की जरूरत है। क्योंकि ब्लॉगिंग अपने आप में कोई कमजोर या महत्त्वहीन चीज नहीं है। वह हमारी सामूहिक अभिव्यक्ति, सामाजिकता, घटनाओं, संवेदनाओं और रचनाओं का वैश्विक समुच्चय है। साहित्य के पास यह सब कहाँ? लेकिन जो साहित्य के पास है, वह ब्लॉगिंग के पास नहीं है।

ब्लॉगिंग को साहित्य बनने की जरूरत भी नहीं है। अगर वह 'साहित्य' में घुसी तो एक 'अनवांटेड मेहमान' से ज्यादा कुछ नहीं बन पाएगी, क्योंकि साहित्य की दुनिया तो पहले ही खेमेबंदियों, विवादों, गुरु-शिष्य परंपराओं, ईगो-क्लेशेज और किस्म-किस्म की अनिर्धारित बहसों जैसे विभाजनों में बँटी हुई है। उस कोलाहल को कुछ और बढ़ाने की आवश्यकता ही क्या है! ब्लॉग को ब्लॉग ही रहने दो कोई नाम न दो!

हम ब्लॉगर अपने इस माध्यम का भरपूर इस्तेमाल हिंदी की समग्र संपदा के विकास और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए करें, यही क्या कम है? अपने दैनिक जीवन से एक मिसाल देखिए—विज्ञान में गेहूँ को घास की श्रेणी में गिना जाता है। रोजेट के मशहूर थिसॉरस में वह घास की सूची में ही आता है। उसका वैज्ञानिक आधार हैं। अब गेहूँ उत्पादक इस बात को लेकर भिड़ जाएँ कि हमें अनाज की श्रेणी में क्यों नहीं डाला गया, तो वह अनावश्यक है। बेहतर हो कि वे इस बात को लेकर अधिक चिंतित तथा उत्सुक हों कि गेहूँ का उत्पादन कैसे बढ़े, उसकी गुणवत्ता में कैसे सुधार हो या दूसरे इलाकों में गेहूँ को लेकर किस-किस तरह के प्रयोग हो रहे हैं। हम ब्लॉगर भी कुछ-कुछ इसी तरह से क्यों नहीं सोचते? हिंदी ब्लॉगिंग में यह आम प्रवृत्ति है कि हम उसे बढ़ा-चढ़ाकर देखते तथा पेश करते हैं। उसकी मौजूदा दशा को लेकर प्रमुदित हैं।

विधा क्यों नहीं बनी हिंदी ब्लॉगिंग

सन् 2005 से हिंदी ब्लॉगिंग में अपनी सक्रियता के नाते मैंने भी अनेक अवसरों पर कहा है कि ब्लॉगिंग साहित्य की एक स्वतंत्र विधा बन सकती है। किंतु आलोक कुमार रचित पहले हिंदी ब्लॉग के बाद के आठ सालों में हम उसे 'विधा' बनाने में नाकाम रहे हैं। वह अभिव्यक्ति का जरिया बनी, विचार-विमर्श का माध्यम बनी, अपनी पहचान बनाने का मंच बनी और यहाँ तक कि उसने हिंदी भाषा की तकनीकी प्रगति को भी गति दी, लेकिन साहित्यिक विधा वह नहीं बन सकी। वह बन जरूर सकती थी, यदि इसके लिए गंभीरता से प्रयास किए जाते। यदि हम अधिक-से-अधिक हिंदी साहित्यकारों को इस ओर आकर्षित कर पाते। यदि हम हिंदी ब्लॉगिंग की विषयवस्तु, लेखन शैली, भाषा आदि पर संजीदगी के साथ कुछ वर्ष कार्य करते। यह कार्य सिर्फ ब्लॉगरों के स्तर पर होनेवाला नहीं था। यह हिंदी के साहित्यकारों, विद्वानों, भाषाशास्त्रियों आदि की सक्रिय भागीदारी से ही हो सकता था, भले ही वह अनौपचारिक किस्म की भागीदारी होती। किंतु हम एक विधा के रूप में उसके विकास की अपेक्षा अन्य दिशाओं में अधिक सक्रिय रहे। हालाँकि यह सब करने पर भी संभवत: प्रश्न बने ही रहते क्योंकि ब्लॉगिंग तो अभिव्यक्ति को बंधनों से मुक्त करनेवाला माध्यम है, वह न जाने साहित्यिक विधा जैसे बँधन में बंधने को तैयार होती या नहीं।

ब्लॉगिंग 'विधा' बन सकती थी, किंतु वह 'माध्यम' भर बन पाई। अपनी रचनाधर्मिता को दूसरों तक पहुँचाने का माध्यम। वैसे ही, जैसे कोई भी अन्य माध्यम है या हो सकता है, जैसे टेलीविजन, सिनेमा या नुक्कड़ नाटक। साहित्य से इन माध्यमों के लिए अंगीकृत की गई रचनाओं की बात छोड़ दें तो जिन रचनाओं को खास तौर से इन माध्यमों के लिए लिखा गया, उनमें से कितनी ऐसी हैं जो उत्कृष्ट हिंदी साहित्य की श्रेणी में गिनी गई हैं। उँगलियों पर गिनी जाने लायक। साहित्यिक विधाएँ ये भी नहीं हैं क्योंकि उनके लेखन की कोई स्पष्ट दिशा नहीं है, साहित्यिकता के मापदंडों पर वे पिछड़ जाती हैं। एक माध्यम के रूप में हमने ब्लॉग पर वही सब कुछ डाला, जो शायद किसी अन्य माध्यम में डालते, जैसे—कविता, कहानी, लेख, व्यंग्य, यात्रा वृत्तांत, समीक्षा, बाल साहित्य आदि-आदि। हमारे ब्लॉग साहित्य में भला अलग क्या है? उस 'अलग' का अलग से विकास किए जाने की जरूरत थी। पत्र-पत्रिकाओं में छपनेवाली रचना को ज्यों की त्यों ब्लॉग पर डालकर हमने ऐसा कोई विशेष कार्य नहीं किया जिससे यह माना जाए कि ब्लॉग एक स्वतंत्र विधा बन गया है। यह सिर्फ एक माध्यम बना, एक अलग पाठक वर्ग तक पहुँचने का।

दूसरी ओर रेडियो नाटक (रेडियो) और रिपोर्ताज (पत्रकारिता)

आदि को देखिए जिनका विधाओं के रूप में पर्याप्त विकास हुआ है। ब्लॉगिंग की ही तरह यह सभी पारंपरिक (पत्रिका, पुस्तक) से इतर माध्यम थे किंतु वे साहित्य के साथ तारतम्य बनाने में सफल रहे।

सौभाग्य से सोशल नेटवर्किंग और माइक्रोब्लॉगिंग के दबावों के बावजूद ब्लॉगिंग को एक साहित्यिक विधा के रूप में विकसित करने के लिए संभावना पूरी तरह खत्म नहीं हुई है। शुरुआत आज भी की जा सकती है। इसके लिए सबसे पहली जरूरत है ब्लॉगिंग के माध्यम की विलक्षण प्रकृति को समझने की, जो दूसरे माध्यमों से अलग है। इंटरनेट के पाठक सामान्य साहित्यिक पाठकों से अलग हैं। उनकी पृष्ठभूमि तथा भौगोलिक स्थिति भी अलग है। साहित्य के पारंपरिक पाठक के विपरीत वह स्वभाव से धैर्यवान नहीं है। इतना ही नहीं, इंटरनेट के माध्यम की शक्तियाँ भी दूसरे माध्यमों की तुलना में भिन्न एवं अधिक हैं। मिसाल के तौर पर एक ही पृष्ठ पर विभिन्न प्रकार की विषयवस्तु को समाहित करने, एकाधिक भाषाओं का प्रयोग संभव बनाने, पाठक के साथ सीधे संवाद करने और रचनाओं को निरंतर परिमार्जित करने की सरलता। इंटरनेट आधारित सामग्री के संदर्भ में दो महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान रखना जरूरी है—पहली, एक बार पोस्ट करने के बाद उसे इंटरनेट से पूरी तरह हटा पाना लगभग असंभव है क्योंकि इस बीच उसे किसी-न-किसी व्यक्ति द्वारा उसे सहेज लिए जाने, किसी अन्य पृष्ठ पर डाल दिए जाने, आरएसएस फीड जैसे माध्यमों से लोगों तक पहुँच जाने तथा सर्च इंजनों द्वारा कैश कर लिए जाने की संभावनाएँ बहुत अधिक हैं। नेट पर इस सामग्री की मौजूदगी लगभग स्थायी है और आने वाले अनेक वर्षों बाद भी वह मौजूद रहेगी। लेखन के दौरान यह तथ्य ध्यान में रखा जाना जरूरी है। दूसरी जरूरी बात जिसका ध्यान रखा जाना चाहिए, वह है एक ही सामग्री का अनेक इंटरनेटीय ठिकानों पर, संचार के अनेक माध्यमों तक पहुँच जाना। बेहतर है, ब्लॉग लेखन इन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर हो। इंटरनेट की अपनी भाषा, कलेवर, संस्कार और सरोकार हैं जिनके साथ तालमेल बिठाना भी उतना ही जरूरी है।

ब्लॉगिंग 'विधा' बन सकती थी, किंतु वह 'माध्यम' भर बन पाई। अपनी रचनाधर्मिता को दूसरों तक पहुँचाने का माध्यम। वैसे ही, जैसे कोई भी अन्य माध्यम है या हो सकता है, जैसे टेलीविजन, सिनेमा या नुक्कड़ नाटक। साहित्य से इन माध्यमों के लिए अंगीकृत की गई रचनाओं की बात छोड़ दें तो जिन रचनाओं को खास तौर से इन माध्यमों के लिए लिखा गया, उनमें से कितनी ऐसी हैं जो उत्कृष्ट हिंदी साहित्य की श्रेणी में गिनी गई हैं। उँगलियों पर गिनी जाने लायक। साहित्यिक विधाएँ ये भी नहीं हैं क्योंकि उनके लेखन की कोई स्पष्ट दिशा नहीं है, साहित्यिकता के मापदंडों पर वे पिछड़ जाती हैं।

न हो अवास्तविक आकलन

ब्लॉगिंग का जिक्र करते समय हम अकसर उसका घालमेल इंटरनेट, तकनीक, हिंदी सॉफ्टवेयरों और पोर्टलों तथा वेबसाइटों के साथ कर लेते हैं। उन सबकी सफलता को ब्लॉगिंग की सफलता करार देते हैं। जबकि ब्लॉगिंग एक स्वतंत्र तत्त्व है। ये उपलब्धियाँ ब्लॉगिंग की वजह से नहीं हैं। उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, उनकी अपनी अलग विकास यात्रा है। हाल ही में एक पुस्तक के प्राक्कथन में पढ़ा कि लेखक ने रोमन में टाइप करते हुए हिंदी में लिखने की सुविधा को ब्लॉगिंग की विशेषता के रूप में गिनाया था। यह सत्य नहीं है। ट्रांसलिटिरेशन तो एक तकनीकी सुविधा है, वह ब्लॉगिंग की ताकत नहीं है। उसे आप ईमेल से लेकर अपने दफ्तर के दस्तावेजों तक में इस्तेमाल कर सकते हैं। उसे हिंदी ब्लॉगिंग की विशेषता नहीं माना जा सकता। तकनीक की दुनिया एक समानांतर दुनिया है जिसमें ऐसी सुविधाओं का विकास एक अनंत प्रक्रिया है। पिछले साल हिंदी ब्लॉग जगत की उपलब्धियों के एक लोकप्रिय

आकलन पर नजर पड़ी जिसकी शुरुआत ही 'अभिव्यक्ति-अनुभूति', 'हिंदीनेस्ट', 'कविता कोश' आदि के जिक्र के साथ हुई थी। ये सब ब्लॉग कहाँ हैं? ये तो इंटरनेट पोर्टल और साहित्यिक वेबसाइटें हैं, जिनकी एक अलग श्रेणी और पहचान है। उन्हें ब्लॉगों में कैसे गिना जा सकता है? ब्लॉग तो वे हैं जो आपकी निजी वेब डायरी के रूप में दूसरों तक पहुँच रहे हैं।

हिंदी विकीपीडिया, वेबकास्टिंग, विभिन्न हिंदी पोर्टल, साहित्यिक पत्रिकाओं के इंटरनेट संस्करण आदि भी ब्लॉग नहीं हैं। ब्लॉगिंग के आकलन के समय ध्यान रखना चाहिए कि इंटरनेट पर मौजूद हर हिंदी सुविधा या हिंदीगत ठिकाना 'ब्लॉग' नहीं है। 'न्यू मीडिया' शब्द का इस्तेमाल भी ब्लॉग के संदर्भ में धड़ल्ले से किया जा रहा है। 'न्यू मीडिया' सिर्फ ब्लॉग नहीं है। वह तो हर डिजिटल युक्ति में दिखने वाला हर किस्म का कन्टेंट है। वेबसाइटें, पोर्टल, ई-कॉमर्स, ई-गवर्नेंस, सी.डी., डी.वी.डी., आई-पॉड पर चलनेवाले गाने, यू-ट्यूब के वीडियो और यहाँ तक कि ईमेल भी 'न्यू मीडिया' के दायरे में आती है। ब्लॉग तो उसका बेहद छोटा हिस्सा है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी अवधारणाओं के संदर्भ में जागरूकता और बढ़ाने की जरुरत है।

जैसे अभिव्यक्ति और सामाजिकता की इस स्वत:स्फूर्त धारा को आप न तो अनुशासित कर सकते हैं और न ही बलपूर्वक इस या उस दिशा में ले जा सकते हैं। क्योंकि यह अनौपचारिकता और आजादी ही इसकी ताकत है। ब्लॉग पर मौजूद खराब, कम गुणवत्ता की सामग्री भी इस माध्यम के लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी की उच्च्व कोटि की साहित्यिक या वैज्ञानिक सामग्री। क्योंकि यहाँ मुद्दा हर व्यक्ति को एक उपकरण मुहैया कराने का है। वैसे ही जैसे मोबाइल फोन या ईमेल है। हम यह कहाँ कहते हैं कि फलाँ व्यक्ति मोबाइल फोन पर गालियों का प्रयोग कर रहा था, उसे ऐसा करने से रोको नहीं तो मोबाइल तकनीक के साथ अन्याय होगा। लेकिन हम यदा-कदा इस तरह की चिंताएँ भी कर लेते हैं कि 'हिंदी ब्लॉगिंग में बहुत से अयोग्य व्यक्तियों का प्रवेश हो गया है। इससे बचने के लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि सुयोग्य लोग ही ब्लॉगिंग करें। 'या फिर 'अभिव्यक्ति की परम आजादी खतरनाक है और ब्लॉग लेखन का नियमन होना चाहिए'। जब विश्वव्यापी वेब का विकास करनेवाले टिम बर्नर्स ली और डिफेंस एडवांस रिसर्च प्रोजेक्ट्स एजेंसी (दारपा) ही वेब के प्रयोग को 'अनुशासित' या 'नियमित' नहीं कर पाए तो भला हम जैसे वेब के 'प्रयोक्ता' उसे कैसे काबू करेंगे?

महज आठ साल की छोटी सी अवधि में हिंदी ब्लॉगिंग ने संघर्ष, उत्कर्ष और ठहराव के तीन कालखंडों को जिया है। तीनों दौर के अलग-अलग इन्फ्लुएंसर, अलग-अलग चुनौतियाँ, अलग-अलग ज्वलंत मुद्दे, अलग-अलग किस्म की उपलब्धियाँ, सफलताएँ और उतनी ही अलग नाकामियाँ रही हैं। हममें से अधिकांश हिंदी ब्लॉगरों के लिए यह माध्यम एक वरदान के रूप में आया जिसने अनायास ही अभिव्यक्ति के ऐसे फ्लडगेट्स खोल दिए जिनकी प्रतीक्षा रचनाकर्म में जरा सी भी दिलचस्पी रखनेवाले हर एक हिंदी भाषी को थी। इसीलिए ज्यादातर ब्लॉगरों ने इस माध्यम को मुग्धता के भाव से देखा है, एक किस्म की रूमानियत, आत्मीयता और यहाँ तक कि पजेसिवनेस के साथ लिया है।

जिस माध्यम को हम देखते, पढ़ते, गुनते और जीते रहे हैं तथा जिसने हमें पहचान दिलाई है, उसके प्रति समर्पण और मोहभाव अस्वाभाविक नहीं है। लेकिन यह मुग्धता और पजेसिवनेस हमें एकांगी न बना दे, इस बात को लेकर सतर्क रहने की जरूरत है। हिंदी ब्लॉगिंग की वास्तविक समालोचना तभी संभव है जब उसे रिटोरिक से मुक्त होकर संतुलित दृष्टिकोण के साथ देखा जाए। उस पर न सिर्फ समग्रतापूर्ण दृष्टि डाली जाए, बल्कि अन्य भाषाओं के साथ तुलनात्मक नजरिए से भी देखा जाए।

(लेखक हिंदी समाचार पोर्टल प्रभासाक्षी.कॉम के समूह संपादक, सन् 2005 से सक्रिय हिंदी ब्लॉगर तथा अनेक हिंदी सॉफ्टवेयरों तथा वेब सेवाओं के विकासकर्ता हैं)।

504, Park Royal,
GH-80, Sector-56,
Gurgaon (Haryana)
Pin-122011
Phone: 9868235423

□

वेब पत्रकारिता : कल आज और कल

✍ पूर्णिमा वर्मन

वेब का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। सन् 1969 में एडवांस रिसर्च प्रोजेक्ट एजेंसी ने संयुक्त राज्य अमेरिका के चार विश्वविद्यालयों के संगणकों को आपस में जोड़कर अंतरजाल की शुरूवात की थी। काम धीरे-धीरे आगे बढ़ा और सन् 1972 में यू.एस. में अर्पानेट नामक इंटरनेट जैसी एक व्यवस्था पर काम प्रारंभ हुआ। इसी समय एक कंप्यूटर से दूसरे कंप्यूटर पर पहला ईमेल भेजा गया। पर यह व्यवस्था प्रयोग में सन् 1980 में ही आ पाई जब अमरीकी विश्वविद्यालयों को इससे जोड़ने का महत्त्वपूर्ण काम हुआ।

- पूर्णिमा वर्मन का जन्म 27 जून, 1955 में हुआ।
- संस्कृत में इन्हें स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त है तथा स्वातंत्र्योत्तर संस्कृत साहित्य पर शोध किया है, इसके साथ ही पत्रकारिता तथा वेब डिजाइनिंग में डिप्लोमा।
- पत्रकारिता जीवन का पहला लगाव था, जो आज तक साथ है। खाली समय में इनकी जलरंग, रंगमंच और स्वाध्याय से दोस्ती है।
- पिछले बीस-पच्चीस सालों में लेखन, संपादन, स्वतंत्र पत्रकारिता, अध्यापन, ग्राफिक डिजाइनिंग और जाल प्रकाशन के अनेक रास्तों से गुजरते हुए फिलहाल संयुक्त अरब के शारजाह नगर में साहित्यिक जाल पत्रिकाओं 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' के संपादन व कलाकर्म में व्यस्त हैं। इनकी दो कविता संग्रह 'पूर्वा' और 'वक्त के साथ' प्रकाशित हो चुके हैं।

हिंदी वेब पत्रकारिता का इतिहास

आम आदमी के पास इंटरनेट आते-आते 1990 का दशक आ गया। सन् 1992 में वर्ल्ड वाइड वेब के जारी होने के बाद सन् 1995 तक विश्व में यूजीनेट पर तकरीबन ढाई हजार समाचार समूह छा चुके थे। सन् 1995 में चेन्नई से प्रकाशित अंग्रेज़ी समाचार-पत्र 'हिंदू' ने अंतरजाल संस्करण आरंभ किया। इसी के साथ देशी वेब पत्रकारिता ने जोर पकड़ा और सन् 1996 में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने अपना अंतरजाल संस्करण आरंभ किया। हिंदी ने इस बीच कहीं-न-कहीं वेब पर दखल देना शुरू कर दिया था लेकिन मानक फॉन्ट के अभाव के चलते जो भी काम हुआ वह दमदार नहीं रहा। मानक यूनिकोड फॉन्ट का आरंभ हिंदी में सन् 2003 से हुआ हालाँकि इसका प्रचलन सन् 2004 से पहले नहीं हो सका। हिंदी पत्रकारिता इसके पहले ही वेब पर अलग-अलग व्यक्तिगत फॉन्टों के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज कर चुकी थी। 90 के दशक में जिन प्रमुख हिंदी दैनिकों ने अंतरजाल संस्करण निकालकर वेब पत्रकारिता में घुसपैठ की उनमें सन् 1997 में दैनिक जागरण ने जागरण डॉटकॉम, सन् 1998 में अमर उजाला ने अमर उजाला डॉटकॉम तथा दैनिक भास्कर ने भास्कर डॉटकॉम, सन् 1999 में वेब दुनिया डॉटकॉम प्रमुख हैं। सन् 1996 में मेरी पत्रिका अभिव्यक्ति ने भी जियोसिटीज पर अभिव्यक्ति हिंदी डॉटआर्ग (http//www.abhivyakti-hindi.org) के नाम से एक छोटी सी अनियमित शुरुआत की थी जो सन् 2000 में जाकर नियमित हो पाई। आज यह सभी पत्र-पत्रिकाएँ अपने फॉन्ट बदलकर यूनिकोड की ओर आ चुके हैं।

हिंदी वेब पत्रकारिता के सामने विकास की चुनौतियाँ

एक समय था जब किसी ब्राउजार पर हिंदी सपोर्ट नहीं था। उस समय यह देखना पड़ता था कि कौन सा फॉन्ट वेब पर किस ब्राउजार में ठीक दिखाई देगा। अलग-अलग समाचार-पत्र अलग-अलग फॉन्टों में अपने-अपने साइट प्रकाशित करते थे। उदाहरण के लिए अभिव्यक्ति की बात करें तो पहले हम अभिव्यक्ति नेटस्केप में पढ़ने के लिए बनाते

थे। क्योंकि उसमें सुशा फॉन्ट ठीक से दिखाई देते थे। इंटरनेट एक्सप्लोरर में मात्राएँ अक्षरों से अलग हो जाती थीं। फिर अचानक नेटस्केप बंद हो गया। उस दौर में कुछ हिंदी पत्रिकाएँ या तो बंद हो गईं या जहाँ की तहाँ रुक गईं। जिन्हें आगे बढ़ना था उन्होंने हिंदी को इंटरनेट एक्सप्लोरर में ठीक से दिखाने के लिए ई.ओ.टी. फाइलों का प्रयोग शुरू किया और फॉन्ट को डायनेमिक बनाया। सन् 2006 में इंटरनेट एक्सप्लोरर का छठा संस्करण आया तो इस विधि ने काम करना बंद कर दिया। तब तक यूनिकोड भी आ चुका था तो किसी तकनीकी झंझट में पड़े बिना हमने 2007 से यूनिकोड को ही अपना लिया। वेब प्रकाशन की तकनीक तेजी से बदलती रहती है। इस कारण कुछ दिक्कतें हमेशा बनी ही रहती हैं, उदाहरण के लिए लिनक्स प्रेमियों में फायर फॉक्स ज्यादा लोकप्रिय है पर उसमें फ्रंटपेज या कुछ दूसरे कार्यक्रमों में बने हिंदी जालघर ठीक से प्रदर्शित नहीं होते हैं। शायद एक दिन उसका हल निकले तो कोई और नई समस्या उठ खड़ी हो, इन सब बातों के लिए हिंदी जाननेवालों को तकनीक, भाषा और जिस विषय पर जालघर का निर्माण किया जा रहा है, सभी बातों का अच्छा ज्ञान जरूरी है क्योंकि इसके अभाव में वेब पर हिंदी का विकास हो पाना मुश्किल है।

वेब के विकास के साथ पिछले कुछ वर्षों में समाचारों और जानकारी के स्रोत जितने बढ़े हैं, विश्वसनीयता उतनी ही कम हुई है। वेब पर जानकारी भरी पड़ी हैं पर उसमें क्या विश्वसनीय है और कितना इसका अंदाजा अनुभव और स्रोत के आधार पर लगाया जा सकता है। वेब सूचनाओं और आँकड़ों का खजाना है लेकिन जो आँकड़े हम अपने लेख में प्रयोग करने जा रहे हैं वे कितने पुराने हैं, किस आधार पर एकत्र किए गए हैं और उनकी गंभीरता कितनी है इसकी परीक्षा करना जरूरी है।

वेब पर जानकारी और साहित्य

वेब के विकास के साथ पिछले कुछ वर्षों में समाचारों और जानकारी के स्रोत जितने बढ़े हैं, विश्वसनीयता उतनी ही कम हुई है। वेब पर जानकारी भरी पड़ी हैं पर उसमें क्या विश्वसनीय है और कितना इसका अंदाजा अनुभव और स्रोत के आधार पर लगाया जा सकता है। वेब सूचनाओं और आँकड़ों का खजाना है लेकिन जो आँकड़े हम अपने लेख में प्रयोग करने जा रहे हैं वे कितने पुराने हैं, किस आधार पर एकत्र किए गए हैं और उनकी गंभीरता कितनी है इसकी परीक्षा करना जरूरी है।

जहाँ तक वेब साहित्य का सवाल है रचनाओं का आकार पहले से छोटा हुआ है पर रचनाओं में अब घनत्व अधिक है। कहानियाँ भी छोटी हुई हैं और लघुकथाओं की लोकप्रियता बढ़ी है। कम-से-कम शब्दों में अधिक कहने की परंपरा में पहले से भी ज्यादा कसाव आया है। यानी साहित्य और पत्रकारिता दोनों ही समय के साथ चुस्त हो रहे हैं।

आम आदमी को लाभ

हिंदी वेब पत्रकारिता विकास तो कर रही है लेकिन कई समस्याओं के कारण यह आम नहीं हो पा रही है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इसके लिए एक संगणक और एक अंतरजाल जरूरी होता है जिस पर अच्छी-खासी लागत आती है। हिंदीभाषी जनसंख्या का तीन चौथाई हिस्सा गाँवों में रहता है। शहरी बाजार की तुलना में ग्रामीण बाजार बहुत बड़ा है, लेकिन गाँवों के समुचित विकास में कमी के कारण हिंदी पाठकों को इंटरनेट का लाभ कम ही मिल सका है। आर्थिक संकट के साथ-साथ भारत में बिजली की गंभीर समस्या के कारण साइबर कैफे ठीक तरह से कार्य नहीं कर पाते हैं और लोग इनका समुचित फायदा नहीं उठा पाते।

जिन लोगों को हिंदी वेब का सबसे अधिक लाभ मिला है उनमें विदेशों में रहनेवाले हिंदी रचनाकार और हिंदी पाठक प्रमुख हैं। विदेशों में बसे विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों को भी इसका

लाभ मिला है। आज अभिव्यक्ति-अनुभूति से लगभग 250 प्रवासी रचनाकार जुड़े हुए हैं और मध्यवर्गीय कंप्यूटर प्रयोगकर्ताओं में शौक से पढ़े जाते हैं। प्रवासी साहित्य का एक मंच पर आना वेब पत्रिका अभिव्यक्ति के द्वारा ही संभव हो सका था। बाद में भारतीय साहित्यिक पत्रिकाओं ने अपने प्रवासी विशेषांक निकाले। ऐसा नहीं कि रचनाकार पहले काम नहीं कर रहे थे या अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठित नहीं थे, लेकिन अभिव्यक्ति के द्वारा वे जन-जन में एक लोकप्रिय नाम बने। अन्य पत्र-पत्रिकाएँ भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। हर प्रवासी रचनाकार भी वेब से जुड़ा नहीं है लेकिन धीरे-धीरे दूर तक पहुँचने और जन-जन को जोड़ने का काम वेब कर रहा है।

वेब पत्रकारिता और चिट्ठाकारिता

चिट्ठाकारिता को पत्रकारिता कहना चाहिए या नहीं इस विषय में मतभेद है किंतु अनेक समाचार आधारित चिट्ठे हैं जो हिंदी में काफी लोकप्रिय रहे हैं। आज हिंदी चिट्ठाकारिता में जितनी तेजी से काम हो रहा है वह प्रशंसा के योग्य है। हिंदी साहित्यकारों का एक अच्छा समूह वेब पर नियमित रूप से क्रियाशील है। बहुत बेहतरीन साहित्य, कविता, आलेख, अनुवाद वेब पर आ रहे हैं। समीक्षा और आलोचना भी इनमें देखने को मिलती है। राजनीति भी खूब है, डायरियाँ लिखी जा रही हैं। कलाकार और संगीतकार भी चिट्ठों पर हैं। कविताओं की तो बहार है ही। यात्रा संस्मरण आदि भी है। कुल मिलाकर चिट्ठों में काफी विविधता और पठनीय सामग्री है। जो चिट्ठों को नहीं पढ़ पाता वह कुछ-न-कुछ खो रहा है। तभी तो भारत के हर पत्र पत्रिका में चिट्ठों पर आधारित स्थायी स्तंभ बन गए है, जो चिट्ठों की सामग्री को शान से प्रकाशित करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि वेब पर कूड़ा बहुत है और पठनीयता कम लेकिन यही बात मुद्रित साहित्य के विषय में भी कही जा सकती हैं। सभी जगह अच्छी चीजें कम ही होती हैं। इस दृष्टि से देखें तो चिट्ठाकारिता हिंदी वेब पत्रकारिता की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

वेब पत्रकारिता का महत्त्व

वेब मीडिया में कुछ ऐसा विशेष भी है जो इसे रेडियो, टी.वी. और मुद्रित मीडिया से अलग बनाता है। वेब मीडिया ज्यादा व्यापक, तकनीकी दृष्टि से अधिक संपन्न, सुविधाजनक, संरक्षण की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है। यह आपको दुनिया के हर कोने तक पहुँचाता है, व्यापक पहचान देता है। आत्मीयता वहाँ भले ही न हो पर विचारों के प्रेषण की गति और क्षमता प्रिंट मीडिया की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक और सार्वकालिक होती है। अख़बार एक दिन में पुराना हो जाता है। दस दिन बाद कोई लेख ढूँढे तो शायद मिले ही नहीं लेकिन वेब पर सब कुछ सदा ताजा, सुलभ और सरल है। पुरालेख में जाएँ और कभी भी कुछ भी ढूँढ लें, एक क्लिक में हाजिर। इसके अतिरिक्ति वेब मीडिया में आवाज और चलचित्र (मूवी क्लिप) की भी संभावना है। जो मुद्रित मीडिया में नहीं है। जगह की सुविधा भी है, एक लैपटॉप पर आप जितनी जानकारी वेब मीडिया से ले सकते हैं वह बहुत बड़े पुस्तकालय में ही संभव है। जिप करने की सुविधा है यानी लघिमा शक्ति, साथ ही डाउनलोड यानी सब कुछ मुफ्त में आपका अपना। कस्बाई और छोटे शहरों में भी साइबर कैफे खुलने से अंतरजाल की पहुँच का विस्तार हुआ है। इसके साथ ही समाचार-पत्रों के स्थानीय संस्करण भी प्रकाशित होने लगे हैं। अब अमेरिका में रहनेवाले किसी व्यक्ति के लिए भारत के किसी छोटे शहर के समाचार को जान लेना बहुत आसान हो गया है। यह सब प्रिंट मीडिया में संभव नहीं है।

वेब पत्रकारिता का भविष्य

अक्सर लोग कहते हैं कि वेब और टी.वी. की लोकप्रियता के कारण आदमी द्वारा पुस्तकों और समाचार-पत्रों का पढ़ना बंद हो जाएगा लेकिन जहाँ तक चुनौती की बात है एक प्रकार के मीडिया को दूसरे प्रकार के मीडिया से कोई चुनौती नहीं होती है। उदाहरण के लिए पहले कवि सम्मेलन होते थे। फिर जब रेडियो पर कवि सम्मेलन होने लगे तो लोगों ने आशंका जताई कि जब मुफ्त में रेडियो कवि सम्मेलन कराएँगे तो मंच पर कविता कौन सुनेगा। पर यह आशंका सच साबित नहीं हुई। रेडियो से मंचीय कवि सम्मेलन बंद नहीं हुए बल्कि दोनों जगह कवि सम्मेलन की परंपरा का विकास हुआ। कुछ समय बाद कविताओं के कैसेट आए, टी.वी. का भी समय आया और आज तो यू ट्यूब पर कविताएँ मुफ्त में भी देखी-सुनी जा सकती हैं। पर इससे कोई एक मीडिया-प्रकार

बंद होने के कगार पर पहुँच जाए ऐसा नहीं है। किताब वेब पर मुफ्त मौजूद हो तो भी दूकान से कागज की किताब खरीदनेवाले खरीदते ही हैं। उसकी अपनी उपयोगिता और आनंद है जो कभी कम नहीं होंगे। कैमरा आ जाने के बाद भी चित्रकारों की कमी दुनिया में नहीं है। फोटो का अपना आनंद है, चित्रकार की बनाई लैंडस्केप या पोर्ट्रेट का अपना। इसी प्रकार संगीत के रेकार्ड भी बिकते हैं, रेडियो, टी.वी. कार्यक्रम भी चलते हैं और सामने बैठकर कार्यक्रमों को देखने-सुनने वालों की भी कमी दुनिया में नहीं है। समय के साथ अपना स्थान बनाता चलता है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं के मुफ्त वेब संस्करण उपलब्ध हैं पर इससे उनकी बिक्री पर कोई फर्क नहीं पड़ता है।

शायद कल एक दिन ऐसा भी आए कि आज जो पत्रिका कागज पर प्रकाशित होती है कल उसकी सी.डी. भी बिके या रेडियो पर भी प्रसारित हो और वेब पर भी। यह एक रोचक प्रयोग हो सकता है। इसे वह हर व्यक्ति कर सकता है जिसके पास या तो मजबूत टीम है या फिर कोई हरफनमौला व्यक्ति। साथ-साथ खर्च की व्यवस्था लिए पैसे कमाने का कौशल भी महत्त्वपूर्ण रहेगा। क्योंकि जिस तरह पत्रिकाओं में विज्ञापन सहज और सुंदर लगते वेब पर उस तरह नहीं लगते। विशेष रूप से इसलिए वे पढ़ने के प्रवाह को रोकते हैं और पृष्ठ को धीमा कर देते हैं। सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि बदलते समय के साथ हर प्रकार का मीडिया आपस में कितना संयोजन बैठा पाता है और किस दिशा में क्या और कैसी प्रगति होती है।

पत्रकारिता का साहित्य से घना संबंध रहता है। बहुत ही कम पत्र होंगे जो अपना साहित्यिक परिशिष्ट न प्रकाशित करते हों। मीडिया की शायद ही कोई विधा हो जिसमें तुलसी या कालिदास न हो। सारे गुज़रे हुए दौर आनेवाले समय में शामिल रहेंगे। कुछ चीज़ें हम भूल न जाएँ—महत्त्वपूर्ण तिथियाँ, घटनाएँ, उपलब्धियाँ आदि—इन सबको ठीक से सहेजने का काम पत्रकार का होता है। विशेषांकों, संग्रहों और संकलनों के जरिए न केवल अपने साहित्य का विकास होता है बल्कि भाषा और संस्कृति का भी संरक्षण होता है। इसलिए व्यवसाय के साथ उत्तरदायित्व, संवेदना के साथ नियंत्रण और तत्परता के साथ धैर्य पत्रकारिता के लिए बहुत आवश्यक हैं और हर समय में इनका मूल्य और महत्त्व समान बना रहेगा। □

स्त्री सहन-शक्ति की साक्षात् प्रतिमूर्ति, धैर्य का अवतार होती है।

—महात्मा गांधी

बुद्धिमानों की परीक्षा संकटकाल में होती है और शूरवीरों की संग्राम में।

—सोमदेव

विश्व में हिंदी : विविध आयाम

हंगरी में हिंदी : गतिविधियाँ और प्रेरणा के मूल स्रोत

✍ विजया सती

- दिल्ली विश्वविद्यालय की बी.ए. (ऑनर्स) और एम.ए. हिंदी परीक्षाओं में सर्वश्रेष्ठ छात्रा विजया सती सरस्वती पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार और प्रोफेसर सावित्री सिन्हा स्मृति स्वर्ण पदक से पुरस्कृत हो चुकी हैं।
- दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज में वे एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में भी कार्यरत दिल्ली विश्वविद्यालय के जीवन पर्यंत शिक्षण संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ लाइफ लॉन्ग लर्निंग में) ई-कंटेंट निर्माण योजना में एसोसिएट को-ऑर्डिनेटर के रूप में चयनित।
- वर्तमान में बुदापेस्ट, हंगरी के ऐते विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर।
- एक 'सहयोग' कविता-संकलन के अतिरिक्त वे दो शोध पुस्तकों का प्रकाशन।
- विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके आलेख और कविताएँ निरंतर प्रकाशित।

पूर्वी यूरोप के मध्य में कार्पाथ पर्वत शृंखलाओं के बीच स्थित हंगरी एक करोड़ की आबादी और तिरानबे हजार से अधिक वर्ग किलोमीटर के भौगौलिक विस्तारवाला देश है। इसकी राजधानी बुदापैश्त विश्व की लोकप्रिय पर्यटन नगरियों में से एक है। बुदापैश्त हंगरी की राजनीतिक, सांस्कृतिक और अकादमिक राजधानी भी कही जा सकती है। यहाँ कई शिक्षण संस्थाएँ और शोध संस्थान हैं। इन्हीं में से एक है—बहुत पुराना और प्रसिद्ध एत्वोश लोरंद विश्वविद्यालय, जिसे संक्षेप में ऐते विश्वविद्यालय कहते हैं। इस विश्वविद्यालय के प्रांगण में है भारोपीय अध्ययन विभाग, जो विश्व में हिंदी की उपस्थिति दर्ज कराने में अपनी सार्थक भूमिका निभा रहा है।

भारोपीय अध्ययन विभागः एक आकलन

भारोपीय अध्ययन विभाग कला संकाय के अंतर्गत आनेवाले सत्तर से अधिक विभागों में से एक है। इसका संबंध विश्वविद्यालय के 'एनशिएंट और क्लासिकल' भाषा संस्थान से है जिसमें विधिवत हिंदी पढ़ाई जाती है।

भारोपीय अध्ययन विभाग के कार्य का बड़ा भारत-विद्या अर्थात् इंडोलोजी से विनिर्मित है। सन् 1956 में पहली बार भारत-विद्या (इंडोलोजी) को विश्वविद्यालय के औपचारिक विषय के रूप में प्रस्तुत किया गया था। विभाग में आरंभिक कोर्स 'डिप्लोमा इन इंडोलोजी' था। मई 2004 में हंगरी यूरोपियन यूनियन का सदस्य बना। इसके बाद उच्च शिक्षा का पूर्ण ढाँचा फिर से बना। इस नए ढाँचे के तहत सन् 2006-07 के सत्र से विभाग में पूर्णकालिक बी.ए. इंडोलोजी का शिक्षण उपलब्ध है। दो माइनर कोर्स संस्कृति और हिंदी भी हैं। अभी वे छात्र भी विभाग से संबद्ध हैं, जो इस व्यवस्था से पहले चार वर्ष का डिप्लोमा कोर्स कर रहे थे। हर सेमेस्टर के अंत में लिखित और मौखिक परीक्षा होती है। पाठ्यक्रम के अंत में छात्र शोध-पत्र प्रस्तुत करते हैं। इस समय चार छात्र क्रमश : जैनेंद्र के त्यागपत्र, महादेवी वर्मा के गद्य, मन्नू भंडारी की कहानियों और मोहन राकेश की कहानियों में महिला-पात्र विषयों पर शोध-पत्र लिख रहे हैं। सन् 2009 से विभाग में एम.ए. इंडोलोजी की शुरूआत भी हो गई है। यह दो विकल्पों के साथ प्रस्तुत है : क्लासिकल इंडोलोजी अर्थात् संस्कृत और आधुनिक भारतीय अध्ययन अर्थात् हिंदी। विभाग के पुराने और नए दोनों ही कोर्स मुख्य रूप से छात्रों के लिए संस्कृत और हिंदी की भाषिक निपुणता तथा भाषावैज्ञानिक अभ्यास पर बल देते हैं, जो इस क्षेत्र

में उच्च स्तर के अध्ययन के लिए बुनियादी रूप से जरूरी हैं।

सितंबर 2011 से आरंभ नए सत्र में विभाग ने उर्दू लिपि और भाषा-शिक्षण पाठ्यक्रम का आरंभ भी किया है।

भारोपीय अध्ययन विभाग से अब तक चालीस से अधिक छात्र स्नातक उपाधि पा चुके हैं। इनमें से कम-से-कम बीस स्नातक पी-एच.डी. कर चुके हैं तथा कुछ अन्य कर रहे हैं। हंगरी में कार्यरत सभी भारत विद्या (इंडोलोजिस्ट) इसी विभाग की देन हैं। इनमें से कई देश और विदेश में महत्त्वपूर्ण पदों पर काम करते रहे हैं और कर रहे हैं।

विभाग के पहले स्नातक गेजा बेथलेनफेल्वी हैं, जिन्होंने सन् 1963 में उपाधि ली। वे कई सन् तक दिल्ली विश्वविद्यालय में हंगरियन भाषा सिखाते रहे। वे दिल्ली में हंगरियन सूचना और सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक भी रहे।

इसी विभाग से स्नातक डॉ. इमरे बंधा सन् 1998 से ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत प्राध्यापक हैं। उन्होंने भारत में शांतिनिकेतन से मध्यकालीन हिंदी कविता पर शोध कार्य किया। बालास देरी के साथ मिलकर उन्होंने मीरा और आनंदघन की कविताओं का अनुवाद किया जो उनकी टीकासहित पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। वे तुलसीदास की कवितावली के पाठालोचन का काम विभाग के छात्रों के साथ कर चुके हैं। उन्होंने सन् 2003 में नव-स्थापित सपिएन्तिसिया विश्वविद्यालय, चिकैसेरेदा, रोमानिया में भारत-विद्या के अध्ययन को परिचित कराया।

वर्तमान समय में विभाग के अध्यक्ष और लगभग सभी प्राध्यापक यहीं के छात्र रह चुके हैं। अन्य स्नातक भी देश के विभिन्न भागों में भारतीय दर्शन और कला, संस्कृति, पालि, सांख्य और वेदांत दर्शन जैसे विविधतापूर्ण विषयों को पढ़ा रहे हैं। इन दिनों विभाग की एक पूर्व छात्रा ने मनु-स्मृति के अंश अनूदित किए तथा दूसरी छात्रा द्वारा किए गए हरीशंकर परसाई की व्यंग्य रचनाओं के अनुवाद का पुस्तक रूप में प्रकाशन हुआ है। छात्रों ने भीष्म साहनी की कहानियों का हंगेरियन अनुवाद वर्तमान विभागाध्यक्ष डॉ. मारिया नेग्येशी के निर्देशन में किया है। विभाग के छात्र विभिन्न समारोहों में अनुवादक (हिंदी से हंगेरियन) की भूमिका भी निभाते हैं। वे भारत के दो प्रमुख त्योहार होली और दिवाली—मनाते हैं। हिंदी दिवस के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं, जिसमें हिंदी कविता पाठ, गीत तथा नाट्य प्रस्तुति होती हैं। छात्र यू.के. हिंदी समिति की प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं। वहाँ पुरस्कृत होकर भारत की यात्रा पर भी जा चुके हैं।

भारोपीय भाषा विभाग की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी उन्मुक्तता है। पाठ्य-सामग्री के संबंध में विद्यार्थियों से विमर्श किया जाता है, अर्थात् ऊँची कक्षा में आ जाने पर वे क्या पढ़ना चाहेंगे, यह उनसे पूछा जाता है। क्योंकि उनके लिए कोई पाठ्य-पुस्तक तो है नहीं, इस कारण अध्यापन कार्य में भी चुनौती और नयापन बना रहता है। छात्र रचनात्मक रूप से बहुत सक्रिय रहते हैं। प्रत्येक कक्षा में उनसे कुछ लिखने को कहा जाता है। उनकी रचनाओं को भित्ति-पत्रिका 'प्रयास' में प्रस्तुत किया जाता है। यह है हंगरी में हिंदी की वर्तमान स्थिति और हिंदी भाषा पढ़नेवाली अपेक्षाकृत युवा पीढ़ी की गतिविधियाँ।

नींव के पत्थर

किंतु कोई भी भव्य इमारत एक मजबूत नींव पर टिकी होती है। हंगरी में हिंदी का वर्तमान परिदृश्य भी इसका अपवाद नहीं है। भारत-विद्या अर्थात् इंडोलोजी क्षेत्र में आने से पहले ही इस देश में ऐसे विद्वानों और साहसी यात्रियों की अटूट शृंखला मिलती है, जिनके कार्य आज भी हिंदी की वर्तमान विकास-यात्रा को संबल प्रदान करते हैं। अठारहवीं शती के अंत और अन्नीसवीं शती के आरंभ से ही अपनी धुन के मतवाले इन विद्वान् लेखकों, कलाकारों और दृष्टाओं ने कई रुझानों के चलते भौगोलिक दूरियों के बावजूद हिंदीभाषी प्रदेशों की कठिन यात्राएँ की और ऐसी सामग्री संकलित की जिसका स्थायी महत्त्व है। ये यात्राएँ कभी स्वेच्छा से अपने खर्च पर हुई, कभी किसी के सहयोग से और कभी जेब में सिर्फ पाँच डॉलर रखकर। कोई अकेला घुड़सवार बनकर निकला, कोई शिकारी के रूप में दूर-दराज इलाकों में भटका, कुछ यात्राएँ केवल आनंद के लिए की गईं किंतु कुछ यात्रियों की जिज्ञासाएँ तथा लक्ष्य गूढ़ थे। ऐसे भी उदाहरण हैं कि जब कभी कोई विद्वान् राजनीतिक

कारणों से देश के बाहर रहे तो उस स्थिति का भी सदुपयोग किया। इन यात्राओं के बाद सभी के पास कहने के लिए कुछ-न-कुछ था। यात्रा करते हुए कभी इन्होंने अज्ञात हिमालयी क्षेत्रों से शब्द-संस्कारों का चयन किया, किसी ने कला का इतिहास लिखा, किसी ने अपनी शिकार-कथा को शब्दबद्ध किया। उनके ये कार्य उस देश के प्रति आकर्षण जगानेवाले थे, जिसकी भाषा हिंदी है और जिसे आज उनके देश का युवा स्वेच्छा-पूर्वक अध्ययन का विषय बना रहा है।

इंडोलोजिस्ट गेजा बेथलेनफेल्वी कहते हैं कि नवीं शती में पूर्व से अपने वर्तमान देश में आकर बसे हंगरी निवासियों को—आरंभिक रूप से अपने अतीत की खोज या अपनी जड़ों की तलाश की चाह एशिया में भारत की ओर ले गई। दूसरी समानता आजादी के लिए दमित लोगों का संघर्ष था और तीसरे भारतीय साहित्य, दर्शन, धर्म और कला की असाधारण और बहुरंगी परंपरा ने हंगरी-निवासियों की कल्पना को आकर्षित किया। (संदर्भ-ग्रंथ : इंडिया इन हंगेरियन लर्निंग एंड लिटरेचर : गेजा बेथलेनफेल्वी : मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1980)

दूर देश में हुए प्रामाणिक अनुभवों ने दो देशों के बीच पारस्परिक समझ को बढ़ावा दिया। इन विविध सैलानी-यात्रा-विद्वान् कलाकारों के मन में विश्व के साथ-साथ उस भारत को भी अधिकाधिक जानने की इच्छा रही, जहाँ बुद्ध ने जन्म लिया, जहाँ कालिदास जैसे कवि हुए या रामायण-महाभारत जैसे ग्रंथ रचे गए, जिनमें से श्रीमद् भगवद्गीता जैसा रत्न उभरकर आया। भ्रमण के दौरान उन्होंने देश, संस्कृति, व्यक्ति और भाषा से निकटता हासिल की। ऐसी यात्राओं का एक लंबा इतिहास मिलता है, जिनमें यात्रियों की अभिरुचि के क्षेत्र और तलाश के बिंदु इतने अधिक विविधतापूर्ण हैं कि उन्हें जानकर आश्चर्य होता है—ये हैं : प्राच्य अध्ययन, इतिहास, भूगोल, भूगर्भ शास्त्र, भाषाविज्ञान, पुरातत्व, स्थापत्त्व, प्राकृत और भारतीय भाषाओं का इतिहास, व्याकरण, संस्कृत भाषा तथा साहित्य का इतिहास, मानवधर्मशास्त्र और कौटिल्य का अर्थशास्त्र।

सहज कौतूहल से भरी इन यात्राओं में हंगेरियन भारत-विद (इंडोलोजिस्ट) के रूप में उन्होंने कुछ ऐसे कार्य किए जो हिंदी के वर्तमान परिदृश्य के लिए नींव के पत्थर बने। संस्कृत साहित्य के प्रति अभिरुचि क्रमशः हिंदी के प्रति लगाव में प्रतिफलित हुई। कैसे जीवटवाले थे ये लोग जो जान हथेली पर लिए कभी लेह, लद्दाख, गिलगित और कश्मीर तक, कभी बंबई और दक्षिणी किनारों तक पहुँचे। जहाँ गए वहाँ की जीवन-पद्धति अपनाकर वहाँ रहे और प्रत्यक्ष संपर्क के लिए भाषा भी सीखी। सन् 1877-1878 जितने पुराने समय में यह हौसला कि गोबार बालिंत नामक हंगेरियन तमिल भाषा के संपर्क में आए, उन्होंने द्रविड़ भाषा का अध्ययन किया और फिर तमिल व्याकरण और शब्दकोश भी बनाया।

हंगेरियन इंडोलोजी के इतिहास में शान्दोर कोरोशी चोमा (Sandor Korosi Csoma, 1784-1842) का कार्य अभी तक मील का पत्थर है। उन्होंने भारतीय और तिब्बती लोगों से अपने देश के मित्रों और रिश्तेदारों की तरह संपर्क किया। वे भारत में एक गरीब विद्यार्थी

भारोपीय भाषा विभाग की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी उन्मुक्तता है। पाठ्य-सामग्री के संबंध में विद्यार्थियों से विमर्श किया जाता है, अर्थात् ऊँची कक्षा में आ जाने पर वे क्या पढ़ना चाहेंगे, यह उनसे पूछा जाता है। क्योंकि उनके लिए कोई पाठ्य-पुस्तक तो है नहीं, इस कारण अध्यापन कार्य में भी चुनौती और नयापन बना रहता है। छात्र रचनात्मक रूप से बहुत सक्रिय रहते हैं। प्रत्येक कक्षा में उनसे कुछ लिखने को कहा जाता है। उनकी रचनाओं को भित्ति-पत्रिका 'प्रयास' में प्रस्तुत किया जाता है। यह है हंगरी में हिंदी की वर्तमान स्थिति और हिंदी भाषा पढ़नेवाली अपेक्षाकृत युवा पीढ़ी की गतिविधियाँ।

के रूप में पहुँचे। उन्होंने वहीं के निवासियों की तरह जीवन-शैली अपनाने की कोशिश की। उन्होंने लद्दाख में दस से भी अधिक साल बिताए और भारतीय इतिहास, साहित्य, दर्शन, धर्म और औषध विज्ञान से जुड़े मौलिक महत्त्व के पाठ खोजे। वे पहले विद्वान् थे जिन्होंने 'महाव्युत्पत्ति' नामक संस्कृत-तिब्बती शब्दकोश पर विचार प्रकाशित किए। सन् 1834 में उन्होंने तिब्बती भाषा का पहला व्याकरण और तिब्बती-अंग्रेज़ी शब्दकोश प्रकाशित किया। उनकी मृत्यु दार्जिलिंग में हुई जहाँ आज भी उनका वह स्मृति-स्तूप मौजूद है जो प्रत्येक हंगरी निवासी को उनके अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करने को प्रेरित करता है।

यह तथ्य जानने योग्य है कि हंगरी में संस्कृत अठारहवीं सदी से ही पढ़ी जाती थी। संस्कृत की रचनाओं का अनुवाद भी होता था, किंतु ये आरंभिक अनुवाद सीधे संस्कृत से न होकर अन्य भाषाओं से किए जाते थे। अर्थात् वे अनुवाद के अनुवाद होते थे। पर क्रमशः सीधे संस्कृत से अनुवादों की प्रवृत्ति विकसित हुई। सत्रहवीं सदी में दाविद रोजान्यी (David Rozsnyai) द्वारा अनूदित पंचतंत्र का प्रथम हंगेरियन अनुवाद सीधे संस्कृत से नहीं बल्कि तुर्की भाषा से किया गया था। अठारहवीं सदी तक कई अनुवाद इसी प्रकार सीधे संस्कृत से नहीं किए गए। लेकिन आनेवाले समय में हंगरी में संस्कृत की जितनी रचनाओं के अनुवाद हुए, उस सूची को देखकर विस्मय-विमुग्ध ही हुआ जा सकता है : कथासरित्सागर, वेतालपञ्चविन्शतिका, ऋग्वेद से ऋचाएँ, गीतगोविंद, अभिज्ञान शाकुंतलम, मालविका अग्निमित्रम, महाभारत के पर्व, हितोपदेश, भगवद्गीता, रामायण, भारतीय दर्शन, योग और धर्म पर पुस्तकें इस सूची में शामिल हैं।

संस्कृत के आरंभिक अनुवादों की यह सरल पगडंडी क्रमशः संस्कृत के बहुआयामी अध्ययन की ओर उन्मुख होती हुई अंततः आज हिंदी के अध्ययन की प्रशस्त परंपरा का रूप ले चुकी है। सन् 1913 में साहित्य का नोबल पुरस्कार पाने वाले गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर का सान्निध्य और कालांतर में गांधीजी के प्रभाव में फलने-फूलनेवाला भारतीय कला-साहित्य-संस्कृति के प्रति अनुराग हंगरी निवासियों को हिंदी के निकट लाया। उन्होंने कवींद्र रवींद्र की कविताओं और गांधी जी के भाषणों का अनुवाद आनंदित होकर किया। इन कार्यों से एक ऐसा पुल विनिर्मित हुआ जिस पर चलकर आगे की यात्रा संभव हुई। इस रुझान को हिंदी के भावी अध्ययन के प्रस्थान बिंदु के रूप में देखा जा सकता है।

हिंदी का प्रवेश

आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में हिंदी और उसके साहित्य का अध्ययन हंगरी में पचास से भी अधिक साल पहले आरंभ हुआ था।

लेकिन अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन की परंपरा भी हंगरी में बहुत पहले से दिखाई देती है। सन् 1926 में रवींद्रनाथ ठाकुर के हंगरी आगमन तक उनकी बीस से अधिक रचनाओं के अनुवाद उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'न्यूगत' में प्रकाशित हो गए थे।

मुल्कराज आनंद के कुछ उपन्यास, टी.एस. पिल्लई, आर.के. नारायण, खुशवंत सिंह, गिरीश कर्नाड जैसे रचनाकारों की कृतियों के अनुवाद भी आज उपलब्ध हैं।

आज भारतीय साहित्य का हंगेरियन और हंगेरियन साहित्य का हिंदी में अनुवाद पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। यहाँ प्रेमचंद के 'गोदान' और 'निर्मला' का अनुवाद हुआ है, यशपाल की कहानियाँ भी अनूदित हुईं।

भारोपीय भाषा विभाग के पूर्व अध्यापक डॉ. आर्पद देब्रेत्सेनी (Arpad Debreczeni—1911-1984) ने बहुत पहले परिचयात्मक भाषा शिक्षण की पाठ्य-पुस्तक तैयार करने के अतिरिक्त आधुनिक हिंदी साहित्य की अनेक कृतियों का अनुवाद किया था। उन्होंने हिंदी व्याकरण की समस्याओं पर भी काम किया। साहित्य अकादमी के सहयोग से उन्होंने विश्व साहित्य कोश में आधुनिक भारतीय लेखकों पर कई प्रविष्टियाँ दीं। दुर्भाग्य से उनका विशिष्ट कार्य हिंदी-हंगेरियन शब्दकोश अभी तक अप्रकाशित है, किंतु सन् 1973 में प्रकाशित पहले हंगेरियन-हिंदी शब्दकोश को उन्होंने संशोधित किया।

विभाग की ही अध्यापिका तथा बंबई में शिक्षा प्राप्त डॉ. इवा

अरादी ने प्रेमचंद के जीवन और साहित्य पर ऐल्ते विश्वविद्यालय से शोध किया। इसके साथ ही उन्होंने प्रेमचंद के उपन्यास 'निर्मला' और उनकी प्रमुख कहानियों—कफन, पूस की रात, ठाकुर का कुँआ तथा शतरंज के खिलाड़ी का अनुवाद भी किया, जिनका प्रकाशन भी हुआ। उन्होंने जैनेंद्र के साहित्य, धर्मवीर भारती की विशिष्ट कहानी 'गुलकी बन्नो', कमलेश्वर और मोहन राकेश की कहानियों का अनुवाद भी प्रस्तुत किया। वे आज भी पेच (हंगरी) में हिंदी-शिक्षण से जुड़ी हैं। भारोपीय भाषा विभाग की वर्तमान अध्यक्षा डॉ. मारिया नेग्येशी ने हिंदी से भीष्म साहनी, राजेंद्र यादव और असगर वजाहत की रचनाएँ अनूदित कीं। इस क्षेत्र में उनकी नवीनतम देन उदयप्रकाश की कहानी 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड' का अनुवाद है, जो हंगरी से प्रकाशित होनेवाली अनुवाद की विशिष्ट पत्रिका में प्रकाशित हुई है। उन्होंने हंगेरियन कहानियों के हिंदी अनुवाद भी किए हैं।

मारियाजी ने विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी पाठ्यक्रम को पुन:संयोजित किया और उन नई शिक्षण पद्धतियों का परिचय कराया जो बहुत सफल सिद्ध हुई हैं। नब्बे के दशक में विभाग में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में आमंत्रित डॉ. असगर वजाहत के साथ मिलकर उन्होंने नई पाठ्य-पुस्तक तैयार की जो बाजार में उपलब्ध होनेवाली पहली पुस्तक होगी। सन् 2002 में उन्होंने बुदापैश्त में भारतीय दूतावास के सहयोग से अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें केंद्रीय यूरोप के हिंदी विद्वानों को पहली बार विचार-विमर्श का अवसर मिला। सन् 1993 से वे बुदापैश्त में भारतीय दूतावास के सहयोग से भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा पर तीन स्तरीय (अब चार) ओरिएंतेशन कोर्स आयोजित कर रही हैं। यह कोर्स यहाँ नई-पुरानी पीढ़ियों में समान रूप से लोकप्रिय है, जिसमें भारतीय संस्कृति और हिंदी से संबंधित विभिन्न विषयों को सविस्तार प्रस्तुत किया जाता है। यह आयोजन नए भारत-विदों को अवसर देता है कि वे हिंदी के साथ अपनी संबद्धता को दर्शाते हुए अपना परिचय भी प्रस्तुत करें।

वर्तमान समय में ऐते विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग में अध्यक्षा डॉ. मारिया नेग्येशी के अतिरिक्त चार शिक्षक हैं : डॉ. चबा देजो (Csaba Dezso) जिन्होंने ऑक्सफोर्ड से डी.फिल. किया है। उनके अध्ययन का विशिष्ट क्षेत्र है—संस्कृत भाषाविज्ञान।

डॉ. माते इत्जिस (Mate Ittzes) के शोध का क्षेत्र तुलनात्मक भारोपीय भाषाविज्ञान है।

डॉ. गेर्गेई हिदास (Gergely Hidas) टैगोर रिसर्च फेलो रहे हैं, उन्होंने ऑक्सफोर्ड से डी.फिल. किया तथा विभाग में भाषा विज्ञान, बौद्ध पाठ तथा सांस्कृतिक इतिहास पढ़ाते हैं।

डॉ. चबा किश (Csaba Kiss) नए टैगोर फेलो हैं। उन्होंने भी ऑक्सफोर्ड से डी.फिल. किया तथा भारतीय धर्मों का इतिहास तथा उपनिषद् पढ़ाते हैं।

बुदापैश्त के योजफ अत्तिला विश्वविद्यालय में भी समय-समय पर हिंदी भाषा पाठ्यक्रम प्रस्तुत किए गए। वहाँ द्योर्दयी कोवाच हिंदी पढ़ाते रहे।

यह उल्लेख करना उपयोगी होगा कि हंगरी में हिंदी के वर्तमान परिदृश्य को संबल प्रदान करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की विशिष्ट भूमिका है, जिसके सौजन्य से दोनों देशों का भाषिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान संभव होता है।

विजिटिंग प्रोफेसर
ऐल्ते विश्वविद्यालय बुदापैश्त
2 अक्तूबर, 2011

□

पुस्तकों से विहीन घर खिड़कियों से विहीन भवन के समान है।

—अज्ञात

14

स्पेन में हिंदी और भारतीय सिद्धांतविषयक पाठ्यचर्चा

✍ प्रो. विजयकुमारन

- डॉ. विजय कुमारन प्रोफेसर एवं शोध निर्देशक (कण्णूर विश्वविद्यालय) हैं।
- 1955 में जनमे डॉ. विजय कुमारन ने प्राणि विज्ञान, रसायनशास्त्र तथा भौतिक विज्ञान में बी.ए., हिंदी में एम.ए., एम.फिल. एवं पी-एच.डी. तथा रूसी, गांधी अध्ययन, संस्कृत एवं स्पेनिश में डिप्लोमा प्राप्त किए हैं।
- 1979 से 2007 तक कण्णूर विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर चुके डॉ. विजय कुमारन स्पेन के वल्लदोलिद विश्वविद्यालय के एशियाई अध्ययन केंद्र में अतिथि आचार्य हैं।
- इन्होंने कई पुरस्कार (उत्तम अध्यापक पुरस्कार, राष्ट्रीय पुरस्कार, उत्तम शोध ग्रंथ पुरस्कार, राष्ट्रभाषा रत्न, सारस्वत सम्मान) प्राप्त करने के साथ ही 7 पुस्तकें (स्पेनिश, मलयालम, हिंदी एवं अंग्रेजी) प्रकाशित-संपादित की हैं; 400 से भी अधिक शोध प्रपत्र लिखे हैं एवं 80 से भी अधिक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों-कार्यशालाओं में भी भाग लिया है।

वप्पिलदोलिद विश्वविद्यालय में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की योजना के अनुसार सन् 2004 से हिंदी पढ़ाने को अतिथि आचार्य भेजे जाते थे। यूँ ही स्पेन में यह ऐसा पहला विश्वविद्यालय रहा, जहाँ अकादमीय पाठ्य पद्धति में हिंदी सम्मिलित की गई थी। विश्वविद्यालय के भाषा केंद्र के अधीन कक्षाएँ चलाने लगी थीं। कभी-कभी कक्षाएँ एशियाई अध्ययन केंद्र में भी हुआ करती थीं। स्पेन नागरिकों की हिंदी विषयक रुचि इतनी बढ़ी थी कि वे फिल्मी मनोरंजन और भारत यात्रा के लिए यह अनिवार्य मानते थे। जहाँ भी भारतीय फिल्म समारोह संपन्न होता था, थिएटरों में नवअभिनेता और अभिनेत्रियों की फिल्म देखने को काफी भीड़ लगती थी। हिंदी कक्षा में कुछेक छात्राएँ साफ-साफ घोषणा करती हैं कि वे सलमान खान या ऋतिक रोशन से शादी करना चाहती हैं। यूँ तो यूरोप और पाश्चात्य देशों में शिक्षा जीविकोपार्जन का उपाय नहीं बनती थी। तीसरी दुनिया में ही शिक्षा विकास के साधन के रूप में मानी जाती थी। कहीं यह जीवनोपगामी या नौकरी प्राप्त करने का साधन मानी जाती थी। दरअसल जितनी भी पाठ्यपद्धतियाँ यूरोप की बनी है, अधिकांश में शिक्षार्थियों की ज्ञानाभिरुचि प्रथम रही। हिंदी अध्ययन का भी यही लक्ष्य शिक्षार्थियों का रहा। इधर की जनता को भारत का मतलब ही हिंदी और हिंदू है। अत: ये आशा करती हैं कि भारत से आनेवाले हर किसी को हिंदी राष्ट्रभाषा अवश्य आती हो।

भारोपीय भाषाओं में स्पेन भाषा आज दुनिया की दूसरी प्रमुख भाषा का स्थान ले चुकी है। मानक स्पेनी भाषा या कास्तिलिया का जन्म उत्तर स्पेन के कास्तिलिया प्रांत में हुआ, जो रूमानो-एबीरियायी भाषा विभाग में शामिल है। सदियों पहले व्यापार के लिए यह प्रयुक्त होती थी। अब स्पेनी भाषा बोलनेवाले देशों में दुनिया के बीस देश शामिल हैं, जिनमें उत्तर, दक्षिण, और मध्य अमरीका, करीबियाई द्वीप, अफ्रीका एवं यूरोप में स्पेन हैं, और बोलनेवालों की संख्या 32 करोड़ है। स्पेनी सरकार ने कास्तिलिया को सन् 1978 में राजभाषा घोषित कर लिया और तीन अन्य प्रमुख भाषाओं-गलीसियायी, बास्की, तथा कतलानी—को भी देश-भाषा के रूप में मान लिया।

हिंदी भाषा आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के रूप में 10 वीं. शती में जन्मी, और अब संसार के 44 करोड़ लोग इसका, मातृभाषा के रूप में उपयोग करते हैं, और वह भाषा जो भारत के 10 प्रांतों में तथा केंद्रशासित प्रदेशों में प्रथम है तथा संवैधानिक दृष्टि से भारत की राजभाषा है। भारोपीय भाषाओं के

मूल में संस्कृत है, अत: यूरोपीय भाषाओं में और हिंदी में कई समानताएँ हैं, मगर काफी कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं। संसार के भाषा-प्रयोक्ताओं में प्रथम चीनी है, दूसरा स्थान अंग्रेज़ी का, तीसरा और चौथा यथाक्रम स्पेनी और हिंदी का है। स्पेनी बोलनेवालों की संख्या 5.6 प्रतिशत तथा हिंदी की 4.7 प्रतिशत है।

हिंदी की पाठ्यचर्या एवं समयसारिणी ऐसी बनाई जाती थी कि वह शिक्षार्थियों के अनुकूल हो। इसीलिए सबसे अधिक ध्यान समय पर केंद्रित हुआ करता था। दिन में दो-ढाई घंटे से ज्यादा कक्षाएँ नहीं होती थीं। वह भी सायं सत्र को ही सबसे ज्यादा पसंद करनेवाले थे। अभ्यर्थियों में नौकरीरत स्त्री-पुरुष ज्यादा थे। अधिकांश की उम्र चालीस-पचास के उपर। छोटे पैमाने में वे बच्चे भी शामिल होते थे जो अपने ऐच्छिक विषय के अध्ययन से थोड़ा हल्का होने के लिए भर्ती हो रहे हों। कुछेक का स्पष्ट लक्ष्य होता है कि वे विश्वभाषा को करीब से जानना चाहते हैं, और यूरोपी भाषाओं से हिंदी का साम्य-वैषम्य जानना चाहते हैं।

पाठ्य-पद्धति उपभोक्ता केंद्रित बनाने के लिए भाषाध्यापन के साथ सांस्कृतिक अध्ययन पर भी बल दिया जाता था। यूँ तो इसमें भारतीय पर्यटन को मद्देनज़ार रखा जाता था, या जिज्ञासाएँ अधिकांश उस ओर केंद्रित थीं। स्पेनी भाषियों की भाषा-निष्ठा कट्टर है, इसलिए हिंदी अध्यापक को भी स्पेनी जबान से ही अधिकांश बातों को समझाना पड़ता था। यूँ तो पोलैंड, इटली आदि राष्ट्रों से उत्प्रवासित कुछेक विद्यार्थी भी हिंदी पढ़ने को उत्सुक होते थे। भारतीय संस्कृतियों के हस्तांतरण में अधिकांश ध्यान दिया जाता था। लेकिन पढ़ाने में काफी कठिनाई तब होती थी, जबकि सूचक-सूच्य का, जमीन-आसमान का फर्क दोनों भाषाओं में हुआ करता था। सांस्कृतिक चिह्नों के हस्तांरण में इस कठिनाई को मिटाने के लिए भरसक कोशिश करनी पड़ती थी। कक्षा में आधुनिक प्रौद्योगिकी के साधन उपलब्ध थे, इसलिए मानचित्रों, रेखाचित्रों तथा भौगोलिक मापचित्रों के लिए ज्यादा कठिनाई नहीं होती थी। एतद्विषयक अधुनातन जानकारी जो भी अध्यापक से छूट जाती थी, बच्चे उसकी क्षतिपूर्ति करते थे।

स्पेन में हिंदी पढ़ने-पढ़ाने का स्थाई विभाग नहीं है, भले ही कुछेक यूरोपीय विश्वविद्यालयों में यह है। यूँ कह सकते हैं कि अकादमीय स्तर पर इस विषय को स्पेनी सरकारी या विश्वविद्यालयी अधिकारियों की तरफ से आंतरिक संस्तुति नहीं है, भले ही वे हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के लिए आवश्यक सारी सुविधाएँ उपलब्ध कराते रहे हैं, ताकि भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के द्वारा भेजे जानेवाले हिंदी आचार्य को अपना उत्तरदायित्व निभाने में कहीं भी कोई कमी नहीं रह गई हो। हिंदी में स्नातक, या परास्नातक जैसी पाठ्य-पद्धतियाँ विश्वविद्यालयी पाठ्य-पद्धति में सम्मिलित नहीं की गई है। प्रतिनियुक्त आचार्य के द्वारा हिंदी अध्यापन का क्रम जारी है, और पाठ्य विषय निर्धारण, समय सारिणी, परीक्षा, आदि सभी का समायोजन खुद करना पड़ता है। अव्वल छात्रों को विश्वविद्यालय सम्मान प्रमाण-पत्र देता था, जो अन्य भाषाविषयों के अध्येताओं को मिलता था। कहने का मतलब यह है कि हिंदी के अध्येताओं को अन्य विषयों के समान मान्यता दिलाई जाती थी। अत: भारत सरकार का यह प्रयास है कि स्पेन में हिंदी का स्थायी पीठ हो और अतिथि आचार्य को भेजने का ऐसा क्रम (2004 से) रखा है कि एक के सेवाकाल के समाप्त होते ही दूसरा प्रतिनियुक्त हों, और कभी भी यह पीठ अनाथ नहीं हो।

अब तक विश्वविद्यालय में हिंदी की जो पाठ्यपद्धतियाँ अपनाई गईं, उनका यही स्वरूप है—कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ के प्रतिनियुक्त आचार्य के द्वारा 2004-05 और 2005-06 में हिंदी उच्चारण पर यथाक्रम प्राथमिक और माध्यमिक पाठ्यपद्धति तथा हिंदी भाषा की माध्यमिक कक्षा 20 फरवरी, 2007 से 7 जून 2007 में चलाई गई। तदनंतर दूसरे आचार्य, कण्णूर विश्वविद्यालय के पय्यनूर महाविद्यालय के सी.पी.वी. विजयकुमारन की बारी आई। उन्होंने पहले-पहल हिंदी में एकमासी द्रुत पाठ्यपद्धति बनाई और 3-27 सितंबर 2007 को उसे कार्यरत कराया। इसमें अध्येताओं का लक्ष्य बोलचालीय हिंदी पर दक्षता प्राप्त करने का था, कि उन्हें भारतयात्रा के लिए हिंदी भाषा की जरूरत महसूस हुई थी। पाठ्य-पद्धति का स्वरूप खुद प्रो. के द्वारा बनाया गया और विश्वविद्यालय ने आवश्यक सारी सुविधाएँ प्रदान कीं। अगले महीने 1 अक्तूबर, 2007 से 23 जनवरी, 2008 तक प्रारंभिक हिंदी कक्षा शुरू की गई, जहाँ हिंदी वर्ण और अक्षराध्यापन, सुलेख से शुरू कर हिंदी व्याकरण की इकाइयों, जैसे—संज्ञा, सर्वनाम, लिंग, वचन,कारक, क्रिया, विशेषण, वाच्य, वाक्य, को छोटे-छोटे मापांकों में बाँटा गया। पढ़ाने

और छात्रोपयोगी नोट बनाते हुए उन्हें यथासमय दिया जाता था। स्पेनी चित्रों, बिंबों और दृश्यों के सहारे पढ़ाई काफी दिलचस्प बनाई जाती थी। कक्षांत में बच्चे हिंदी पठन-पाठन और बोलने के लिए सक्षम होते थे। मैक्रोसोफ्ट पवरपोइन्ट का सहारा लेते हुए, स्पेन चित्रों, बिंबों और दृश्यों के सहारे काफी दिलचस्प बनाई जाती थी। कक्षांत में अवश्य और कक्षाओं के बीचों बीच परीक्षा लेने में बच्चों में, पढ़े विषयों की स्थिरता बनी रहती थी।

आनेवाले कार्यक्रमों में अध्येताओं को प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तर के विभिन्न स्तरों पर बाँटा गया। प्राथमिक कक्षा की अवधि, यथाक्रम 5 फरवरी से 28 जून, 2008, 22 अक्तूबर से 17 जून, 2008, 20 अक्तूबर, 2008 से 15 जून 2009, 28 सितंबर, 2009 से 31 मई, 2010 तक सुव्यस्थित थी। माध्यमिक कक्षा की अवधि यथाक्रम 2 अक्तूबर, 2007 से 31 जनवरी, 2008, 20 अक्तूबर, 2008 से 15 जून, 2009, और 29 सितंबर, 2009 से 18 मई, 2010 तक थी। उच्चस्तर की कक्षा के लिए 20 अक्तूबर, 2008 से 15 जून, 2009 की अवधि चुनी, जहां असल साहित्यिक अध्ययन शुरू किया गया। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, आधुनिक कविताएँ तथा प्रेमचंद और अन्य आधुनिक कहानीकारों को इसमें अध्ययन का विषय बनाया गया। रामचरितमानस, कबीरदास के दोहे आदि के चुने हुए प्रकरण, तथा भक्तिसाहित्य के अध्यापन के निमित्त कई पद्यांशों तथा उनके स्पेनी अनुवादों का भी सहारा लिया गया। द्वितीय भाषा हिंदी या विदेशी भाषा हिंदी पढ़ाते हुए साधारण: स्पेनी अध्येताओं की मातृभाषा और हिंदी की तुलनात्मक विधि अपनाई जाती थी।

पाठ्य-पद्धति उपभोक्ता केंद्रित बनाने के लिए भाषाध्यापन के साथ सांस्कृतिक अध्ययन पर भी बल दिया जाता था। यूँ तो इसमें भारतीय पर्यटन को मद्देनज़ार रखा जाता था, या जिज्ञासाएँ अधिकांश उस ओर केंद्रित थीं। स्पेनी भाषियों की भाषा-निष्ठा कट्टर है, इसलिए हिंदी अध्यापक को भी स्पेनी जबान से ही अधिकांश बातों को समझाना पड़ता था। यूँ तो पोलैंड, इट्ली आदि राष्ट्रों से उत्प्रवासित कुछेक विद्यार्थी भी हिंदी पढ़ने को उत्सुक होते थे। भारतीय संस्कृतियों के हस्तांतरण में अधिकांश ध्यान दिया जाता था। लेकिन पढ़ाने में काफी कठिनाई तब होती थी, जबकि सूचक-सूच्य का, जमीन-आसमान का फर्क दोनों भाषाओं में हुआ करता था। सांस्कृतिक चिह्नों के हस्तांरण में इस कठिनाई को मिटाने के लिए भरसक कोशिश करनी पड़ती थी। कक्षा में आधुनिक प्रौद्योगिकी के साधन उपलब्ध थे, इसलिए मानचित्रों, रेखाचित्रों तथा भौगोलिक मापचित्रों के लिए ज्यादा कठिनाई नहीं होती थी। एतद्विषयक अधुनातन जानकारी जो भी अध्यापक से छूट जाती थी, बच्चे उसकी क्षतिपूर्ति करते थे।

भारत अध्ययन पर स्नातकोत्तर पाठ्यपद्धति

भारतीय अध्ययन पर आधारित स्नातकोत्तर उपाधि हेतु पाठ्यपद्धतियाँ निर्मित होती थीं, फिर भी ज्यादा बच्चे उसमें दिलचस्पी नहीं लेते। अब तक वल्लदोलिद विश्वविद्यालय में भारत अध्ययन पर तीन पाठ्यपद्धतियाँ स्नातकोत्तर स्तर पर चलाई गई हैं, पहली सन् 2004-05 को फिर सन् 2005-06 और अंतिम 2008-09 को। शिक्षार्थियों की संख्या पहले तीस-चालीस के करीब थी, मगर अंतिम पाठ्यपद्धति में 10-12 छात्र ही थे। सन् 2009-10 के लिए विज्ञापन निकाला तो भी अभ्यर्थियों की संख्या चार-पाँच ही थी, अत: तत्काल इसे विराम दिया गया। अन्य विषयों के समान हिंदी भी उक्त पाठ्यपद्धति का अनिवार्य मगर महत्त्वपूर्ण विषय चुना गया था। सबसे ज्यादा समय उसमें हिंदी विषय के लिए निर्धारित था। एक ही आचार्य होने पर भी हिंदी आचार्य को यह अतिरिक्त भार

नहीं लगता था, मगर भाषा और साहित्य तथा भारत के प्रति स्पेनियों के लगाव की श्रीवृद्धि देखकर रुचि बढ़ती ही जाती।

भारत और स्पेन के विश्वविद्यालय कुलपतियों का संगम

पहली बार भारत और स्पेन के विश्वविद्यालयों के चुने हुए कुलपतियों का संगम वल्लदोलिद, स्पेन में 17 अक्तूबर, 2007 को हुआ। इसका कार्यक्षेत्र रहा-अंतरविश्वविद्यालयी सहकारिता। कासा आसिया और भारतीय विश्व कार्य परिषद तथा कासा इंदिया के संयुक्त तत्त्वावधान में यह संगम प्राप्त हुआ। दोनों राष्ट्रों में उच्च शिक्षा के अकादमीय मामले में पारस्परिक संबंध बढ़ाने के क्षेत्र, ज्यादा से ज्यादा अंतरनुशासनिक विषयों में गौर करने का सुझाव, अनुदान योजनाएँ, अंतरविश्वविद्यालयी सांस्कृतिक आदान-प्रदान, सहयोगी पाठ्यचर्याएँ, आदि पर विस्तृत विचार विमर्श हुए और अकादमीय स्तर पर दोनों राष्ट्रों के आपसी सहयोग बढ़ाने के उपाय उक्त संगम में निर्णीत हुए। वल्लदोलिद विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री अब्रील दोमिंगो, कासा इंदिया के संरक्षक मंडल, और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय पंजाब सिंह की अध्यक्षता में सारे सत्र चले। भारतीय दल में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सचिवा श्रीमती पंकज मित्तल, तथा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलूर के निदेशक समेत 31 भारतीय विद्वान तथा भारत के 17 विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि शामिल थे। कास्तिलिया इ लयोन के स्थानीय पार्षद् खुआन खोसे मतियोस, दिल्ली के सेरवांतस संस्थान के निदेशक ओस्कार पुखोल और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के उपमहानिदेशक वे भी इस समारोह को अपनी उपस्थिति से धन्य बनाया। सन् 2007 में दोनों देशों के बीच विज्ञान और प्रौद्योगिकी में एक सामयिक समझौता में हस्ताक्षर किए गए जो शिक्षा और विज्ञान समझौते का परागामी रहा।

तीसरा भारत-स्पेन संवाद भी इसी से जुड़ा कार्यक्रम रहा, जो भारतीय दूतावास, माद्रिद; स्पेनी दूतावास, नई दिल्ली, कासा आसिया, स्पेन विदेश मंत्रालय, भारतीय विदेश मंत्रालय, स्पेनी शिक्षा एवं विज्ञान मंत्रालय, स्पेनी संस्कृति मंत्रालय, सांस्कृतिक संबंध परिषद, और वल्लदोलिद विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में 144 प्रतिभागियों के द्वारा वल्लदोलिद शहर में संपन्न हुआ। स्पेन का यह सबसे बड़ा बौद्धिक अधिवेशन रहा, जहाँ 80 सार्वजनिक और निजी संस्थाओं के प्रतिभागी भाग ले रहे थे। इनके अतिरिक्त विश्व कार्य परिषद के 20 प्रतिभागी भारत से इस महासम्मेलन के सहभागी रहे।

नई दिल्ली राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय के भूतपूर्व निदेशक वी.पी. आनंद के 'गांधीवादी लैगसी' पर दिए गए भाषण में उन्होंने कहा कि गांधीजी के सामने अहिंसा को बढ़ावा देने में सबसे बड़ी चुनौती अंग्रेज़ी भाषा और उसकी सीमाएँ रहीं। यह गलत धारणा जो सदियों से मानव को घेरी गई है कि हिंसा से ही सभी समस्याओं का हल कर सकता है। गांधीजी ने दो शब्दावलियाँ इस संदर्भ में सुझाई थीं—'पैसिव रसिस्टनस' और 'सिविल डिसओबीडियनस'। मगर इन शब्दों में उनके मन की बात को अभिव्यक्त करने की सही क्षमता नहीं थी, अत: उन्होंने भारत आकर उनके लिए संस्कृत की शब्दावलियाँ—'असहयोग' और 'असत्याग्रह' जैसे पदबंध चुने। फिर आनंद ने गांधीजी के अहिंसा शब्द की अर्थव्याप्ति को भी सोदाहरण प्रस्तुत किया तथा अहिंसा सिद्धांत की 21 वी. शताब्दी की प्रासंगिकता को जोरदार शब्दों में समझाया जिससे सारे श्रोतागण उक्त भाषण से अभिभूत हुए।

स्पेन में भारतीयता को फैलानेवाले अन्य उपादानों में 'भारतीय स्कूल' का भी अपना हाथ है। 'एस्कुएला द ला इंडिया' (भारतीय विद्यालय) के नाम से यह संस्था कासा इंदिया का अंग बनकर काम करता रहा। भारतीय जीवनरीतियाँ, संस्कृति के साधन, भाषा, खेल-कूद तथा मनोरंजन के सोदाहरण परिचय दिलाने में यह स्कूल कटिबद्ध रहा। अकादमीय शिक्षा इसकी कार्यपद्धति में नहीं, मगर जो भी स्पेनी स्कूल या संस्था जो चाहे बच्चों का या वयस्क का हो, का इस संस्था से संबंध स्थापित किया जा सकता है। भारतीय विद्यालय से अनौपचारिक अध्ययन हासिल करने के लिए पहले ही पंजीकरण करना होता है। इस विद्यालय का कार्य देश के औपचारिक शैक्षिक संस्थाओं के समान चलता था, अत: दीर्घावधि को छोड़कर बची सारी छुट्टियाँ भारतीय विद्यालय का अध्ययन-अध्यापन जारी रहा। भारतीय हिंदी आचार्य और छात्रवृति पाकर स्पेन में पहुँचे भारतीय बच्चे, सब के सब इस अनौपचारिक शिक्षा केंद्र के अध्यापक का जामा पहनते थे। कासा इंडिया के आरंभकाल से अब तक यह अनौपचारिक विद्या का लक्ष्य निभाता रहता है।

हिंदी संघ

हिंदी संघ एक स्वयंसेवी संस्था है, जिसने वल्लदोलिद महानगर में भारतीय संस्कृति और हिंदी विषयक रुचि साधारण जनमानस में लगाने के लिए विविधमुखी सांस्कृतिक कार्यक्रम का भार ले रखा है। हर महीने किसी विषय को लेकर परिचर्चा, कुछ-न-कुछ सांस्कृतिक कारोबार, स्पेनी और भारतीय संस्कृतियों का आदान-प्रदान, कार्यशालाएँ, चर्चाएँ आदि कार्यक्रम इसकी क्रियाविधि में शामिल किया गया। इसकी सदस्यता उन सब के लिए खुली है जो हिंदी और भारतीय संस्कृति में रुचि रखते हो, मगर एक बार हिंदी कक्षा में भर्ती होनेवाला अध्येता हमेशा के लिए इसका स्वयंसेवी सदस्य बन सकता था। कासा इंडिया के निदेशक इसके संरक्षक और हिंदी आचार्य इसके स्थायी निदेशक होते हैं। इसका मुख्य दफ्तर कासा इंडिया रखा, भले ही महानगर में कहीं भी सुविधानुसार इसे कराने की भी दिक्कत नहीं महसूसी गई। सालाना एक स्वयंसेवी सचिव या सचिव का चुनाव भी होता जो निदेशक का साथ दे सके। कासा इंदिया महीनेवार बैठक का स्थान एवं मंच सुनिश्चित था, लेकिन नगरपालिका या बाहरी संस्था में होनेवाली कार्यविधियों के लिए संबंधी संस्था के अधिकारी आवश्यक सुविधा प्रदान करते आए। इससे यह विदित होता है कि स्पेन में भारतीयता के प्रचार-प्रसार के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक सहयोग प्राप्त होता आया है।

हिंदी संघ की उल्लेखनीय चर्चाओं में नवंबर 2007 के उद्‌धाटन सत्र के प्रस्ताव के अनुसार जनवरी-फरवरी 2008में 'अष्टांगयोग-सिद्धांत एवं प्रयोग' के चार कार्यक्रम प्रथम आकर्षण बने। 'वैसाखी-विषु-पोंगल' का आयोजन 14-18 अप्रेल तक विविधरंगी परंपरागत भारतीय विधियों से किया गया। 'बॉलीवुड सिनेमा मुंबई' का सव्याख्या प्रस्तुतीकरण मई में हुआ। 'भारतीय पाक विद्या का सिद्धांत एवं प्रयोग' श्रीमती सुमा विजयकुमारन के द्वारा आयोजित जुलाई का कार्यक्रम रहा, जिसको कासा इंडिया के बाहर ग्रिगोरियस सेंटर में कराया गया और प्रसिद्ध तीन स्पेनी पाकशास्त्रियों के साथ करीब 40 प्रतिभागी उसमें शामिल हुए। दिसंबर को क्रिसमस से जुड़े कार्यक्रम—भारत में ईसाइयों का तीर्थाटन' विषयक प्रस्तुतीकरण रहा। 2009-सन् 2010 को नई पाठ्‌यचर्चा शुरू हुई और हिंदी संघ का भी नया कलेवर तैयार होने लगा। इनमें 'हिंदू मिथक' भारत के हिंदू एवं ईसाई तीर्थ, 'हिंदू समाज', 'भारत का भक्ति आंदोलन', 'भारतीय साहित्य' आदि विषयों के साथ-साथ दीवाली, बैसाखी, ओणम जैसे सांस्कृतिक समारोहों का भी आयोजन यथासमय होता रहा। नगरपालिका के कुछेक केंद्रों में 'तनावविमोचन कार्यशालाएँ', 'योग के विविध पाठ', 'हिंदू धर्म की प्रासंगिकता' विषयक प्रस्तुतियाँ भी होती रहीं।

इस प्रकार स्थायी हिंदी पीठ के होने से सामाजिक भी उसका काफी लाभ उठाते आया है। वे स्थानीय आचार्य के कार्यालय कासा इंडिया में अपनी इच्छापूर्ति और सहायता माँगने आया करते, कि हिंदी में अपनों का नाम लिखवाना, आशीर्वाद वचन लिखवाना, साक्षात्कार लेना आदि सौभाग्य समझने लगते थे। हिंदी संघ की कार्यविधियों में भी सभाभवन भर जाता था, और हिंदी अध्ययन और भारतीय संस्कृति से करीब का संबंध रखता था मानो यह सब उनकी जिंदगी का दूसरा मकसद हों। स्पेनी बच्चों और छात्रों को क्या अधिकांश सेवारत औरतें और पुरुषों को इन सभी कारोबारों में सक्रिय सहयोग लेते हुए देखकर कोई भी प्रतिनियुक्त हिंदी आचार्य उन अवसरों से हाथ धोना नहीं चाहेंगे।

सी.पी.वी, भूतपूर्व अतिथि आचार्य हिंदी
एशियाई अध्ययन केंद्र, वल्लदोलिद विश्वविद्यालय,
47005-वल्लदोलिद, स्पेन

□

15

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी

✍ डॉ. दिनेश श्रीवास्तव

आधुनिक ऑस्ट्रेलिया एक बहुसांस्कृतिक समाज है, जहाँ घरों में बोली जानेवाली भाषाओं की संख्या 400 है। ऑस्ट्रेलिया की सरकार न केवल आप्रवासियों की अपनी भाषा और संस्कृति बनाए रखने की अनुमति देती है बल्कि इस कार्य में उनकी सहायता भी करती है। परंतु ऐसा सदा नहीं था। सन् 1901 में ऑस्ट्रेलिया की सरकार ने 'श्वेत ऑस्ट्रेलिया' की नीति अपनाई थी। जिसके अनुसार, भारतीयों तथा एशिया, अफ्रीका आदि देशों के व्यक्तियों को ऑस्ट्रेलिया में प्रवासी के रूप में प्रवेश करने पर प्रतिबंध था। इस स्थिति में थोड़ा परिवर्तन सन् 1947 में भारत के ब्रिटेन से स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद आया जब भारत में पैदा हुए एंग्लोइंडियन तथा अंग्रेजों को ऑस्ट्रेलिया आने की अनुमति प्रदान की गई। सन् 1960 के अंतिम वर्षों में पहली बार भारत से डॉक्टरों, इंजीनियरों, शिक्षकों आदि को ऑस्ट्रेलिया में स्थाई रूप से निवास करने की अनुमति मिली। उसके बाद के वर्षों में कंप्यूटर विशेषज्ञों तथा अन्य व्यावसायिकों को भारत से ऑस्ट्रेलिया में आने दिया गया। 1980 में ऑस्ट्रेलियाई नियमों में कुछ और परिवर्तन हुए जिनके कारण ऑस्ट्रेलिया में बसे हुए भारतीयों के रिश्तेदारों का ऑस्ट्रेलिया आना अधिक आसान हो गया।

- डॉ. दिनेश श्रीवास्तव पिछले 25 वर्षों से अधिक समय से ऑस्ट्रेलिया में हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं।
- उन्होंने 1986 में यहाँ स्कूली बच्चों के लिए शिक्षा का प्रबंध किया और अनेक वर्षों के प्रयत्नों के पश्चात् 1994 में हिंदी भाषा को 12वीं कक्षा की सार्वजनिक परीक्षा में एक विषय के रूप में सरकारी मान्यता दिलवाने में सफल रहे।
- विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेज के बंजविक केंद्र में दस वर्षों तक हिंदी अध्यापक तथा संयोजक का कार्य किया; मेलबर्न के रेडियो 3 ई.ए. से प्रसारित होने वाले हिंदी कार्यक्रम का संयोजन किया; अनुवादकों तथा दुभाषियों की राष्ट्रीय संस्था नाटी द्वारा हिंदी को मान्यता प्राप्त करने के लिए हिंदी अनुवादकों तथा दुभाषियों के लिए परीक्षाओं का आयोजन किया।
- अपने सहयोगियों के साथ मिलकर उन्होंने हिंदी निकेतन नामक संस्था स्थापित की। 2010 में विक्टोरिया की सरकार ने डॉ. श्रीवास्तव को सम्मानित किया। इसके पहले 2009 में उन्हें ऑस्ट्रेलियन ऑफ द यर सम्मान के लिए भी मनोनीत किया गया था।
- भारतीय विद्या भवन (ऑस्ट्रेलिया) से भी उन्हें पुरस्कार मिल चुका है।
- पिछले सात वर्षों से डॉ. दिनेश मेलबर्न से प्रकाशित समाचार-पत्र साउथ एशियन टाइम्स के हिंदी परिशिष्ट 'हिंदी पुष्प' का संपादन कर रहे हैं।

सन् 1996 में ऑस्ट्रेलिया में हिंदीभाषियों की संख्या 35000 थी। अगले दस वर्षों में यह संख्या दुगनी हो गई। सन् 2006 में की गई जनगणना के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में 235000 भारतीय मूल के लोग थे, जिन 80000 हिंदीभाषी थे। सन् 2010 में भारतीय मूल के तथा हिंदीभाषी व्यक्तियों की संख्या और अधिक बढ़ गई होगी क्योंकि पिछले चार वर्षों में भारत से ऑस्ट्रेलिया आनेवालों, विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों की संख्या में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। ऑस्ट्रेलिया में भारतीय मूल के लोग कई देशों, उदाहरण के लिए फीजी, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, इंग्लैंड आदि से आए हैं। इसीलिए इन सबकी हिंदी भाषा में वे अंतर पाए जाते हैं, जो इन देशों में बसे हिंदी भाषी लोगों की भाषा में देखे जाते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी शिक्षा, प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर

ऑस्ट्रेलियन सरकार की भाषाई नीति के अनुसार सोमवार से शुक्रवार तक लगनेवाले सामान्य स्कूलों में केवल 8 चुनी हुई भाषाओं (4 यूरोपियन तथा 4 एशियाई) पढ़ाए जाने का प्रावधान है। इन भाषाओं का चुनाव ऐतिहासिक तथा आर्थिक कारणों से किया गया है और इनमें हिंदी सम्मिलित

नहीं है। इसीलिए हिंदी कक्षाएँ अधिकतर सप्ताहांत में लगती है। ये कक्षाएँ कुछ प्रदेशों (उदहारण के लिए विक्टोरिया) प्रादेशिक सरकार के शिक्षा विभाग के अंतर्गत चलती हैं परंतु अधिकतर ये कक्षाएँ हिंदी के प्रचार में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों अथवा संगठनों द्वारा चलायी जाती हैं। निजी रूप से चलायी जानेवाली हिंदी तथा अन्य सामुदायिक भाषाओं के विद्यालयों को बहुधा ऑस्ट्रेलिया की केंद्रीय सरकार से अनुदान मिलता है, जो इन विद्यालयों को चलाने के लिए काफी तो नहीं होता है परंतु सहायक होता है। केंद्रीय सरकार की एक योजना के अंतर्गत इन्हें 'सामुदायिक भाषा विद्यालय' (कम्युनिटी लैंग्वेजेज स्कूल) का नाम दिया जाता है। ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों में हिंदी इसी प्रकार के विद्यालयों में पढ़ाई जाती है।

माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षा में एक बड़ा परिवर्तन तब आया जब विक्टोरिया की सरकार ने सन् 1993 में 11वीं तथा 12 वीं कक्षा में हिंदी को हाई स्कूल में मान्यता प्रदान की। बाद में यह मान्यता ऑस्ट्रेलिया के अन्य प्रदेशों ने भी प्रदान की। परिणामस्वरूप, आज ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश प्रदेशों के विद्यार्थी उच्च माध्यमिक स्तर पर हिंदी पढ़ सकते हैं और 12 वीं कक्षा की राष्ट्रीय हिंदी परीक्षा में भाग ले सकते हैं।

सन् 1996 में ऑस्ट्रेलिया में हिंदीभाषियों की संख्या 35000 थी। अगले दस वर्षों में यह संख्या दुगनी हो गई। सन् 2006 में की गई जनगणना के अनुसार ऑस्ट्रेलिया में 235000 भारतीय मूल के लोग थे, जिन 80000 हिंदीभाषी थे। सन् 2010 में भारतीय मूल के तथा हिंदीभाषी व्यक्तियों की संख्या और अधिक बढ़ गई होगी क्योंकि पिछले चार वर्षों में भारत से ऑस्ट्रेलिया आनेवालों, विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों की संख्या में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। ऑस्ट्रेलिया में भारतीय मूल के लोग कई देशों, उदाहरण के लिए फीजी, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, इंग्लैंड आदि से आए हैं। इसीलिए इन सबकी हिंदी भाषा में वे अंतर पाए जाते हैं, जो इन देशों में बसे हिंदी भाषी लोगों की भाषा में देखे जाते हैं।

विक्टोरिया में हिंदी शिक्षा के विकास का इतिहास

जब मैं 1970 के दशक में ऑस्ट्रेलिया आया था, उस समय यहाँ प्राथमिक अथवा माध्यमिक स्तर के बच्चों के लिए हिंदी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं था। इसीलिए अपने पुत्र तथा पुत्री को हिंदी सिखाने के लिए मैंने उन्हें भारत सरकार के हिंदी निदेशालय, दिल्ली के पत्राचार विभाग द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिलवाया। 'हिंदी-प्रवेश' तथा 'हिंदी-परिचय' के दोवर्षीय पाठ्यक्रम आज भी उपलब्ध हैं परंतु मुझे इन में निम्नलिखित कमियाँ लगीं:-

1. ये पाठ्यक्रम मूल रूप से अहिंदीभाषी केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए तैयार किए गए थे जिनके लिए अपनी नौकरी बनाए अथवा पदोन्नति के लिए हिंदी जानना आवश्यक था। इसीलिए कई पाठ्यांशों और व्याकरण के नियमों को समझाने की भाषा वयस्कों के लिए उपयुक्त थी पर बच्चों के लिए अनुपयुक्त थी।
2. एक पाठ पर आधारित अभ्यास को पूरा करके भारत से त्रुटियाँ ठीक करके वापस लौटने में औसतन में एक महीना या उस से अधिक समय लग जाता था।
3. 'हिंदी प्रवेश' पाठ्यक्रम में प्रवेश करने की न्यूनतम आयु दस वर्ष थी। इसीलिए दस वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए यह पाठ्यक्रम अनुपयोगी था।
4. 'हिंदी-प्रवेश' अथवा 'हिंदी-परिचय' पाठ्यक्रमों की परीक्षा देने भारतीय उच्चायुक्त अथवा भारतीय वाणिज्य दूतावास के कार्यालय में जाना पड़ता था, जो सबके लिए सुविधाजनक नहीं था।

उपरोक्त कारणों से जब मेरे पुत्र तथा पुत्री ने केंद्रीय हिंदी

निदेशालय के पाठ्यक्रम पूरे कर लिए तो मुझे लगा कि अन्य बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए ऑस्ट्रेलिया में ही कुछ प्रबंध होना चाहिए। मैंने ऑस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रदेश की सरकर के शिक्षा विभाग से संपर्क किया तो पता चला कि शनिवार को 'सैटरडे स्कूल ऑफ मॉडर्न लैंग्वेजेज' जो अब 'विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज' के नाम से जाना जाता है, में अन्य सामुदायिक भाषाओं को पढ़ाए जाने का प्रबंध है, वहाँ हिंदी पढ़ाए जाने का भी प्रबंध किया जा सकता है। परंतु इसके लिए हिंदी सीखने के इच्छुक बच्चों तथा उनके माता-पिता के नाम-पता देने होंगे, विक्टोरिया में हिंदीभाषी समुदाय की ओर से प्रार्थना-पत्र देना होगा और हिंदी शिक्षक का प्रबंध करना होगा। लगभग तीन वर्षों के प्रयत्न के पश्चात्, सन् 1986 में विक्टोरिया में मेल्बर्न के ब्रंजाविक उपनगर में प्राथमिक स्तर पर सबसे पहली हिंदी कक्षाएँ आरंभ हुईं। इस कक्षा के प्रथम शिक्षक स्वर्गीय डॉ. रमाशंकर पांडेय थे और उनकी अनुपस्थिति में उनकी धर्मपत्नी, श्रीमती इंदुमती पांडेय, जो स्वयं एक अनुभवी अध्यापिका थीं, इस कक्षा को पढ़ाया करती थीं। विद्यार्थियों की संख्या कम होने के कारण इसके बंद हो जाने का भय हमेशा बना रहता था। विक्टोरिया में हिंदी शिक्षण को अधिक प्रोत्साहन तब मिला जब दस वर्षों के प्रयत्न के पश्चात, 1993 में हिंदी को 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं में हिंदी के पठन-पाठन को सरकारी मान्यता मिली। अब ऑस्ट्रेलिया के अधिकांश नगरों में विद्यार्थी हाई स्कूल की 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं में न केवल हिंदी पढ़ सकते हैं बल्कि 12वीं कक्षा में हिंदी विषय लेकर हाई स्कूल उत्तीर्ण करने पर उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए उन्हें बोनस अंक भी प्राप्त होते हैं।

11वीं तथा 12वीं कक्षाओं में हिंदी को सरकारी मान्यता दिलवाने में जिन व्यक्तियों ने मेरी सहायता की, उनमें श्रीमती अन्ना कोवियस, श्रीमती इवाल बायरन, श्रीमती सुधा जोशी, स्वर्गीय डॉ. रमाशंकर पांडेय, श्रीमती इंदुमती पांडेय तथा श्रीमती मंजीत ठेठी का योगदान प्रमुख था। सन् 1993 में हाई स्कूल स्तर पर हिंदी को सरकारी मान्यता मिलने से लेकर अब तक श्रीमती मंजीत ठेठी 'विक्टोरिया स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज' में 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं के विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाती रही हैं। बाद में हिंदी शॉन अध्यापन के कार्य में कई शिक्षकों ने अपना योगदान दिया। इनमें डॉ. नरेंद्र अग्रवाल व श्रीमती अनुश्री जैन का योगदान उल्लेखनीय है।

हाई स्कूल स्तर पर हिंदी को सरकारी मान्यता प्राप्त होने के बाद एक प्रमुख समस्या सामने यह आई कि ऑस्ट्रेलिया के पाठ्यक्रम के अनुरूप हिंदी में कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। 'नेशनल सेंटर ऑफ साऊथ एशियन स्टडीजढ' की निदेशिका श्रीमती मरीका विक्जियानी ने इस संबंध में सहायता की और हिंदी में पाठ्यपुस्तक तैयार करने के लिए मेल्बर्न के लट्रोब विश्वविद्यालय को अनुदान दिया गया। श्रीमती वर्मा टंडन ने यह पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक था—'ऑस्ट्रेलिया में समकालीन हिंदी'। यह पुस्तक दो भागों में प्रकाशित हुई। इस परियोजना के संचालन तथा पुस्तक के संपादन में श्रीमती सुधा जोशी तथा श्री रिचर्ड डिलेसी ने विशेष सहयोग दिया।

पाँच वर्षों के पश्चात् पाठ्यक्रम में परिवर्तन हुए। परिणामस्वरूप एक नई पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता हुई। 'विक्टोरिया स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज' के तत्वावधान में दो भागों में 'हिंदी नक्षत्र' नामक एक दूसरी पाठ्यपुस्तक सन् 2006 और 2007 में प्रकाशित की गई। मेरे साथ इस पुस्तक का संपादन श्रीमती सुधा जोशी ने किया। इस पुस्तक को लिखने में श्री रिचर्ड डिलेसी, डॉ. नरेंद्र अग्रवाल, श्रीमती मंजू अग्रवाल, श्रीमती सुधा अग्रवाल तथा मृदुला कक्कड़ ने सहयोग दिया। इस पुस्तक को तकनीकी रूप से तैयार करने और कंप्यूटर साज-सज्जा के प्रस्तुतीकरण का उत्तरदायित्व भी श्रीमती मृदुला कक्कड़ ने सँभाला।

विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षा

कैनबरा स्थित 'ऑस्ट्रेलियन नैशनल यूनिवर्सिटी' में हिंदी काफी समय से पढ़ाई जाती रही है। यहाँ का हिंदी विभाग प्रोफेसर रिचर्ड मग्रेगर द्वारा स्थापित किया गया था। यहाँ हिंदी विषय स्नातक तथा परास्नातक पर अध्ययन के लिए उपलब्ध है।

यहाँ 'एशियन स्टडीज' संकाय के अंतर्गत स्नातक स्तर पर दो पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं—तीन वर्षीय 'बैचलर ऑफ एशियन स्टडीज (हिंदी) और चार वर्षीय 'बैचलर ऑफ एशियन स्टडीज विशेषज्ञ

(हिंदी), जिसमें तीसरा वर्ष एक भारतीय विश्वविद्यालय में उच्च स्तर पर हिंदी भाषा का अध्ययन शामिल है। चौथे वर्ष में विद्यार्थी हिंदी के अतिरिक्त भारत के बारे में विशिष्ट अध्ययन करते हैं।

इसके अतिरिक्त, मेल्बर्न के 'लट्रोब विश्वविद्यालय' में भी स्नातक स्तर पर हिंदी पढ़ने की सुविधा उपलब्ध है, जहाँ 'ओपेन यूनिवर्सिटी' द्वारा दूर-शिक्षा-प्रणाली द्वारा हिंदी शिक्षा उपलब्ध है। कई अन्य विश्वविद्यालयों, उदाहरण के लिए सिडनी विश्वविद्यालय तथा मेल्बर्न के चार विश्वविद्यालयों—मेल्बर्न, मोनाश, लट्रोब तथा रायल मेल्बर्न इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नालोजी—में स्नातक स्तर पर समय-समय पर हिंदी पढ़ाई जाती रही है। खेद की बात है कि सिडनी विश्वविद्यालय में जहाँ हिंदी सन् 2010 में पढ़ाई जा रही है, अगले वर्ष से बंद होने की संभावना है। सन् 2011 से हिंदी विषय का अध्ययन केवल कैनबरा की'ऑस्टेलियन नैशनल यूनिवर्सिटी' तथा मेल्बर्न के लट्रोब विश्वविद्यालय में उपलब्ध होगा।

90 के दशक में हिंदी को अच्छा प्रोत्साहन मिला था, जब मेल्बर्न में स्वर्गीय डॉ. रमाशंकर पांडेय तथा श्रीमती सुधा जोशी ने विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी के पठन-पाठन में विशेष योगदान दिया। श्रीमती सुधा जोशी आज भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं।

वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा

वयस्कों के लिए हिंदी शिक्षा के स्रोत बदलते रहे हैं। 1970 के दशक में, हिंदी 'टेक्निकल एंड फर्दर एजुकेशन', (टेफ) के कुछ केंद्रों में हिंदी शिक्षा का प्रबंध था तथा 1980 के दशक के उत्तरार्ध में 'विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज' की कक्षाओं में स्कूली बच्चों के साथ-साथ वयस्क विद्यार्थी भी प्रवेश ले सकते थे। इसके अतिरिक्त, कुछ विश्वविद्यालय (उदाहरण के लिए, क्वींसलैंड विश्वविद्यालय) भी भूतकाल में वयस्कों के लिए हिंदी-शिक्षा प्रदान करते रहे हैं। परंतु विभिन्न प्रांतों में, वयस्कों के लिए हिंदी-शिक्षा का प्रमुख स्रोत वयस्क शिक्षा एजेंसियों, उदाहरण के लिए विक्टोरिया में 'काउंसिल ऑफ एडल्ट एजुकेशन' रही हैं। वयस्कों के लिए अधिकांश पाठ्यक्रम, राबर्ट मीरव: की पुस्तक 'टीच योरसेल्फ हिंदी' पर आधारित रहे हैं।

हिंदी प्रचारक संस्थान

1990 के दशक के आरंभिक वर्षों में ऑस्ट्रेलिया के विभिन्न शहरों में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थाएँ स्थापित हुईं। उदाहरण के लिए, मेल्बर्न में हिंदी निकेतन तथा सिडनी व पर्थ में हिंदी समाज की स्थापना हुई। इनकी गतिविधियों में काफी समानताएँ थीं। होली, दिवाली आदि भारतीय त्योहारों को मनाना, हिंदी कक्षाओं का प्रबंध करना, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना आदि। किसी सीमा तक ये संस्थाएँ आज भी यह कार्य कर रही हैं। मेल्बर्न के हिंदी निकेतन के एक विशेष कार्यक्रम का उल्लेख करना असंगत न होगा। यह कार्यक्रम है—'वी.सी.ई. समारोह' जिसमें हर वर्ष हिंदी विषय लेकर 12वीं कक्षा उत्तीर्ण करनेवाले विद्यार्थियों को पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाता है। इसी प्रकार पर्थ के हिंदी समाज द्वारा आयोजित 'फुलवारी' कार्यक्रम बच्चों को अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर प्रदान करता है। ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख शहरों में कवि गोष्ठियाँ तथा कवि-सम्मेलन भी इन संस्थाओं द्वारा आयोजित की जाती हैं। मेल्बर्न में शारदा कला केंद्र द्वारा लंबे समय तक हर दूसरे महीने साहित्य-संध्या तथा संगीत-संध्या आयोजित की जाती रही हैं। पिछले दो वर्षों से साहित्य संध्या आयोजित करने का काम ऐच्छिक रूप से एक उत्साही वर्ग ने ले लिया है, जिसका संयोजन डॉ. नलिन शारदा तथा हरिहर झा कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से सिडनी में 'भारतीय विद्या भवन ऑस्ट्रेलिया' भी भारतीय संस्कृति तथा हिंदी-उर्दू के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है। 14 सितंबर, 2010 को हिंदी-दिवस पर 'न्यू साऊथ वेल्स' संसद् भवन में एक समारोह में 47 हिंदी-उर्दू के कवियों/शायरों की कृतियाँ 'गुलदस्ता' शीर्षक की पुस्तक का विमोचन तथा इन भाषाओं तथा भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में योगदान देनेवाले व्यक्तियों को सम्मानित करके एक नया कीर्ति स्तंभ कायम किया है। इसके पहले जनवरी 2010 में रेखा राजवंशी द्वारा संपादित, ऑस्ट्रेलिया के 11 हिंदी कवियों की कविताओं का संग्रह 'बूमरैंग' किताब महल द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस प्रकार ऑस्ट्रेलिया में हिंदी-उर्दू के प्रचार-प्रसार के इतिहास में सन् 2010 एक महत्त्वपूर्ण सन् प्रमाणित हुआ।

हिंदी समाज, सिडनी

उद्देश्य

- हिंदी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति के रसास्वादन तथा इनका आनंद उठाने को प्रोत्साहित करना।
- आगामी पीढ़ियों के लिए हिंदी संस्कृति की रक्षा के लिए इसके लाभों का प्रचार करना।
- मातृभाषा के रूप में हिंदी को बनाए रखने में योगदान देना।
- हिंदी भाषा सीखने तथा दूभाषीयता के प्रति सकारात्मक रवैए का प्रचार करना।
- सिडनी के युवाओं में सांस्कृतिक जागरूकता तथा सकारात्मक आत्म पहचान विकसित करना।
- सिडनी में बच्चों, युवाओं तथा वयस्कों के नेटवर्कों को मजबूत करना और उनका प्रसार करना।

सिडनी समाज कैसे काम करता है

सन् 1989 में स्थापित हिंदी समाज के पास प्रशिक्षित हिंदी शिक्षक हैं जो हिंदी पढ़ाते हैं। इन उददेश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षकों के साथ विद्यार्थियों के माता–पिता मिलजुलकर काम करते हैं। सिडनी समाज की प्रबंधक समिति में बहुत कुशल तथा उत्साही लोग हैं जो विद्यालय को भविष्य की ओर ले जाने के लिए उत्तरदाई हैं। यह विद्यालय 4 वर्ष की आयु के बच्चों से लेकर 17 वर्ष के किशोरों को शिक्षा प्रदान करता है। सिडनी समाज सिडनी में अन्य सामुदायिक संगठनों के साथ वयस्कों के लिए हिंदी की प्रारंभिक कक्षाएँ प्रारंभ करने के लिए प्रयत्नशील है।

हिंदी समाज

- पाठ्यक्रम प्रदान करता है, जिसमें आपेक्षित परिणामों का वर्णन होता है।
- जिस वातावरण में हमारे विद्यार्थी पल रहे हैं, उसको पहचानता है।
- विद्यार्थियों के लिए अवसर प्रदान करना ताकि वे सामुदायिक गतिविधियों में क्रियात्मक रूप से भाग ले सकें।
- प्रशिक्षित शिक्षकों के एक पूल (वर्ग) को नियुक्त करना।
- शिक्षकों के विकास के लिए नियमित रूप से कार्यशालाओं का आयोजन करना।
- हिंदी समाज एक मान्यताप्राप्त अलाभकारी संगठन है।
- हिंदी समाज के 150 से अधिक सदस्य हैं।

गतिशील सामुदायिक

कक्षा 1 से 5 तक के लिए पाठ्यक्रम प्रदान करने के अतिरिक्त हिंदी समाज विभिन्न प्रकार के अनुभव प्रदान करता है जो विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विकास में और अपने समुदाय के सदस्यों तथा सिडनी के वृहत समुदाय से जोड़ने की योग्यता विकसित करने में सहायता करते हैं।

हिंदी समाज होली, बाल–दिवस, 'इंडिया–ऑस्ट्रेलिया फ्रेंडशिप फेयर' और अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों, जैसे बहुसांस्कृतिक दिवाली मेला में भाग लेता है। जहाँ भी शिक्षा संबंधी प्रदर्शनों का अवसर होता है, हिंदी समाज उनमें सक्रिय भाग लेता है।

हिंदी समाज के पाठ्यक्रम में समुदाय के छोटे–बड़े सभी लोगों के लिए स्थान है जो संगीत, कला, नाटक आदि में अपना विशिष्ट कौशल एक–दूसरे के साथ बाँटने के लिए तैयार हैं।

हिंदी–समाज, सिडनी की हिंदी–कक्षाएँ गिर्रावीन हाईस्कूल, गिर्रावीन, न्यू साउथ वेल्स में सप्ताहांत में सुबह 10 से 12 बजे तक लगती हैं।

हिंदी समाज की गतिविधियाँ

सन् 1993 से हिंदी समाज द्वारा आयोजित कुछ कार्यक्रमों की सूची नीचे दी गई है—

स्थानीय प्रतिभा, जिसमें हिंदी कविता, नाटक तथा बच्चों के लोक–नृत्य शामिल हैं, उनको प्रोत्साहित करने के लिए साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन।

सिडनी में पंडित हरी प्रसाद चौरसिया का बाँसुरी–वादन।

बच्चों के लिए हिंदी कक्षाओं का आयोजन।

हिंदी–कविता को प्रोत्साहित करने के लिए और मुंबई की गंदी बस्तियों के लिए धन एकत्रित करने के लिए फिल्म– तारिका, शबाना आज़नी के साथ एक शाम।

ऑस्ट्रेलिया में भारतीय मूल के आप्रवासियों के जीवन तथा कार्य के बारे में भारतीय टेलीविजन पर एक त.वि.टी.वी. प्रस्तुतीकरण।

प्रसिद्ध हिंदी कवि नीरज के साथ एक शाम।

हर वर्ष, नवंबर में बाल-दिवस के अवसर पर बच्चों को सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना।

सिडनी में उत्तर तथा दक्षिण भारत की संगीत शैलियों का मिश्रण, प्रसिद्ध कलाकारों, डॉ. राजम, उस्ताद जाकिर हुसैन तथा साथियों के साथ एक शाम।

सिडनी में स्टेज तथा सामुदायिक रेडियो पर सामुदायिक नाटकों का मंचन।

सिडनी, कार्निवाल में, विशेषकर साहित्यिक कार्यक्रमों में अंग्रेज़ी तथा हिंदी कवियों द्वारा हिंदी-समाज का प्रतिनिधित्व।

हिंदी-पुस्तकों के पुस्तकालय का संगठन।

सिडनी विश्वविद्यालय के एशियन स्टडीज विभाग के साथ मिल-जुलकर हिंदी तथा उर्दू के स्नातक स्तर के पाठ्यक्रमों के प्रचार करना

19 सितंबर, 1998 को प्रोफेसर अशोक चक्रधर, सुशील कुमार चडा उर्फ 'हुल्लड़ मुरादाबादी' आदि के साथ हास्य-व्यंग्य कवि सम्मेलन का आयोजन

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी मीडिया

समाचार-पत्र

ऑस्ट्रेलिया में अंग्रेज़ी में अनेक भारतीय मासिक समाचार-पत्र निकलते हैं। केवल मेल्बर्न से ही एक दर्जन से अधिक ऐसे समाचार-पत्र निकलते हैं। इनमें से केवल एक मासिक समाचार-पत्र है, जिसमें दो पृष्ठ हिंदी के होते हैं। कुछ अन्य समाचार-पत्र में अन्य भारतीय भाषाओं, उदाहरण के लिए तमिल, सिंधी,पंजाबी के भी कुछ पृष्ठ होते हैं। ऑस्ट्रेलिया से 'इंडिया ञ्ञ मेल्बर्न' नामक समाचार-पत्र में अंग्रेज़ी, गुरुमुखी तथा हिंदी में भी पाठन सामग्री होती है। हाल में सिडनी से 'हिंदी गौरव' नामक हिंदी समाचार प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ है।

रेडियो

'स्पेशल ब्राडकास्टिंग सर्विस' या संक्षेप में 'एस.बी.एस' रेडियो राष्ट्रीय स्तर पर प्रति सप्ताह 4 घंटे हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित करता है। हाल ही भारत से सीधे आधे घंटे का हिंदी में समाचार का प्रसारण भी आरंभ हुआ है। इसके अतिरिक्त कई सार्वजनिक तथा निजी रेडियो स्टेशन भी हिंदी कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

हिंदी चलचित्र

'एस.बी.एस' टेलीविजन समय-समय पर हिंदी चलचित्र प्रसारित करता रहा है। अब तो हिंदी चलचित्र ऑस्ट्रेलिया के प्रमुख नगरों के सिनेमाघरों में भी देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय दुकानों से हिंदी चलचित्रों के वीडियो-कैसेट तथा डी.वी.डी. किराए पर लिए जा सकते हैं या खरीदे जा सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों से भारत के टेलीविजन चैनलों, उदहारण के लिए जी स्टार, टाइम्स आदि चैनलों द्वारा भी हिंदी कार्यक्रमों का प्रसारण उपलब्ध है।

सांस्कृतिक कार्यक्रम

कई स्थानीय संस्थाएँ हिंदी साहित्य, संगीत तथा नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करती हैं और भारत से भी कलाकारों को आमंत्रित करती हैं। इसके अतिरिक्त त्योहारों के अवसर पर विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम, मेले आदि भी आयोजित किए जाते हैं।

संक्षेप में, ऑस्ट्रेलिया में हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहा है, यद्यपि अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। आशा है कि भविष्य में ऑस्ट्रेलिया में हिंदी का पठन-पाठन करनेवाले लोगों की संख्या में वृद्धि होगी और भारत के आर्थिक शक्ति में उभरने के साथ-साथ ऑस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों में न केवल भारतीय उमूल के व्यक्तियों में बल्कि वहाँ के स्थानीय लोगों में भी हिंदी की लोकप्रियता बढ़ेगी।

Melbourn,
Australia
□

बेलारूस में मेरी हिंदी : बचकानी अभिरुचि से लेकर व्यावसायिक कार्य तक

"भारतवर्ष बहुत बातें करने के लायक है।"
—**रेगीना याकुनोव्यकाया**

✍ **आलेसिया माकोव्सकाया**

सन् 1983। मिन्स्क नगर, बेलारूस। मैं केवल छह साल की ही हूँ। अपनी माँ के साथ पहली बार भारतीय फिल्म देखने के लिए जाती हूँ। फिल्म का नाम है 'आवारा'। भारतीय कपड़ों की विचित्रता और रंगीनी, संगीत की सुश्राव्यता और गायकों के सुरीले स्वरों से प्रभावित होने के साथ-साथ, मैं उसी हिंदी भाषा से प्रभावित हूँ, जो मैं पहली बार सुनती हूँ। अजीब बात है, लेकिन मुझे लगने लगता है कि मैंने इस भाषा को पहले कहीं सुना है और पहले से जानती हूँ। और सच-मुच, हिंदी की परिचित भी न होते, मैं नायक के साथ गाती हूँ, आवारा हूँ, आवारा हूँ। छोटी उम्र में होने के बावजूद मैं सोचने लगती हूँ कि शायद मैं पूर्व-जन्म में भारत में ही, इन सुंदर लोगों के समीप रहती थी, ये रंगीले कपड़े पहनती थी, ये प्यारे-प्यारे गीत गाती थी, और इस अतिसुंदर भाषा में बोलती थी। मानो वहाँ भारत में मेरा कुछ काम रह गया, जो मुझे इसी जन्म में पूरा करना अनिवार्य है। मानो इस जन्म में मेरा लक्ष्य है भारत की संस्कृति का पूरा स्मरण उठाना और आगे चलकर उससे बेलारूसी लोगों का परिचय कराना।

- अलेसिया माकोव्स्काया का जन्म बेलारूस, मिन्स्क में 1977 में हुआ।
- इन्होंने केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा तथा अंतरराष्ट्रीय भाषा संस्थान, मिन्स्क में शिक्षा ग्रहण की। पिछले 12 वर्षों से हिंदी अध्ययन कर रही अलेसिया ने बेलारूसी कविताओं एवं आलेखों (संस्कृति, धर्म, दर्शन पर आधारित) का हिंदी अनुवाद किया है।
- 2005 से हिंदी सीखने वाले विदेशी विद्यार्थियों के सम्मेलन में अपनी भागीदारी दे चुकी अलेसिया अनुवाद (बेलारूस, रशिया, भारत, आदि देशों में) एवं फ्रीलांसर हैं। वे हिंदी शिक्षण कार्य करती हैं और फिलहाल हिंदी पाठ्य-पुस्तक की परियोजना पर कार्य कर रही हैं।

तब से मैं भारत और उसकी संस्कृति से एक पल के लिए जुदा नहीं हूँ।

शुरू में यह सिर्फ फिल्मों के प्रति बचकानी अभिरुचि थी। क्योंकि उस समय बेलारूस में फिल्मों के अलावा भारतीय संस्कृति, विचार-धारा, रहन-सहन और रीति-रिवाजों से परिचय लेने का दूसरा कोई उपाय नहीं था।

मैं सयानी हो जाती थी। स्कूल की शिक्षा समाप्त की, विश्वविद्यालय में प्रवेश किया, फिर स्कूल की अध्यापिका बन गई। लगता था कि मुझे बचकानी अभिरुचि छोड़नी ही होगी , लेकिन ऐसा नहीं हुआ। पूर्व-जन्म का स्मरण ढीला नहीं हुआ। कालक्रम से मुझ में इस मनोहर देश की संस्कृति का अध्ययन करने की इच्छा बढ़ती जाती थी। मैंने भारतीय नृत्य सीखना शरू किया। कभी-कभी मिन्स्क में भारतीय दूतावास आती थी, जहाँ मैं 'भारत दर्शन' पत्रिकाएँ लेकर, उनसे भारतीय कला, थिएटर, सिनेमा, इतिहास, भुगोल आदि के बारे में पूछती थी।

लेकिन मैं यह भी समझती थी कि मैं हिंदी भाषा का अध्ययन किए बिना भारत की संस्कृति का पूरा ज्ञान प्राप्त कर नहीं पाऊँगी। किसी भी देश की संस्कृति के सभी पहलुओं को जानने के लिए इस देश की भाषा भी सीखना अनिवार्य है। 18 सन् की आयु में मैंने सोचा कि पूरी गंभीरता से हिंदी सीखने का समय आ गया। मैं बेलारूस और मिन्स्क में हिंदी पाठ्यक्रम या ट्यूटर ढूँढने लगी। लेकिन बहुत जल्दी यह समाप्त हो गया, क्योंकि केवल मिन्स्क में नहीं बल्कि बेलारूस में भी कोई विश्वविद्यालय या स्कूल नहीं है, और न हिंदी

कक्षा या पाठ्यक्रम है। कोई व्यावसायिक ट्यूटर भी नहीं है। इतना ही नहीं, बेलारूस में अभी तक कोई अपनी पाठ्यपुस्तक, स्वयं शिक्षक या शब्दकोश भी नहीं है। जो पाठ्यपुस्तकें बेलारूस में मौजूद हैं वे सब रूस से आते हैं। उन्हें पाना मिन्स्क में भी बहुत मुश्किल है। और वे बहुत महँगे भी होते हैं। मेरी निराशा की सीमा नहीं थी, कि मैं हिंदी सीखने की अपनी प्यास कैसे बुझा सकती हूँ। मैं दूसरों को भारत की जानकारी कैसे दे सकती हूँ यदि उसकी भाषा भी न जानती।

और सचमुच मेरा भाग्य खुल गया। उसी समय संयोगवश मुझे जूलिया नामक हिंदी की एक अच्छी अध्यापिका मिली। कई साल मैं उसकी सहायता से हिंदी पढ़ रही थी। उनके मुख से निकले एक-एक शब्द को मैं बड़े ध्यान से सुनती थी, जैसे वे शब्द न होकर कोई अनमोल रत्न हों। उन्होंने मुझे अपनी पाठ्यपुस्तक तथा शब्दकोश, किताबें और उनके कापियाँ लाकर दी, जो रूस और भारत से मँगाती थी। पढ़ाई में मेरे सामने कोई भी बाधा न थी। न अध्यापिका का दूसरे नगर में रहना, न पढ़ाई की महँगाई, न मेरे अध्यापक-विश्वविद्यालय में परीक्षाएँ। मुझे अच्छी तरह याद है कि हिंदी के पाठ के बाद ,जब मैं रात को घर लौटती तो केवल तीन-चार घंटे सोती थी, फिर अध्यापन-शास्त्र की किताबें पढ़ती थी और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के लिए जल्दी करती थी। और फिर से हिंदी के अध्ययन में लीन हो जाती थी। पाठ के अभ्यासों में मुझे सबसे ज्यादा क्या पसंद था? इसका जवाब तो बिल्कुल सरल है। वह था हिंदी भाषा में भारतीय फिल्म देखना या गीत सुनना और फिर उसका अनुवाद करना। और मैं अपनी प्रसन्नता कैसे रोक सकती थी, जब मैं प्रतिपाठ फिल्मों में और गीतों में अधिकाधिक शब्द समझती थी। सन् 2004 में मुझे भारत में विदेशी छात्रों के लिए एक हिंदी पाठ्यक्रम के बारे में पता चला। और मेरी अध्यापिका की सहायता से मुझे हिंदी का अपना स्तर बढ़ाने का सुनहरा अवसर मिला, अर्थात केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में पढ़ना। मैं बहुत खुश थी। ऐसा लगा कि मैं अपना घर लौट आई हूँ। संस्थान में न केवल हिंदी, भारतीय जीवन और संस्कृति का विश्लेषण करने का अवसर पाया, बल्कि वहाँ मैं ने पहली बार हिंदी से रूसी और रूसी से हिंदी लेखों का अनुवाद करने की कोशिश की। तथा मैं अपना एक और पुराना सपना पूरा कर पाई : मैंने हिंदी के प्रति अपनी अभिरुचि एक अन्य पुरानी अभिरुचि यानी बेलारूसी कविता से जोड़ दी। अर्थात् मैंने बेलारूसी कवि-राज माक्सीम बोग्दानोविच की कई कविताओं का अनुवाद किया। उसके अलावा मुझ जैसे पढ़ रहे विदेशी छात्रों के कांग्रेस में, जो भारत के राष्ट्रपति के प्रोत्साहन से चलाया गया था, भाग लेने का सौभाग्य मिला। और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि मैं देशवासियों, मूल-भाषियों से हिंदी ही में बातें कर सकती थीं।

सन् 1983। मिन्स्क नगर, बेलारूस। मैं केवल छह साल की ही हूँ। अपनी माँ के साथ पहली बार भारतीय फिल्म देखने के लिए जाती हूँ। फिल्म का नाम है 'आवारा'। भारतीय कपड़ों की विचित्रता और रंगीनी, संगीत की सुश्राव्यता और गायकों के सुरीले स्वरों से प्रभावित होने के साथ-साथ, मैं उसी हिंदी भाषा से प्रभावित हूँ, जो मैं पहली बार सुनती हूँ। अजीब बात है, लेकिन मुझे लगने लगता है कि मैंने इस भाषा को पहले कहीं सुना है और पहले से जानती हूँ। और सच-मुच, हिंदी की परिचित भी न होते, मैं नायक के साथ गाती हूँ, आवारा हूँ, आवारा हूँ। छोटी उम्र में होने के बावजूद मैं सोचने लगती हूँ कि शायद मैं पूर्व-जन्म में भारत में ही, इन सुंदर लोगों के समीप रहती थी, ये रंगीले कपड़े पहनती थी, ये प्यारे-प्यारे गीत गाती थी, और इस अतिसुंदर भाषा में बोलती थी। मानो वहाँ भारत में मेरा कुछ काम रह गया, जो मुझे इसी जन्म में पूरा करना अनिवार्य है।

घर लौटने के बाद मैंने देखा कि बेलारूस में अभी भी कोई हिंदी ट्यूटर नहीं है और हिंदी कहीं भी पढ़ाई नहीं जा रही है। कोई व्यवसायिक हिंदी का अनुवादक भी नहीं हैं। मैं सोचने लगी कि मैं यह स्थिति कैसे

बदल सकती हूँ। मैं बेलारूस में हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए क्या कर सकती हूँ? जो लोग हिंदी नहीं जानते मैं उनका हिंदी से परिचय कैसे करा सकती हूँ? लेकिन यह भी नहीं जानती कि शरू ही कहां से करूँ। तभी मैंने फैसला किया कि मैं उन सभी को, जिसकी इच्छा हो, हिंदी खुद क्यों न पढ़ाऊँ। सबसे पहले इच्छुक लोगों को इकट्ठा करने के लिए मैंने अखबारों में, विभिन्न इंटरनेट साइटों पर, पुस्तकालयों, शैक्षिक और सांस्कृतिक संस्थानों में विज्ञापन देना शुरू किया। दुर्भाग्यवश आरंभ में कोई बड़ा परिणाम नहीं मिला। और इसके कई कारण थे। पहला कारण यह था कि ऐसे विज्ञापन समाचार–पत्रों में बिरले ही प्रकाशित किए जाते थे। दूसरा कारण यह था कि बेलारूस में उन लोगों की संख्या अधिक नहीं थी जो हिंदी सीखना चाहते हैं। और जो लोग हिंदी सीखना चाहते थे, उनमें से बहुत ऐसे थे, जो बेलारूस के अन्य नगरों में या दूरदराज क्षेत्रों में रहते थे और हफ्ते में कई बार पाठ लेने के लिए मिन्स्क आया करना उनके लिए मुश्किल था। इन कारणों के बावजूद मैं मिन्स्क में कई उत्साहियों को इकट्ठा कर पाई और अब मुझे फिर से कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

सबसे पहली समस्या यह थी कि मिन्स्क में हमारी पढ़ाई के लिए कक्षा ढूँढना काफी मुश्किल था। मैं उसे मिन्स्क की सांस्कृतिक संस्थाओं, व्यापार केंद्रों आदि में ढूँढने लगी। और हर जगह सिर्फ एक ही जवाब था कि मेरे छात्रों की संख्या बहुत कम हैं और संस्था सिर्फ कुछ लोगों के लिए कोई कक्षा नहीं दे सकती। साथ ही इस प्रकार के कक्षों का किराया बहुत महँगा होता है, जिसका मतलब है कि इसमें पढ़ाई भी बहुत महँगी पड़ेगी। परिणाम यह हुआ कि मैंने अपने छात्रों को बेलारूस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में जमाना शुरू किया और धीरे–धीरे वही हमारी पाठशाला बन गई। और जो लोग मिन्स्क नहीं आ सकते थे, उनको मैंने इंटरनेट द्वारा पढ़ाने का फैसला किया। मैंने इंटरनेट में विज्ञापन दिया और जल्द ही कई लोग मिले, जिनको मैं स्काइप, याहू, आदि सॉफ्टवेयर्स द्वारा हिंदी पढ़ाने लगी। आगे चलकर ऑनलाइन पाठ लेने के लिए न केवल बेलारूस से अपितु अन्य देशों से (रूस, यूक्रेन, कजाखस्तान) भी छात्र मेरे पास आने लगे।

फिर मेरे सामने पाठ्यपुस्तकों की समस्या आई। अच्छी पाठ्यपुस्त ढूँढने में मुझे बहुत समय लग गया। मिन्स्क में मुझे एक भी पाठ्यपुस्तक को नहीं मिली। मुझे उन्हें मास्को से माँगाना पड़ा। सौभाग्यवश मेरे पास मेरी अपनी पुस्तकें और कापियाँ रह गईं जिससे मैं खुद हिंदी पढ़ती थी। इसके अलावा मैं भारत से कुछ अच्छी किताबें लाई थी। मैं इन किताबों की प्रतियाँ करके या तो अपने छात्रों को देती थी, या उन्हें इंटरनेट से भेजती थी।

पहली पाठ्य पुस्तक, जिसकी सहायता से मैंने अपने छात्रों को पढ़ाना शुरू किया, एक रूसी प्रोफेसर ओलेग उल्त्सिफेरोव द्वारा लिखी गई है। यह वहीं पाठ्य पुस्तक थी, जिसकी सहायता से मैं खुद हिंदी सीखती थी। इसके कई सकारात्मक गुण हैं। यह पुस्तक लिखित और मौखिक अभिव्यक्ति में दक्षता उत्पन्न करती है। इसके अलावा, रूस में यह पहली पाठ्यपुस्तक है जो देश–ज्ञान पर आधारित है। इसमें भारत के रहन–सहन, इतिहास, संस्कृति आदि के बारे में जानकारी शामिल है। प्रत्येक पाठ का अपना ही विषय है। प्रत्येक टेक्स्ट के अंत में नए शब्द हैं। प्रत्येक शब्द का न केवल अनुवाद, बल्कि ध्वनि–लेखन तथा संज्ञाओं का लिंग और क्रियाओं का भेद (सकर्मक या अकर्मक) बताया गया है। प्रत्येक टेक्स्ट की टिप्पणियाँ भी हैं। प्रत्येक पाठ में व्याकरण और टेक्स्ट के अभ्यास भी हैं। अभ्यास इस प्रकार के हैं : प्रत्येक नए शब्द को दस दस, पाँच–पाँच या दो–दो बार लिखना, हिंदी से रूसी में तथा रूसी से हिंदी में शब्दों या टेक्स्ट का अनुवाद करना, क्रियाओं के सामान्य रूप से कृदंतों के रूप बनाना, रिक्त स्थानों को भरना, सवालों के जवाब देना, कहानी सुनाना, आदि।

बस एक ही वर्ष में छात्र हिंदी का लगभग पूरा व्याकरण सीख सकते हैं। लेकिन इस पाठ्यपुस्तक के नकारात्मक गुण भी हैं। यह विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए अधिक उचित है, लेकिन नौसिखियों तथा भाषा खुद सीखनेवालों के लिए कम। इस पाठ्यपुस्तक में अभ्यास जो हैं वे काफी नीरस और उबाऊ हैं। प्रत्येक पाठ में अधिक व्याकरण है, और वह अत्यंत जटिल वाक्यों और शब्दों से समझाया जाता है, जो समझने के लिए बहुत मुश्किल हैं। इसके अतिरिक्त इस पाठ्यपुस्तक में न कोई तस्वीर है और न कोई खेल का अभ्यास। जोड़ी या समूह में काम करने के लिए कोई अभ्यास भी नहीं है। साथ ही, इस पाठ्यपुस्तक में बहुत गलतियाँ और छपाई की भूलें हैं।

कुछ समय के बाद मैंने एक और पाठ्यपुस्तक प्राप्त की मास्को से। इसकी रचयिता भी रूसी है—नतालिया लाजारेवा। यह पाठ्यपुस्तक रूस की पाठशालाओं में हिंदी पढ़ रहे छात्रों तथा भाषा खुद सीखने के इच्छुकों के लिए उचित है। इस पाठ्यपुस्तक का सकारात्मक गुण है कि यह छात्रों का परिचय देवनागरी वर्णमाला और व्याकरण से करती

है अन्य पाठ्यपुस्तकों के विपरीत यह पाठ्यपुस्तक उन लोगों के लिए अधिक उचित है, जिन्होंने हिंदी सीखना अभी–अभी शुरु किया हैं। व्याकरण सरल शब्दों और वाक्यों से समझाया जाता है। इस पाठ्यपुस्तक में बहुत उदाहरण भी हैं जो व्याकरण को समझने में भी मदद करते हैं। नए शब्द तालिकाओं के रूप में दिए जाते है जिनमें ध्वनि–लेखन, लिंग और अनुवाद दिया जाता है। इस पाठ्य पुस्तक में तस्वीरें और खेल के अभ्यास भी हैं। तथा जोड़ी या समूह में काम करने के लिए कई अभ्यास हैं, जिनसे पढ़ाई और अधिक रोचक और आसान हो जाती है। पाठ्यपुस्तक के अंत में रूसी–हिंदी और हिंदी–रूसी शब्दकोश है, जिसमें इसी पाठ्यपुस्तक के सभी शब्द शामिल हैं। रूसी–हिंदी वार्त्तालाप–पुस्तिका भी है, जो निसंदेह भारत में मूल–भाषी लोगों से संपर्क रखने में मदद कर सकती है। इस पाठ्यपुस्तक के साथ लिखाई के नमूने भी हैं जो देवनागरी पढ़ना और लिखना सीखने में बहुत मदद देते हैं। इसके अलावा पाठ्यपुस्तक के साथ दो ऑडियो सी.डी. हैं जो भारतीय वक्ताओं द्वारा बोले जाने वाले शब्दों और वाक्यों को स्पष्ट सुनना और खुद बोलना सिखाते हैं। हालाँकि इस पाठ्यपुस्तक के नकारात्मक गुण भी हैं। यह व्याकरण के केवल प्रारंभिक ज्ञान देती है। पूरे वर्ष के दौरान में छात्र केवल सबसे सरल वाक्य और शब्दावली सीखते हैं। केवल सामान्य वर्तमान काल का ज्ञान पाते हैं। अभ्यास बहुत छोटे हैं। उनमें बस कई वाक्य हैं।

जो पाठ्यपुस्तकें मैं भारत से लायी उसका भी उपयोग करती थी। लेकिन वे सब भारतीयों के लिए अधिक उपयोगी है, जिनकी मातृभाषा हिंदी ही है। मैं बस कभी–कभी इन पाठ्यपुस्तकों के कुछ अभ्यासों और व्याकरण का उपयोग करती थी।

इस तरह मैं इन पुस्तकों की सहायता से पढ़ाने की कोशिशें करती थी। लेकिन मैं देखती थी कि पढ़ाई उतनी अच्छी तरह नहीं हो रही है, जितनी मैं चाहूँगी। मैं जानती थी कि फिल्मों या गीतों के द्वारा पढ़ाई दिलचस्प होती थी परंतु मेरे यत्नों के बावजूद, अच्छी पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता तो पड़ती ही है। मौजूद पाठ्यपुस्तकें काफी अच्छी तरह भाषा सीखने में मदद करती हैं। लेकिन वे मेरी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती। इसलिए मैं सोचने लगी कि मेरी अपनी पाठ्यपुस्तक क्यों न बनाऊँ। मैंने मौजूद पाठ्यपुस्तकों के आधार पर अपनी पाठ्य पुस्तक बनाने का फैसला किया, इनमें कुछ परिवर्तन करके पढ़ाई अधिक मज़ेदार, दिलचस्प और आसान करने के लिए। आधार के लिए मैंने नतालिया मजेदार लाजारेवा की पाठ्य–पुस्तक को चुना।

मेरी पाठ्य–पुस्तक में इस प्रकार के अभ्यास हैं : रिक्त स्थान को भरना, सही शब्द या अक्षर चुनना, शब्दों को जोड़ना, अनुचित शब्द चुनना, तस्वीरों की तुलना, तस्वीर का वर्णन करना। मैं जोड़ी में काम करने के लिए इस प्रकार के अभ्यास देती हूँ। साथी के सवालों के जवाब देना, साथी को कुछ बताना, साथी से किसी विषय पर बात करना आदि। मेरी पाठ्यपुस्तक में बहुत रचनात्मक तथा खेल के अभ्यास हैं, जैसे रचना करना, वर्णन करना, वाक्य बनाना, गूढ़लेख स्पष्ट करना, चित्र अनुकूल शब्द से मिलाना, टेक्स्ट के अनुसार चित्र बनाना आदि।

इस प्रकार मैं धीरे–धीरे भारतीय फिल्मों, फिर संस्कृति और विशेष रूप से भाषा के प्रति बचकानी अभिरूचि से व्यावसायिक कार्य तक पहुँची। आज–कल मैं हिंदी लेखों, कहानियों, दार्शनिक ग्रंथों, विभिन्न दस्तावेजों आदि का अनुवाद करती हूँ। बेलारूस में मेरी अलावा कोई अधिकृत हिंदी अनुवादक नहीं है। मैं बेलारूस के नोटरी चैंबर में पंजीकृत एक ही हिंदी अनुवादिका हूँ। इसके अलावा मैं बेलारूस में एक ही हिंदी की अध्यापिका हूँ। इंटरनेट की बदौलत मैं न केवल बेलारूस के नागरिकों, बल्कि अन्य सभी को अनुवाद करने में तथा हिंदी के अध्ययन करने में मदद दे सकती हूँ।

लेकिन हाँ, मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि हिंदी का मेरा ज्ञान अब भी बहुत ऊँचा नहीं है। हिंदी की पुस्तकें पढ़ते हुए, भारतीय फिल्म देखते हुए और भारतीय दोस्तों से बातें करते हुए मैं हिंदी का अभ्यास करने की कोशिश करती हूँ, लेकिन मैं समझती हूँ कि यह काफी नहीं है। इसके अलावा भाषा हर समय एक ही जगह पर न रहकर, लगातार आगे बढ़ती जाती है।

इसीलिए मुझे अपनी हिंदी का स्तर बढ़ाना अनिवार्य है। और इसीलिए मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में एम.ए. डिप्लोमा के पाठ्यक्रम में भाग लेना चाहती हूँ।

आशा है कि मेरा यह सपना भी पूरा हो जाएगा।

Brilevskayastr,
3-3 Minsk 220039
Belarus

□

17

अंडमान निकोबार द्वीप-समूह की हिंदी

✍ डॉ. अनिता गांगुली

बंगाल की खाड़ी स्थित एक छोटा सा द्वीप अंडमान एवं निकोबार संघ शासित प्रदेश है जो भारत के दक्षिण छोर में स्थित अपनी प्राकृतिक सुंदरता के कारण विश्व में प्रसिद्ध है। इसकी संपन्नता एवं परिपूर्णता का बखान करना बहुत कठिन है। यहाँ एक ओर समुद्र तट, कोरल, मछली एवं मेंग्रोव है तो दूसरी ओर वीर सेनानियों की स्मृति कराते हुए सेल्यूलर का द्वार है। भाषा के मामले में यह द्वीप पूरे विश्व में सबसे आगे है। यहाँ के लोग बहुत जागरूक हैं। जनता की माँग पर सन् 1992 में राजभाषा विभाग ने इसे 'क' क्षेत्र के अंतर्गत माना। उन लोगों का कहना था—''चारों ओर समुद्र से घिरा द्वीप समूह अपने आप में पूर्ण है क्योंकि हिंदी भाषा ने हम सबको आपस में जोड़ रखा है। विभिन्न भाषा, विभिन्न जाति, विभिन्न धर्म के होते हुए भी हिंदी भाषा ही हमारे भावों, विचारों को अभिव्यक्त करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। परिवार में लोग जो भी बोलते हों पर बाहर हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। हमें विदेशी भाषा यानी अंग्रेज़ी से बचाइए।'' इस प्रकार की सोच यदि भारत के प्रत्येक प्रांत में मिलती तो हिंदी का भविष्य कुछ और ही होता। इस सुंदर द्वीप में हिंदी की जलती दीपशिखा को यहीं आकर देखा जा सकता है।

- डॉ. अनिता गांगुली का जन्म 1954 को कोलकाता में हुआ।
- उन्होंने संस्कृत तथा हिंदी में एम.ए., भाषा विज्ञान में डिप्लोमा तथा हिंदी में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है।
- आदिवासी जनजाति क्षेत्र का कई वर्षों तक सर्वेक्षण किया एवं उनके लिए शिक्षण सामग्री तैयार की। कोश विज्ञान एवं तुलनात्मक विज्ञान में भी वे कार्यरत हैं।
- संप्रति वे केंद्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत तथा अध्ययन-अध्यापन में संलग्न हैं।

हिंदी अध्यापकों के प्रशिक्षण के सिलसिले में मैं सातवीं बार यहाँ की राजधानी पोर्टब्लेयर, साउथ अंडमान आई हूँ। इस बार दिसंबर 2010 को यहाँ आना हुआ। इस द्वीप में 401 विद्यालय हैं, जिनमें सीनियर 51, सेकेंडरी स्कूल 45, मिडिल स्कूल 68, प्राइमरी स्कूल 208, प्री प्राइमरी स्कूल 27 हैं, जिसमें 2 केंद्रीय विद्यालय नं.1 एवं नं. 2 (दोनों पोर्टब्लेयर में) हैं। दो नवोदय विद्यालय—एक कार निकोबार में और दूसरा पंचवटी (मिडल अंडमान) में है। इसके अतिरिक्त दो महाविद्यालय भी हैं। जवाहरलाल नेहरू राजकीय महाविद्यालय (J.N.R.M) पोर्टब्लेयर साउथ अंडमान में है। यह पांडिचेरी विश्वविद्यालय के अंतर्गत आता है। इसी कैंपस में इग्नू का दूरस्थ शिक्षा केंद्र भी है। तथा दूसरा महात्मा गांधी राजकीय महाविद्यालय (स्नातक स्तर तक) मायाबंदर द्वीप में है जिसमें काम करनेवाले वरिष्ठ अध्यापकों की संख्या 100 तक होगी। सभी स्कूलों में हिंदी अध्यापक कार्यरत हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण के लिए पोर्टब्लेयर में दो संस्थाएँ हैं :—

1. टैगोर राजकीय शिक्षा महाविद्यालय, जहाँ दो प्रकार के पाठ्यक्रम हैं। पहला एक सन् का बी.एड. पाठ्यक्रम और दूसरा चार वर्ष का इंटीग्रेटेड पाठ्यक्रम।

2. डॉ. एस. राधाकृष्ण जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, जहाँ दो वर्ष की अवधि में प्राइमरी शिक्षक हिंदी तैयार किए जाते हैं। सरकारी प्रयासों का असर यह है कि इस द्वीप में साक्षरता दर (1991 के अनुसार) 73 प्रतिशत है। सन् 1994 में जब मैं पहली बार यहाँ आई थी तब इस द्वीप में 334 विद्यालय थे और आज उनकी संख्या 401 है।

इसके अतिरिक्त यहाँ ओसियन स्टडीज एंड मैरीन बाइलोजी अर्थात् सामुद्रिक अध्ययन की भी व्यवस्था है।

हिंदी यहाँ अनिवार्य विषय है। यह द्वीप एक बहुभाषी देश है। इसे एक छोटा भारत भी कहते हैं। स्कूलों में यहाँ 9 तरह के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती है—हिंदी, अंग्रेज़ी, तमिल, तेलुगु, बंगला, मलयालम, संस्कृत, उर्दू एवं निकोबारी। भिन्न-भिन्न स्कूलों में प्रथम,

द्वितीय एवं तृतीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है।

1. **प्रथम भाषा हिंदी**—हिंदी माध्यम विद्यालयों में प्रथम भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। वहाँ कक्षा 1-12 तक के छात्रों को हर विषय का ज्ञान हिंदी में प्रदान किया जाता है। वहाँ अंग्रेज़ी को द्वितीय भाषा का दर्जा दिया जाता है।
2. **द्वितीय भाषा हिंदी**—अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालयों में कक्षा 1-12 तक हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है।
3. **तृतीय भाषा हिंदी**—तमिल, तेलुगु, बंगला आदि माध्यमों के विद्यालय इसके अंतर्गत आते हैं। वहाँ हिंदी कक्षा 6-8 तक तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है।

इसके अलावा उर्दू, मलयालम, पंजाबी और संस्कृत भी तृतीय भाषा के रूप में लेने का विकल्प है। मुख्य रूप से यहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी और हिंदी है। केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा चलाए गए भाषा संचेतना शिविर में सन् (2010) 59 प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया जिसमें बंगला भाषी-18, तमिल-05, मलयालम-10, तेलुगु-06, निकोबारी-08, हिंदी-09, खडिया-01, पंजाबी -01 थे। इस वर्ष हिंदी भाषा संचेतना शिविर में 54 तथा प्राथमिक शिक्षकों के नवीन पाठयक्रम में 31 अध्यापकों ने भाग लिया।

अंडमान निकोबार द्वीप समूह में शिक्षा का स्तर सर्वोच्च है। यहाँ शहरों में ही नहीं बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्कूलों की स्थापना की गई ताकि वहाँ के बच्चे शिक्षा से वंचित न रहे। जनजातियों की शिक्षा हेतु उनके निवास स्थान पर प्राथमिक विद्यालय बनाया गया है जिससे कि जनजातियों को आम जनता के बराबर लाया जा सके। अंडमान, ओंगी, जारवा आदिवासी भी हिंदी समझ व बोल सकते हैं। बहुत से निकोबारी हिंदी अध्यापकों से मेरा परिचय है जो अच्छी हिंदी बोलते हैं। निकोबारी लोग अब तेजी से शिक्षित हो रहे हैं तथा उच्च पदों पर (डॉक्टर इंजीनियर वकील, पाइलट, पुलिस आदि) कार्यरत हैं। यहाँ तक की हिंदी में भी पी.एच.डी. तक कर रहे हैं। मैंने सुना है कि कुछ विद्वान 'निकोबारी-हिंदी कोश' निर्माण की ओर अग्रेसित हो रहे हैं। राष्ट्रभाषा हिंदी राष्ट्र की आत्मा है; भारत की एकरूपता की धुरी है। भारत की संस्कृति और सभ्यता की मूल चेतना को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने का माध्यम है। राष्ट्रीय विचारों का परिधान है। उक्त बात को प्रमाणिक करता है। यहाँ का दैनिक द्वीप समाचार। इसके अलावा कोलकाता से प्रकाशित जनसत्ता, दिल्ली का दैनिक जागरण तथा राजस्थान पत्रिका यहाँ उपलब्ध होते हैं। पोर्टब्लेयर के खूबसूरत स्टेट लाइब्रेरी में भी हिंदी की पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का अपार भंडार है। यहाँ का दुरदर्शन भी हिंदी का कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। हिंदी के सभी चैनल्स यहाँ देखे जा सकते हैं। सिनेमाघरों के अभाव में दूरदर्शन ही हिंदी फिल्म देखने का एकमात्र साधन है तथा आकाशवाणी के कार्यक्रम में भी हिंदी को अधिक महत्त्व दिया जाता है। उसमें चर्चा, वार्ता, तरंगिनी आदि कार्यक्रम हिंदी को प्रोत्साहन देते हैं। यहाँ का राजभाषा विभाग भी बड़ी उदारता से कार्यालयीन हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहयोग देती है। हमारे वहाँ रहते हुए ही कृषि विभाग, मत्स्य विभाग, वन विभाग आदि में उनके द्वारा कार्यशालाएँ चलाई गईं। आधुनिक तकनीकि में भी अंडमान निकोबार पीछे नहीं है। इंटरनेट के युग में प्रशासन पर अधिकतर सामग्री हिंदी में है। बलॉगिंग के क्षेत्र में भी उसके कदम बहुत आगे हैं।

अंडमान में हिंदी के लिए कार्य करनेवाली एक संस्था का नाम न लें तो हिंदी की बात अधूरी रहेगी। वह है 'हिंदी साहित्य कला परिषद' जो, सन् 1962 में स्थापित हुई थी तथा अगले वर्ष अपनी स्वर्ण जयंती मनाने जा रही हैं। हमारे वहाँ जाने पर परिषद के सदस्यों ने हमारा स्वागत

पोर्टब्लेयर के खूबसूरत स्टेट लाइब्रेरी में भी हिंदी की पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का अपार भंडार है। यहाँ का दूरदर्शन भी हिंदी का कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। हिंदी के सभी चैनल्स यहाँ देखे जा सकते हैं। सिनेमाघरों के अभाव में दूरदर्शन ही हिंदी फिल्म देखने का एकमात्र साधन है तथा आकाशवाणी के कार्यक्रम में भी हिंदी को अधिक महत्त्व दिया जाता है। उसमें चर्चा, वार्ता, तरंगिनी आदि कार्यक्रम हिंदी को प्रोत्साहन देते हैं। यहाँ का राजभाषा विभाग भी बड़ी उदारता से कार्यालयीन हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहयोग देती है।

किया। परिषद प्रवास पर पहुँचनेवाले साहित्यकारों, विद्वानों का हमेशा स्वागत करते हैं। वे अर्द्धवार्षिकी पत्रिका 'द्वीप लहरी' के माध्यम से दूसरे राज्यों से संपर्क साधते हैं। अंडमान निकोबार से संबंधित लोककथाएँ, अंडमान के हिंदी कविता संग्रह, अंडमान के हिंदी कवि, अंडमान की हिंदी कहानी, कहानी संग्रह, अंडमान के हिंदी कहानीकार, अंडमान के हिंदीत्तर कहानीकार, आँखों देखा अंडमान, कालापानी, अंडमान तथा निकोबार के आदिवासी और उनकी बोली अंडमान के कृतित्व इत्यादि पुस्तकें परिषद के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हैं। अपने सीमित साधनों में भी परिषद प्रकाशन कार्य को, लेखकों को उत्साहित करती है। वह 1 सितंबर से 15 सितंबर तक हिंदी दिवस मनाती है। स्वतंत्रता दिवस एवं गणतंत्र दिवस पर कवि सम्मेलन एवं दशहरा के अवसर पर भी रामलीला का आयोजन परिषद की ओर से हमेशा होता है। परिषद समय-समय पर काव्य गोष्ठी, काव्य संध्या, काव्य पाठ, कवि सम्मेलन, मुशायरा-तुलसी जयंती, हिंदी नाटक आदि का भी आयोजन करती है। इस बार हमारे वहाँ रहते 25 नवंबर को अज्ञेय जन्मशती के उपलक्ष्य में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसमें मैं भी उपस्थित थी। इसके अतिरिक्त 'भारतीय साहित्य अकादमी' द्वारा भी स्थानीय साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है।

भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के मध्य हिंदी जनसंपर्क की भाषा है। इसको जानने से पहले हमें वहाँ के निवासियों पर एक दृष्टि डालनी होगी। अंडमान निकोबार द्वीप-समूह के निवासियों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं—

(क) आदिवासी यहाँ के मूल निवासी हैं। अंडमान में चार प्रकार के आदिवासी पाए जाते हैं—अंडमानी, ओंगी, जारवा, सेंटीनली। निकोबार में दो प्रकार के आदिवासी पाए जाते हैं। निकोबार एवं शोंपेन।

(ख) इस वर्ग में चार प्रकार के निवासी हैं—

1. लोकल (प्री 42)—जो कभी पहले बंदी अपराधी या कैदियों के तौर पर यहाँ लाए गए थे। यह बंगाली, पंजाबी, तमिल, तेलुगु आदि है। आजकल इन लोगों को ओ.बी.सी. का दर्जा भी दिया गया है।
2. विस्थापित—देश विभाजन के पश्चात् सरकार ने बांगला देश (पूर्वी बंगाल) से आए विस्थापितों को यहाँ बसा दिया था, डिगलीपुर रंगत, हेवलॉक, नील आदि द्वीपों को इन विस्थापितों ने आबाद किया है। आज उन लोगों की तीसरी-चौथी पीढ़ी वहाँ निवास कर रही है।
3. सरकारी नौकरी करनेवाले लोग—केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों में काम करनेवाले या स्थानांतरित होकर आनेवाले अधिकारी तथा कर्मचारी लोग भी वहाँ हैं।
4. व्यवसाय करनेवाले—वाणिज्य व्यापार के सिलसिले में चेन्नई, कलकत्ता, गुजरात व अन्य राज्यों से लोग वहाँ गए हुए हैं। वे लोग नारियल एवं नारियल के तेल का व्यवसाय करते हैं। मुख्यभूमि से भी बहुत सी खाद्य सामग्री व अन्य वस्तुएँ वहाँ पहुँचती हैं। पहले वहाँ लकड़ी के घर ही बनते थे पर अब सीमेंट के घर बड़ी संख्या में बन रहे हैं। अत: बहुत से बिल्डर एवं कांट्रेक्टर भी वहाँ पहुँच गए। आज पर्यटन व्यवसाय वहाँ काफ़ी फल-फूल रहा है। पिछले सात-आठ वर्षों से काफ़ी पर्यटक वहाँ पहुँच रहे हैं। पर्यटन स्थलों के सभी विवरण हिंदी में पाए जाते हैं। इसके अलावा बहुत से हिंदी के लेखक व कवि अपनी लेखनी से हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं। सभी वर्ग के रचनाकारों द्वारा सभी विधाओं का साहित्य रचा जा रहा है।

कुल मिलाकर हिंदी, बंगाली, पंजाबी, बिहारी, राँची, तमिल, तेलुगु, मलयालमी, मालाबरी, नेपाली, निकोबारी लोग वहाँ रहते हैं। पड़ोसी देश बर्मा से पुराना संबंध होने के कारण बर्मी भाषी (करेन) भी वहाँ बसे हुए हैं। भारत से अलग स्वतंत्र कर दिए जाने पर बहुत से बर्मी वहाँ से चले गए तथा कुछ लोग वहाँ बस गए। उनकी अपनी अलग बस्ती है। पिछली बार इस बार भी बहुत से करेन छात्रों से भी मेरी बातचीत हुई थी।

ये सब लोग (उक्त 'क' एवं 'ख' वर्ग) जब आपस में मिलते हैं तो हिंदी में ही बातचीत करते हैं। यहाँ तक कि तमिल, तेलगु एवं मलयालम भाषी भी बोल-चाल में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। मैंने हिंदी को वहाँ स्वत: फलते-फूलते देखा है और ऐसा अनुभव किया कि जो काम मुख्य भारत भूमि में नहीं हो सकता वह उस द्वीप में हो रहा है। वहाँ के बी.एड. कॉलेज के प्राचार्य ने एक कार्यक्रम में कहा कि भाषाओं के मामलों में मुख्यभूमि भाषायी द्वीप है तथा यह द्वीप हिंदी की मुख्यभूमि है। वहाँ की मिली-जुली संस्कृति में विभिन्न भाषा-भाषी ऐसे मिल गए जैसे चीनी और पानी। पूरे भारत में ऐसी दूसरी मिसाल नहीं है।

जनसंपर्क भाषा के रूप में विकसित होती उस सतरंगी हिंदी, जो उनके स्थानीय आम बोलचाल की भाषा बन गई, को आप अंडमानी हिंदी कह सकते हैं। उसके कुछ उदाहरण देखिए—

1. कमान-'काम के लिए' हम कमान को जाता है।
2. पशु, पक्षी, इंसान सभी के साथ 'लोग' लगाकर बहुवचन बनाते हैं। मुर्गी लोग, कुत्ता लोग (कुत्ता लोग रात भर रोता है।) गाई लोग (गाय को गाई बोलते हैं।) भैसी लोग, हम लोग/ ये लोग/ उस लोग आदि
3. गाई का लड़की बच्चा — बछड़ी के लिए
   गाई का लड़का बच्चा — बछड़े के लिए
   मुर्गी का बच्चा — चूजे के लिए
   कुत्ते का बच्चा — पिल्ले के लिए
   पक्षी का बच्चा — चूजे के लिए

सर्वत्र बच्चा। बच्चों से प्रेम है इसलिए मनुष्यों के अलावा पेड़-पौधों में भी बच्चे का प्रयोग करते हैं। जैसे—बच्चा पेड़, बच्चा केला (छोटे के अर्थ में), बच्चा लौकी, बच्चा गोभी (कोमल या मुलायम के अर्थ में)।

4. घंटा, टिंडा—इंकार करना (अपशब्द भी)
5. 12 बजे—दोपहर के लिए (दोपहर का प्रयोग नहीं करते)
6. वास-बास—खुशबू और बदबू के अर्थ में
7. बाल झाड़ना—बाल सँवारना
8. दबा दिया—कुचलना के अर्थ में—गाड़ी कुत्ता को दबा दिया बस आदमी को दबा दिया।
9. विंदास—अच्छे के अर्थ में—क्या विंदास गाती है?
   मैं तो विंदास सोया।
10. जंगल-पोर्टब्लेयर के अलावा अन्य द्वीपों के लिए
11. कौआ गुसल-नहाना को गुसल करना कहते हैं शायद यह उर्दू का प्रभाव होगा तथा कौआ गुसल मुहावरे के अर्थ में या जल्दी नहाने के अर्थ में कहते हैं क्योंकि कौआ दो बूँद पानी से झटपट आधा-अधूरा नहा लेता है जिसे बंगला में काक स्नान कहते हैं।
12. अंधा साँप—जानबूझकर न देखने के अर्थ में(साँप की एक प्रजाति जो दिन में नहीं देख पाती)

पानी साँप-ऐसा व्यक्ति जिससे कोई नुकसान न हो इस अर्थ में। डोंडहा सांप के लिए प्रयुक्त होता है

धानिन-खतरनाक महिलाओं के लिए (नाग के स्त्रीलिंग—के रूप में प्रयुक्त)

चूंकि अंडमान जंगलों से परिपूर्ण प्रदेश है, किसी समय वह कीड़े-मकोड़े साँप आदि से भरा था इसलिए ये शब्द वहाँ चलते हैं।

13. नप्पी—करेन जाति के लोगों का खाद्य पदार्थ जो झींगे (एक प्रकार की मछली) को कूटकर बनाया जाता है।
14. तंबी-भाई (नौकर के रूप में संबोधन)

ममा—छोटा नागपुर के लोगों के लिए।
अन्ना—तमिल-तेलुगु लोगों के लिए।
रावण—तमिल लोगों के लिए।

15. हंडिया—देशी शराब के लिए (राँची/झारखंडियों के प्रभाव से) शराब के लिए प्रयुक्त।
16. भयंकर—सुंदरता के अर्थ में।

क्या भयंकर मैडम आई है?
क्या भयंकर बिरयानी बनाया?
क्या भयंकर दिखती है?

17. सर, सरजी—बच्चों द्वारा प्रयुक्त पुरुष प्रधान अध्यापक व सम्मानीय व्यक्तियों के प्रयुक्त आदर सूचक। इसी प्रकार मैडमजी चलता है तथा दक्षिण भारतीय प्रभाव से मैडम्मा शब्द का प्रयोग सब्जी बाजार एवं मछली बाजार में सुनने को मिला। दक्षिण में किसी भी महिला के नाम के साथ अम्मा शब्द का प्रयोग आदर की सूचना देता है। मैडम एवं अम्मा दोनों मिलकर दुगने आदर को बताते है। (आदरसूचक शब्द)।
18. चटपटी—मटर की चाट।
19. एक ठो, दो ठो—संख्यावाचक शब्दों के साथ प्रयुक्त (बिहारी के प्रभाव से) हम एक ठो फल खाया।
20. गोटा—पूरे के अर्थ में। हम गोटा रात नहीं सोया (बिहारी एवं बंगाल के प्रभाव से)।
21. ठोंक दिया—मार देने के अर्थ में।

गाड़ी को आज हम ठोंक दिया।
राम को आज हम ठोकेगा।

22. खाना—भोजन (चावलादि)

हम खाना का साथ मच्छी खाया।
आज हम खाना का साथ भिंडी खाया।
खाना डालना—परोसने के अर्थ में।

23. कमती—कम के अर्थ में।

कमती खाना खाओ।
कमती सो।
कमती भागो, कमती जाओ।

24. मच्छी—मछली के अर्थ में, यहाँ मासूर, सिंघी, कातला, फारसा, लाल भेटकी, लाल गोबरा, तारनी, फराई, चंदा, कोकारी, सुरमई मछलियाँ पाई जाती है।

मछलियों के बारे में कई विशेषण इस प्रकार है :—

बदमाश मछली—शार्क के लिए

सूंस मछली—डॉलफिन के लिए

टायगर झींगा—झींगा की विशेष प्रजाति जो धारीदार होती है।

वहाँ की संस्कृति में यह शब्द बहुत सुनाई देता है।

25. हलफा—समुद्री लहर के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुतायत से होता है वहाँ की संस्कृति में यह शब्द बहुत सुनाई देता है। समुद्र एवं जहाजरानी यहाँ पर जीवनदायिनी होती है अत: कई अर्थों में होते हैं। जैसे—

1. हलफा के कारण मैं बोट में सो नहीं पाया (समुद्री लहर के कारण जहाज का ज्यादा हिलना)।

(क) आज शिप में बहुत हलफा लगा

(ख) आज बहुत हलफा है इसलिए मैं नहीं जा पाऊँगी

(ग) इतनी अधिक हलफा थी कि बोट डूबते-डूबते बचा।

(घ) वह व्यक्ति हलफा में है (कष्ट का पर्याय)।

(ड) क्यों जी क्या हलफा में फँस गए (विपत्ति के अर्थ)।

(च) हलफा से बचो वरना सब मिट्टी में मिल जाएगी (उतार-चढ़ाव के अर्थ में)।

26. किनारा जाना है—घाट जाने के अर्थ में।

27. पानी पकड़ो—भरने के अर्थ में।

क्या माँगता—क्या चाहिए के अर्थ में।

28. नापना—मापना एवं नापना के व्यापक अर्थ में।

कपड़ा नाप लो।

29. दर्जन—किलों के अर्थ में।

एक किलो केला देना।

30. लिंग पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है जैसे-घंटी बज गया, पुस्तक खरीदा, वर्षा होता है। लिंग का ध्यान नहीं रखा जाता।

31. वह इस प्रकार भी बोला जाता है। हम बोलेगा, करेगा, जाएगा।

हम-मैं के स्थान पर एक अध्यापिका ने बताया कि दिल्ली से लौटकर जब वह मैं का प्रयोग करती थी तब उसे कहा जाता है कि बकरी जैसी मैं-मैं क्यों कर रही हो। जैसे हम जाई, हम खाती, हम सोती, हमको बाजार जाना है, कल हम चली जाएगी, 'कारण' (हम शब्द स्वतंत्रता संग्राम के साथ जुड़ा है। पहले द्वीप समूह में उर्दू पढ़ाई जाती थी।)।

32. चलेंगे—चलती हूँ आदि के लिए।

33. अच्छा से पढ़ो-अच्छी तरह पढ़ो के अर्थ में।

34. कार्य—क्यों के अर्थ में—कार्य को रोता है।

35. कौन—किसने के अर्थ में—तुमको कौन मारा रे।

36. वो—वह और वे के अर्थ में—वो कौन होता है बोलनेवाला, वो तेरा कौन लगता है।

37. वास्ते-के लिए के अर्थ में—हम तुम आने का वास्ते बोला है रे।

38. नाउ (नाव)—नाई के लिए प्रयुक्त क्योंकि दक्षिण भाषाओं में (तेलुगु को छोड़कर) कुत्ते को नाई/नाय।

39. नील—अच्छी सब्जियों के अर्थ में प्रयुक्त। अगर कहेंगे कि ये आलू नील के है जो अच्छी किस्म या जाति को सूचित करता है। नील छोटा सा द्वीप पोर्टब्लेयर से 20 नोटिलक नील (समुद्री दूरी) पर है।

40. छोकरी—बुरी लड़की के अर्थ में

41. अंडमान हिंदी में कुछ अंग्रेज़ी शब्द हैं जो निम्न अर्थों में प्रयुक्त होता है :—

बाउंस होना—कठिनाई में होना।

वॉट बजाना-नुकसान होना।

बैंड बजाना-नुकसान होना।

होल्डी—रुकने के लिए बस में कहते हैं अंग्रेज़ी का होल्ड के लिए प्रयुक्त अर्थ है 'रोको'

अंडमानी मुहावरे

1. मड़वे का कुता—बिन बुलाए आना
2. गिरे पेड़ पर चढ़ना—असहाय लोगों का शोषण
3. कुत्ता फजीता करना—अपमान करना
4. शोरखा लाल करना—बदले का योजना बनाना
5. ऑल इंडिया रेडियो बनना—किसी बात को बढ़ा-चढ़ा कर बताना
6. बाराटांग से आना-जंगली या असभ्य दिखना (क्या बाराटाँग से आए हो ?) यहाँ जाखा आदिवासी रहते हैं।
7. अंदर—अंदर मायाबंदर-षडयंत्र रचना (मायाबंदर एक द्वीप है)
8. जापानी बम—अचानक विस्फोट होना
9. बरसात का घास—दुनियादारी से अनभिज्ञ (अनुभाव की कमी)
10. सेल्युलर का खंबा—दृढ़ निश्चय

11. सुनामी आना—विपत्ति आना। आजकल यह एक बहुत प्रचलित मुहावरा बन गया है। समाचार-पत्रों में भी 'संकट' के अर्थ में इसे बताया जाता है। आर्थिक मंदी की सुनामी में डटे रहे प्रधानमंत्री।
12. बरसात घास—व्यर्थ की चीज
13. सुपारी चबाना—व्यर्थ समय व्यतीत करना
14. मैंग्रेव की जड़—अडिग वीर सावरकर मैग्रेव की जड़ थे। अंडमान के समुद्र तटों पर मैंग्रेव के पौधे तटों की रक्षा करते हैं। उनकी बड़े मज़बूत होती है जो मिट्टी के क्षरण को रोकती हैं। अन्य समुद्र तटों पर भी ये लगाए जा रहे हैं।
15. वाइपर का भूत—अदृश्य होना 'वाइपर' एक द्वीप है। वहाँ के कीड़े-मकोड़े व वाइपर (जहरीले साँपों से उनकी मृत्यु हो जाती थी) जहाँ पर सेलुलर जेल बनने से पहले यहाँ कैदियों को रखा जाता था। यहाँ महिला फाँसी घर था जो आज भी सुरक्षित है। वह द्वीप आज भी निर्जन है।

अंडमानी हिंदी के कुछ वाक्य

1. कल मेरा नाना आया था ,नाना हमको बोला, चलो मेरा साथ बाजार चलो।
2. हम अभी जाती। कल आएगी तुम मेरा साथ चलेगी ?
3. कल हम क्रिकेट का खेल देखने गया था। तुम हमको बोला था कि तुम भी खेल देखने आएगा। तुम तो उधर आया नहीं। हम बहुत देर तक तुमको ढूँढा।
4. तुम पानी पकड़ ली ? मेरा घर में तो अभी तक पानी नहीं आया। पानी पकड़ना था, बोलके हम आज स्कूल नहीं गई।
5. हम अभी जाता है। हमको बहुत काम है। हम कल आके बात करेगा।
6. तुम खाना खा ली। हम अभी खाएगी।
7. मेरा आँखि बहुत कमजोर हो गया है। हमको कुछ भी अच्छा से दिखाई नहीं देता।
8. हम क्या बोलेगा ? जो कुछ बोलना था, तुम लोग तो सब बोल दिए।
9. तुम्हारी नौकरानी बच्चा दे दी ? क्या बच्चा हुआ है ? लड़का बच्चा या बच्ची ?
10. इतना सारा बकरी लोग कहाँ से आ गया ? ये सारा जगह पूरा गंदा करते।
11. मेरा किताब हमको देवो रे ! तुम कहाँ जाता रे। 'में', 'रे' का प्रयोग अधिक होता है। यह 'रे' (माधुर्य बरसानेवाला है), अबे कहाँ जाता है ? (लड़का) कहाँ जाता रे पढ़ो रे, बैठो रे, अरे कहाँ जाता है ? (लड़की) आओ रे, खाओ रे
12. मैं भैसी का दूध नहीं पीता।
13. हम आज सब्जी का सुखा बनाया। गाली सब्जी नहीं बनाया / मच्छी का सूखा बनाओ।
14. इसने मेरा छाती फाड़ दिया।
15. हमको तुमको नहीं जानता, उसको मत तंग करो। 'को' का प्रयोग अधिक करते हैं। मेरे को काँटा लगा। साहब हमको जाने को बोला है।
16. कल आना सकता है या नहीं सकता।
17. करके बोलना नहीं सकता।
18. गाई लोग पूरा बगीचा नुकसान करता है।
19. तुम बड़ा अच्छा औरत है।
20. मैंने फाड़कर लिखा (अच्छा लिखा)।
21. धकलाकर धकेल दिया। (धक्का देने के अर्थ में)
22. 'ने' का प्रयोग नहीं होता—तुम अच्छा नाचा, हम खाया।

स्थानीय भाषा का एक अनुच्छेद देखिए

आज छुट्टी का दिन है। मेरी अम्मा बोली कि हम आज तुमको अच्छा खाना खिलाएगा। हम खुश हो गई। अम्मा ने मछली, अंडा और हलवा पकाया। हम और मेरा दोस्त बहुत मजे में खाना खाया। मेरा दोस्त बोली कि तुम्हारा अम्मा खाना बहुत अच्छा बनाता है। मेरी अम्मा अच्छा नहीं बनाता। हम बाली ऐसी मत बोलो, अम्मा लोग को ऐसा नहीं बोलते। अच्छा बात नहीं। उसको शरम आ गया। हमको बोला कि हम आयिंदा ऐसी खराब बात कभी नहीं बोलेगा।

एसोसिएट प्रोफेसर
केंद्रीय हिंदी संस्थान, सी-7, डी.डी. कॉलोनी
हैदराबाद—500007

□

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी कथ्य और तथ्य

✍ डॉ. रवींद्र अग्निहोत्री

ऑस्ट्रेलिया में हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता दर्शानेवाला एक लेख हाल ही में भारत की एक पत्रिका में पढ़ने को मिला। शीर्षक था 'विडंबना! ऑस्ट्रेलिया में हिंदी : भारत में अंग्रेज़ी'। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि ऑस्ट्रेलिया के हिंदीप्रेमी यहाँ हिंदी को शिक्षा प्रणाली में सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए लंबे समय से प्रयास कर रहे हैं, उन्हें आंशिक सफलता मिली भी है, फिर भी मंज़िल अभी बहुत दूर है। यह प्रयास क्यों किया जा रहा है, सफलता कितनी मिली और इसके मार्ग के अवरोध क्या हैं, आइए, इनसे ऑस्ट्रेलियाई समाज के परिप्रेक्ष्य में परिचित होने का प्रयास करें।

वर्तमान ऑस्ट्रेलिया मुख्य रूप से आप्रवासियों का देश है। इस कारण उसकी कतिपय ऐसी विशिष्टताएँ हैं जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलतीं। जैसे, कई पीढ़ियों से ऑस्ट्रेलिया में ही रहने के बाद भी यहाँ के निवासी अपने को अपने 'मूल देश' से जोड़कर देखते हैं, इसके बावजूद इस देश में एक साथ रहने के कारण विभिन्न संस्कृतियों एवं विभिन्न भाषाओं के प्रति एक प्रकार की सहनशीलता भी उनके स्वभाव का अंग बन गई है जो उनके मूल देश में भले ही अनुपस्थित हो। यों तो सर्वाधिक आप्रवासी यूरोप के विभिन्न देशों से आए हैं, पर मज़ेदार बात यह है कि जिन्हें यहाँ 'आदिवासी' (Aboriginale) कहते हैं, वे भी मूलत: इंडोनेशिया द्वीप समूह से लगभग 40-50 हजार साल पहले आकर यहाँ बसे हैं। इनका रंग-रूप सामान्य भारतीयों से काफी मिलता-जुलता है। पर वर्तमान ऑस्ट्रेलिया के निर्माण का श्रेय यूरोप के विभिन्न देशों से आए श्वेत प्रजाति के लोगों को जाता है। इनमें सबसे पहले 17वीं शताब्दी के प्रारंभ में डच नाविक विलियम जान्स्जून यहाँ पहुँचा था, पर यूरोपीय लोगों का यहाँ स्थायी रूप से बसना 18वीं शताब्दी के अंतिम चरण में तब शुरूहुआ जब ब्रिटेन के कैप्टन कुक ने यहाँ सन् 1770 में 'न्यू साउथ वेल्स' में पहला उपनिवेश बनाया और फिर लगभग बीस साल बाद 'काले पानी' की सजा पाए ब्रिटेन के गंभीर अपराधियों की पहली खेप लेकर आर्थर फिलिप 26 जनवरी, 1788 को सिडनी पहुँचा (इस 26 जनवरी की याद में यहाँ आज तक पूरे देश में 'ऑस्ट्रेलिया दिवस' मनाया जाता

- 11 मई, 1936 लखनऊ में जन्म, पर बचपन जबलपुर में बीता। जहाँ पिताजी टी. बी. सेनिटोरियम में चीफ मेडिकल ऑफिसर थे।
- इंडस्ट्रीयल इंटर कॉलेज, लखनऊ राजकीय इंटर कालेज, बरेली और स्त्री शिक्षा की प्रसिद्ध सावासी संस्था वनस्थली विद्यापीठ (जयपुर), डीम्ड विश्वविद्यालय में अध्यापन करने के पश्चात् भारतीय स्टेट बैंक, केंद्रीय कार्यालय, मुंबई में राजभाषा विभाग के अध्यक्ष पद से 1995 में सेवानिवृत्त।
- सेवानिवृत्ति के पश्चात् भी बैंक में सलाहकार, राष्ट्रीय बैंक प्रबंध संस्थान, पुणे में प्रोफेसर-सलाहकार; एस.बी.आई.ओ.ए. प्रबंध संस्थान, चेन्नई में वरिष्ठ प्रोफ़ेसर; अनेक विश्वविद्यालयों एवं बैंकिंग उद्योग की विभिन्न संस्थाओं से संबद्ध।
- हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत में 500 से अधिक लेख-समीक्षाएँ। 10 शोध-लेख एवं 40 से अधिक पुस्तकों के लेखक-अनुवादक।
- कई पुस्तकों पर अखिल भारतीय पुरस्कार; राष्ट्रपति से सम्मानित; विद्या वाचस्पति, साहित्य शिरोमणि जैसी मानद उपाधियाँ; पुरस्कार/सम्मान; राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर का प्रतिष्ठित लेखक सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ का मदन मोहन मालवीय पुरस्कार, एन.सी.ई.आर.टी. की शोध परियोजना निदेशक एवं सर्वोत्तम शोध पुरस्कार, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का अनुसंधान अनुदान, अंतर-राष्ट्रीय कला एवं साहित्य परिषद् का राष्ट्रीय एकता सम्मान।

<u>THIS PART WILL GO AT THE END OF THE ARTICLE</u>

स्थायी पता : पी /138, एम.आई.जी. , पल्लवपुरम फेज-2 , मेरठ 250 110

वर्तमान पता : 15 डोरसेट ड्राइव, अल्फ्रेडटन, विक्टोरिया, 3350; आस्ट्रेलिया

E-mail : agnihotriravindra@yahoo.com

है)। इन अपराधियों में से अनेक लोग बाद में यहाँ बस गए और आज भी वे अपनी इस वंशावली का उल्लेख बिना किसी संकोच के करते हैं, जिसे सुनकर भारतीय मानस कुछ देर के लिए तो स्तब्ध रह ही जाता है। बाद में जब यहाँ सोने की एवं अन्य बहुमूल्य धातुओं/खनिजों की खानों का पता चला, तब तो यूरोप के विभिन्न देशों से एवं चीन से काफी संख्या में लोग यहाँ आने लगे और इसी कारण 19वीं शताब्दी में यहाँ ब्रिटेन के उपनिवेशों की संख्या भी बढ़ने लगी। बाद में यहाँ के छह उपनिवेशों में ब्रिटेन के अनुकरण पर 'जनतांत्रिक प्रणाली' की सरकारें भी स्थापित की गईं। इन्हीं सरकारों ने 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में 'कॉमनवेल्थ' बनाकर वर्तमान संघीय व्यवस्था का रूप ग्रहण किया। जब 1931 में 'ब्रिटिश कॉमनवेल्थ' का गठन किया गया तो ऑस्ट्रेलिया भी उसका सदस्य बन गया। वह आज भी इंग्लैंड की महारानी को अपनी 'महारानी' मानता है। शायद इसी का परिणाम है कि ऑस्ट्रेलिया के निवासी यूरोप के देशों में बिना किसी रोक-टोक के आ-जा सकते हैं। जहाँ तक एशियायी देशों की बात है, उनके साथ ऑस्ट्रेलिया का धूप-छाँह का संबंध रहा है। एशिया के लोगों के आगमन का यहाँ कभी स्वागत किया गया है तो कभी उस पर प्रतिबंध लगाया गया है। आज यहाँ की आबादी लगभग सवा दो करोड़ है जिसमें लगभग 200 देशों के आप्रवासी शामिल हैं। इनमें भारतीय लगभग डेढ़ लाख (कुल जनसंख्या का लगभग 1.18 प्र.श.) हैं। इसमें वे लोग शामिल नहीं हैं जो अध्ययन करने या घूमने आए हैं। भारतीयों में भाषा की दृष्टि से देखें तो सर्वाधिक हिंदीभाषी (लगभग 80,000) हैं। इसके बाद तमिलभाषी (लगभग 32,000), पंजाबीभाषी (लगभग 23,000), बांग्लाभाषी (लगभग 20,000) आदि हैं।

वहाँ तो 'राष्ट्रभाषा' के नाम को सार्थक करनेवाला (तमिल, मलयाली, बंगाली आदि की पत्रिकाओं में) हिंदी खंड तक नहीं है। इसके विपरीत, एक पत्रिका तो ऐसी मिली जिसके दो भाषाओं में अलग-अलग संस्करण निकल रहे हैं, पर भाषाएँ हैं—गुजराती और अंग्रेज़ी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विदेशों में भी हम या तो गुजराती-पंजाबी आदि हैं या फिर अंग्रेज़ी-भाषी 'इंडियन'। हमारी इस मानसिकता की एक परिणति यह भी हुई कि यहाँ की सरकार ने विदेशों से आए लोगों को उनकी ही भाषा में आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध कराने की जो प्रमुख व्यवस्था लगभग पंद्रह भाषाओं में की हुई है और जिसका वह तरह-तरह से विज्ञापन भी करती है, उसमें चीन की दो-दो भाषाएँ—केंटोनीज और मंदारिन (चीनी प्रवासियों की संख्या लगभग दो लाख) और यूरोप की क्रोशियन, पोलिश, मेसिडोनियन जैसी कई भाषाएँ भी हैं जहाँ के लगभग 50 हजार या उससे भी काफी कम लोग यहाँ रहते हैं; पर डेढ़ लाख से अधिक भारतीयों की कोई भाषा नहीं है।

पर्याप्त समय तक इंग्लैंड का उपनिवेश रहने के कारण तथा लगभग सवा दो करोड़ की आबादी में ब्रिटेन से आए लोगों की संख्या सबसे अधिक (लगभग साढ़े ग्यारह लाख) होने के कारण अंग्रेज़ी यहाँ की 'प्रमुख' भाषा है और यह प्रमुखता उसे संविधान के किसी प्रावधान के कारण नहीं, बल्कि इस वास्तविकता के कारण मिली है कि यहाँ लगभग 80 प्र.श. घरों में अंग्रेज़ी का ही व्यवहार किया जाता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि वे लोग भी घर में अंग्रेज़ी बोलते हैं जिनकी वह 'अपनी' भाषा नहीं है। हाँ, यह अंग्रेज़ी ब्रिटिश अंग्रेज़ी की 'कार्बन कॉपी' नहीं है। शब्दों के उच्चारण, अनुमान, प्रयोग आदि की दृष्टि से इस अंग्रेज़ी की अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी का पृथक संस्करण निकाला जाता है।

आइए, अब बात करें ऑस्ट्रेलिया की शिक्षा व्यवस्था में हिंदी की। इस रूप में हिंदी की स्थिति को समझने के लिए हमें पहले यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को समझना होगा। ऑस्ट्रेलिया में हाई स्कूल तक की शिक्षा अनिवार्य है—सरकारी स्कूलों में नि:शुल्क और निजी स्कूलों में सशुल्क। यह शुल्क

स्कूल की प्रतिष्ठा और नागरिकता की दृष्टि से विद्यार्थी की ऑस्ट्रेलिया में स्थिति के अनुरूप होता है। एक विशेष बात यह है कि स्कूल चाहे सरकारी हो या निजी, जहाँ तक शिक्षकों की योग्यता, स्कूल के भवन, परिसर, शिक्षा संबंधी उपकरण, खेलकूद के सामान, विभिन्न गतिविधियों के आयोजन, स्कूल की साज-सज्जा आदि का संबंध है, आप इनमें कोई अंतर नहीं पाएँगे। अंतर केवल यहाँ पढ़नेवाले विद्यार्थियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है। सरकारी स्कूलों की संख्या अधिक है और निजी स्कूल प्राय: विभिन्न ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित हैं; पर जहाँ तक पाठ्यक्रम का संबंध है, वह पूरे 'राज्य' में एक समान होता है जिसे 'अकारा' (Australian Curriculum Assessment and Reporting Authority) निर्धारित करती है। हाई स्कूल के बाद कक्षा 11-12 का पाठ्यक्रम भी 'अकारा' ही निर्धारित करती है। अंग्रेज़ी यों तो पूरी शिक्षा में अनिवार्य है, पर प्रारंभिक स्तर के बाद अंग्रेज़ी के कई रूप (साहित्यिक अंग्रेज़ी, वाणिज्यिक अंग्रेज़ी, तकनीकी अंग्रेज़ी आदि) अध्ययन के लिए विकल्प से उपलब्ध हैं। यहाँ की शिक्षा व्यवस्था की एक और विशेषता भी ध्यान देने योग्य है और वह यह कि 'अकारा' द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनिवार्य विषयों के अलावा विद्यार्थी कतिपय अन्य वैकल्पिक विषयों का भी स्वेच्छा से अध्ययन कर सकता है। बोर्ड उन सभी विषयों की परीक्षा लेगा। अनिवार्य विषयों में पास होना तो आवश्यक है, पर श्रेणी निर्धारण के लिए कुल योग में उन्हीं चार विषयों के अंकों को सम्मिलित किया जाएगा जिनमें अंक सबसे अधिक होंगे।

अंग्रेज़ी से इतर जिन भाषाओं को यहाँ विद्यालय में अध्ययन की दृष्टि से अनुमति दी गई है उन्हें 'लोटे' (LOTE/ Languages Other than English) कहा जाता है। इस समय 'अकारा' ने लोटे के अंतर्गत जिन 11 भाषाओं को 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम' में सम्मिलित किया है उनमें यूरोप की तो पाँच ही भाषाएँ (इतालवी, फ्रांसीसी, जर्मन, स्पैनिश तथा आधुनिक ग्रीक) हैं, पर एशिया की छह भाषाएँ (मंदारिन, कोरियाई, वियतनामी, जापानी, अरबी और इंडोनेशियाई) हैं। अत: कुछ लोग यह भी कहते हैं कि ऑस्ट्रेलिया में एशियाई भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित किया जा रहा है। भाषाओं की परीक्षा केवल लिखित नहीं, मौखिक भी ली जाती है। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का अंग होने के कारण इन भाषाओं के अध्ययन/अध्यापन की सुविधा आवश्यकतानुसार विभिन्न विद्यालयों में उपलब्ध कराई जाती है।

आपने नोट किया होगा कि राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की उक्त सूची में हिंदी नहीं है, फिर भी ऑस्ट्रेलिया में माध्यमिक/उच्च माध्यमिक स्तर पर हिंदी का अध्ययन किया जा सकता है, क्योंकि 'लोटे' के अंतर्गत हिंदी सहित कतिपय अन्य ऐसी भाषाओं के 'अध्ययन' की अनुमति भी विद्यार्थियों को दी गई है जिनके अध्यापन की सुविधा स्कूलों में नहीं है। ऐसी भाषाओं का अध्यापन एक विशेष व्यवस्था के अंतर्गत 'मान्यता प्राप्त विभिन्न सामाजिक संगठनों' के सहयोग से किसी अन्य स्थान पर सप्ताहांत में (शनिवार और रविवार को) कराया जाता है। इसे यहाँ AHES (After hours ethnic schooling) कार्यक्रम कहते हैं। जो विद्यार्थी इनमें से किसी भाषा का अध्ययन करना चाहते हैं, उन्हें संबंधित केंद्र पर जाना होता है। सामान्यतया ये केंद्र प्रमुख शहरों में होते हैं। अत: छोटे शहरों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को इन केंद्रों पर जाने के लिए यातायात की व्यवस्था भी करनी होती है जिसमें विद्यार्थी का मूल्यवान समय तो नष्ट होता ही है, अतिरिक्त व्यय भी होता है जो ऑस्ट्रेलिया में अपने यहाँ की तुलना में काफी महँगा है, अत: लोग निजी साधनों का ही अधिक उपयोग करते हैं। अधिक दूर रहनेवाले विद्यार्थियों को दो दिन के लिए संबंधित बड़े नगर में आवास तक की व्यवस्था करनी पड़ सकती है। इसके अतिरिक्त इन बच्चों का सप्ताहांत भी पढ़ाई को समर्पित रहता है। उधर गृहकार्य स्कूलों में भी दिया जाता है और यहाँ भी। इस प्रकार बच्चों पर पढ़ाई का भार बहुत बढ़ जाता है। अत: हिंदी (तथा अन्य भी अनेक भाषाओं) को 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम' में शामिल करने की माँग की जा रही है ताकि उनके अध्ययन की व्यवस्था विद्यालयों में ही की जा सके।

हाल ही में 'अकारा' ने 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम' को संशोधित करने की परियोजना हाथ में ली थी। अत: सिडनी, मेलबर्न आदि विभिन्न स्थानों के हिंदीप्रेमियों/संगठनों ने हिंदी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की अपनी पुरानी माँग नए सिरे से दुहराई। अनेक लोगों ने तो अपने परिचितों को ईमेल भेजकर उन्हें इस विषय में जागरूक करने का अभियान चलाया और यह अनुरोध किया कि 'अकारा' को मेल भेजकर हिंदी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की माँग जोरदार ढंग से रखें; पर जब 'अकारा' से निराशा हाथ लगी तब उन्होंने सरकार से निवेदन किया। इन्हीं अनुरोधों का निबटान करने के लिए विक्टोरिया राज्य की सरकार ने 'अकारा' से यह पूछा है कि हिंदी को किस आधार पर 'राष्ट्रीय पाठ्यक्रम' में सम्मिलित नहीं किया गया?

बस इस समाचार से हमारे यहाँ के हिंदीप्रेमी बहुत आह्लादित हो गए। उन्हें ऑस्ट्रेलिया में हिंदी ही हिंदी दिखाई देने लगी। वे यह भूल

गए कि ऐसी सरकारी टिप्पणियों/प्रश्नों का कोई सकारात्मक अर्थ नहीं होता। अपने उत्साह में उन्होंने इस टिप्पणी के 'पुछल्ले' को भी नहीं देखा जिसमें सरकार ने 'अकारा' को स्पष्ट रूप से यह सुझाव दिया है कि हिंदी सहित जो अन्य भाषाएँ ऑस्ट्रेलिया में पढ़ाई जा रही हैं, उनकी सूची राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के परिशिष्ट के रूप में संलग्न कर दी जाए। यदि 'अकारा' ने विक्टोरिया सरकार का यह सुझाव मान भी लिया तो इससे वर्तमान स्थिति में कोई अंतर नहीं आएगा क्योंकि तब भी हिंदी का अध्यापन न तो स्कूलों में होगा और न नियमित कालांश में। उसकी पढ़ाई आज की ही भाँति पृथक केंद्रों पर सप्ताहांत में ही जारी रहेगी। जब तक हिंदी को राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित नहीं किया जाता तब तक उसके अध्ययन की व्यवस्था स्कूलों में की ही नहीं जाएगी और समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी।

पर इसमें कई पेंच हैं। पहला पेंच तो एक विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या का है। वर्तमान स्थिति यह है कि हिंदी विषय लेनेवाले विद्यार्थियों की संख्या पूर्णकालिक शिक्षक की व्यवस्था करने के लिए संतोषजनक नहीं है। ऑस्ट्रेलिया में बसे हुए भारतीयों की संख्या भले ही डेढ़ लाख हो, पर एक ओर तो भाषा की दृष्टि से वे तमिल, तेलुगु, गुजराती, पंजाबी आदि में विभाजित हैं। दूसरी ओर हिंदीभाषियों का अपनी भाषा के प्रति 'वैराग्य' उन्हें अपनी भाषा का अध्ययन करने से ही विरत करता है और इतर भाषा-भाषियों का अपनी भाषा के प्रति 'अनुराग' उन्हें अपनी भाषा के अतिरिक्त अपने देश की किसी दूसरी भाषा का अध्ययन करने से रोकता है। और फिर जब विदेशी भाषाओं के स्वर्ग का विकल्प मिल रहा हो तब तो अपनी नरकवाली भाषाओं की बलि देने में ही समझदारी है।

इस समाज-भाषा वैज्ञानिक यथार्थ की अभिव्यक्ति वहाँ जिस रूप में हुई है वह उन पत्रिकाओं में देखी जा सकती है जो परस्पर संपर्क बनाए रखने और ऑस्ट्रेलियाई समाज में 'अपनी पहचान' बनाए रखने की दृष्टि से इंटरनेट पर प्रसारित एवं पृथक से प्रकाशित की जाती हैं, और जिनमें से कुछ तो 14-20 हजार से भी अधिक संख्या में छापी जाती हैं। ये पत्रिकाएँ बिक्री के लिए नहीं, मुफ्त बाँटने के लिए होती हैं। इसीलिए विभिन्न संपर्क स्थलों (जैसे इंडियन स्टोर) पर रखी रहती हैं। मैं लगभग एक साल मेलबर्न के निकट रहा। मेलबर्न विक्टोरिया राज्य का ही नहीं, पूरे ऑस्ट्रेलिया का प्रमुख नगर है और इस नगर में तथा इसके आस-पास के नगरों में भारतीयों की संख्या भी काफी है। अत: मेलबर्न से निकलनेवाली लगभग 15 पत्रिकाओं का जब मैंने भाषावार विश्लेषण किया तो यह पाया कि पाँच-छह पत्रिकाएँ तो केवल पंजाबी, गुजराती, मलयालम, तेलुगु आदि की हैं, शेष अंग्रेज़ी में हैं। हाँ, अंग्रेज़ी की इन पत्रिकाओं में दो ऐसी भी हैं जिनमें अंग्रेज़ी के साथ एक पत्रिका में छोटा सा हिंदी खंड और दूसरी में अंग्रेज़ी के साथ हिंदी और पंजाबी खंड भी हैं। जरा ध्यान दीजिए, वहाँ रहनेवाले भारतीयों में सर्वाधिक हिंदीभाषी (70,000) हैं, पर कोई भी पत्रिका न तो केवल हिंदी की है और न मुख्यरूप से हिंदी की है। वहाँ तो 'राष्ट्रभाषा' के नाम को सार्थक करनेवाला (तमिल, मलयाली, बंगाली आदि की पत्रिकाओं में) हिंदी खंड तक नहीं है। इसके विपरीत, एक पत्रिका तो ऐसी मिली जिसके दो भाषाओं में अलग-अलग संस्करण निकल रहे हैं, पर भाषाएँ हैं—गुजराती और अंग्रेज़ी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विदेशों में भी हम या तो गुजराती-पंजाबी आदि हैं या फिर अंग्रेज़ी-भाषी 'इंडियन'। हमारी इस मानसिकता की एक परिणति यह भी हुई कि यहाँ की सरकार ने विदेशों से आए लोगों को उनकी ही भाषा में आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध कराने की जो प्रमुख व्यवस्था लगभग पंद्रह भाषाओं में की हुई है और जिसका वह तरह-तरह से विज्ञापन भी करती है, उसमें चीन की दो-दो भाषाएँ—केंटोनीज और मंदारिन (चीनी प्रवासियों की संख्या लगभग दो लाख) और यूरोप की क्रोशियन, पोलिश, मेसिडोनियन जैसी कई भाषाएँ भी हैं जहाँ के लगभग 50 हजार या उससे भी काफी कम लोग यहाँ रहते हैं; पर डेढ़ लाख से अधिक भारतीयों की कोई भाषा नहीं है।

इस वास्तविकता से इनकार नहीं किया जा सकता कि विदेश जाकर बसनेवाले भारतीयों का मुख्य प्रयोजन 'धनोपार्जन' करना है। उन्हें जो अवसर मिला है उसमें उनके अंग्रेज़ी ज्ञान ने ही उनकी सहायता की है, अत: अपने बच्चों का भविष्य भी वे अंग्रेज़ी में ही सुरक्षित मान रहे हैं। फिर भी अगर वे अपने बच्चों को हिंदी, बांग्ला, तमिल आदि पढ़ाना चाहते हैं तो इसलिए कि वे अपने देश और भाषा की गंध से वंचित होना नहीं चाहते। इसी गंध की तलाश में वे लगे हुए हैं; पर इस तथ्य को कैसे भूला दिया जाए कि पुष्प में गंध तब आती है जब वृक्ष को उपयुक्त खाद-पानी डाला जा रहा है तो ऑस्ट्रेलिया में हिंदी कैसे पनप सकती है ? हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की जड़ें यदि भारत में मज़बूत होंगी तो विदेशों में प्रवासी भारतीयों को अपने बच्चों की शिक्षा व्यवस्था में अपनी भाषा सम्मिलित कराने के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ेगा।

'गर्भनाल' से सभार

☐

19

हिंदी, हमारी प्रिय हिंदी

✍ **स्नेह ठाकुर**

- स्नेह ठाकुर का जन्म चित्रकूट, भारत में हुआ।
- 1965 से 1967 तक वे लंदन में रहीं तथा 1967 से आज तक वे कनाडा में रह रही हैं।
- 'वसुधा' साहित्यिक पत्रिका की संपादक, सद्भावना हिंदी साहित्यिक संस्था की अध्यक्ष, कनाडा विश्व संवाद की चेयर पर्सन तथा अन्य प्रकाशनों एवं संस्थाओं में अहम भूमिका निभाने वाली हैं।
- इन्होंने नाटक, काव्य, निबंध, गीत, भजन, गजल, रिपोर्ताज आदि हिंदी और अंग्रेजी में लेखन किया है।
- एडिटर्स चॉइस अवॉर्ड्स, साहित्य भारती सम्मान, रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल सम्मान आदि पुरस्कारों से स्नेह ठाकुर पुरस्कृत हो चुकी हैं।
- इनके निबंध, कहानी, कविता, रिपोर्ताज आदि सरिता, गृहशोभा, मुक्ता, भाषा सेतु, पहचान, गगनांचल, पुरवाई, नया सूरज आदि में प्रकाशित हो चुके हैं।
- अनेक सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है एवं इनके आयोजन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- वे मान्यता प्राप्त अधिकृत सांस्कृतिक दुभाषिया और अनुवादक हैं।

भाषा और संस्कृति का चोली-दामन का साथ है। भाषा के बिना संस्कृति जीवित नहीं रह सकती। भाषा संस्कृति की वाहिनी है। भाषा के बिना संस्कृति नहीं और संस्कृति समाज की आत्मा है। संस्कृति-विहीन समाज आत्मा-विहीन शरीर है।

संस्कृति को जिलाए रखना है तो भाषा को ज़िंदा रखना अति आवश्यक है। इस तथ्य से सभी परिचित हैं। भाषा के बिना साहित्य की कल्पना नहीं हो सकती। भाषा और साहित्य के बिना कला, दर्शन और संस्कृति के विकास और स्वरूप की कल्पना कैसी ? भाषा, कला, साहित्य, दर्शन, धर्म, राजनीति, अर्थ-व्यवस्था, दार्शनिक विवेचन, संस्कृति, जीवन और सभ्यता अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि परस्पर एक-दूसरे से आपस में जुड़े हुए हैं, एक-दूसरे पर आश्रित हैं और मिलकर ही हमें परिभाषित करते हैं।

यही कारण था कि हमें गुलामी की ज़ंजीरों में बाँधने के लिए लॉर्ड मैकाले ने हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता, हमारी भाषा को नष्ट करने की योजना का सुझाव दिया था। 2 फरवरी, 1835 को ब्रिटिश पार्लियामेंट को संबोधित करते हुए मॉर्डल मैकाले ने भारत के प्रति अपने संबोधन में जो उद्गार व्यक्त किए थे, उसका अंश यहाँ जैसे का तैसा उद्धृत कर रही हूँ जिससे कि उनका आशय उन्हीं के शब्दों द्वारा व्यक्त हो, अनूदित अंश पर किसी भी प्रकार के संशय या आक्षेप की गुंजाइश न रह जाए—

LORD MACAULAY'S ADDRESS TO THE BRITISH PARLIAMENT 2 FEBRUARY, 1835

I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a beggar, who is a thief. Such wealth I have seen in this country, such high moral values, people of such caliber, that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of this nation, which is her spiritual and cultural heritage, and, therefore, I propose that we replace her old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign and english is good and greater than their own, they will lose their self-esteem, their native culture and they will become what we want them, a truly dominated nation.

ठीक ही तो कहा था लॉर्ड मैकाले ने कि यदि भारत को अपने काबू में करना है तो उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को नष्ट करना होगा एवं भारत

की शिक्षा-प्रणाली व उसकी संस्कृति को बदलना होगा।

किसी भी देश की संस्कृति को नष्ट करना है तो उसकी भाषा को नष्ट कर दीजिए। भाषा नहीं तो साहित्य नहीं, और साहित्य नहीं तो वर्तमान और भविष्य की बागडोर विनाशकारियों के हाथ में स्वयं ही आ जाएगी। और तब उसे जो चाहे बना लेना बाएँ हाथ का काम होगा। सब कुछ अपने साँचे में ढाल लेना सहज, सुगम हो जाएगा। इतिहास तो तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है, नया इतिहास निर्मित किया जा सकता है। और फिर जब भाषा ही समाप्त हो गई तो कुछ सामग्री बची रहने पर भी कौन उसे पढ़-समझ सकेगा? या किसे उसके प्रति रुचि ही रह जाएगी? और यही हुआ भी। हम भारतीय होने के बावजूद भी क्या भारतीय रह पाए? भारतीय संस्कृति का विनाश भारतीयता का विनाश नहीं है क्या?

किसी भी देश की रीढ़ की हड्डी को तोड़ने, उस देश का निर्माता और कर्णधार बनने का सबसे सरल और सर्वोत्तम तरीका और कुछ हो ही नहीं सकता। हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखा ही चोखा। दूसरों की शिक्षा-प्रणाली द्वारा उन्हीं का सब कुछ पढ़ने-लिखने व उनकी बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लेने के बाद हम उनके द्वारा बनाए साँचे में पूर्णरूपेण ढलकर उनके उद्देश्य की पूर्ति अवश्य करेंगे पर साथ-ही-साथ हम अपने देश की सभ्यता, संस्कृति, आध्यत्मिकता, सदियों से मिली शिक्षा आदि के प्रति अज्ञानी के अज्ञानी ही रह जाएँगे।

किसी भी देश की रीढ़ की हड्डी को तोड़ने, उस देश का निर्माता और कर्णधार बनने का सबसे सरल और सर्वोत्तम तरीका और कुछ हो ही नहीं सकता। हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखा ही चोखा। दूसरों की शिक्षा-प्रणाली द्वारा उन्हीं का सब कुछ पढ़ने-लिखने व उनकी बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लेने के बाद हम उनके द्वारा बनाए साँचे में पूर्णरूपेण ढलकर उनके उद्देश्य की पूर्ति अवश्य करेंगे पर साथ-ही-साथ हम अपने देश की सभ्यता, संस्कृति, आध्यत्मिकता, सदियों से मिली शिक्षा आदि के प्रति अज्ञानी के अज्ञानी ही रह जाएँगे। किसी के हाथों की कठपुतली बनना अपने आत्म-सम्मान को मिटाना है, उसका हनन करना है। वैसे देखा जाए तो ऐसी परिस्थितियों में हमें अपने आत्म-सम्मान को मारने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है, क्योंकि मारा तो उसे जाता है जिसका अस्तित्व हो। जब आत्म-सम्मान जैसी कोई वस्तु ही नहीं होगी तो खत्म कैसे किया जाएगा! न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। अतः अपनी भाषा को भूलना, अपनी संस्कृति के अस्तित्व को मिटाना है।

भारत का यह दुर्भाग्य था कि अंग्रेज़ों की योजना सफलीभूत भी हुई। इस योजना का दंड उस समय तो क्या हम आज भी स्वतंत्र होने पर भी भुगत रहे हैं। स्वतंत्रता के इतने वर्षों के बाद भी हम चेते नहीं हैं। हम मूर्च्छावस्था में हैं; भाषा-रूपी संजीवनी लानेवाला, उसे हमें सुँघानेवाला कोई हनुमान भारत की पावन-पुनीत देव-भूमि में अभी तक अवतरित नहीं हुआ है।

हमें गुलामी की ज़ंजीरों से स्वतंत्र हुए अनेक साल हो गए हैं, पर क्या स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी हमारी राजभाषा हिंदी अंग्रेज़ियत की गुलामी से स्वतंत्र हो पाई है? हालाँकि बोलचाल की भाषा में हम हिंदी को यदा-कदा उत्सवों में राष्ट्रभाषा कहकर संबोधित अवश्य कर देते हैं पर क्या आधिकारिक रूप से यह राष्ट्रभाषा है? और फिर राजभाषा के रूप में भी तो इसे अपनी झोली में अंग्रेज़ी को साथ रखकर चलना पड़ता है। अपने ही घर में उपेक्षिता का जीवन निर्वाह करना पड़ता है। यदि भाषा अपने ही घर में सम्मानित न हो तो क्या संस्कृति जीवित रह पाएगी?

दूसरी भाषाओं का ज्ञान बुरी बात नहीं है, वरन् यह तो मस्तिष्क के व्यायाम के लिए एक बड़ा ही उपयोगी उपादान है, साधन है। भाषाएँ जितनी ही ज्यादा आएँगी मस्तिष्क उतनी ही ज्यादा जुगाली करेगा, जो उसे उसी मात्रा में तीक्ष्ण बनाएँगी।

आज की ग्लोबल कम्युनिटी में अन्य भाषाओं का ज्ञान सैद्धांतिक व व्यावहारिक, दोनों ही रूप से लाभदायक है। हम भारतवासी तो सदैव से ही वसुधैव कुटुंबकम् की धारणा को मानते चले आए हैं। आज के ग्लोबल समुदाय में तो पूरा विश्व ही एक-दूसरे के बहुत

निकट आ गया है। अत: भाषाओं का ज्ञान, विशेष रूप से अंग्रेज़ी का ज्ञान, व्यावहारिक रूप से आवश्यकता-सी बन गया है। यदि व्यावहारिक पक्ष को छोड़ भी दें तो भी सैद्धांतिक रूप से भी मस्तिष्क जितनी ज्यादा-से-ज्यादा भाषाओं का प्रयोग करेगा, वह उतना ही तीक्ष्ण होगा। ज्ञान तो एक ऐसा अंधा कुआँ है कि जितना ही आप उसमें डूबते जाते हैं, उतनी ही उसके तल की गहराई बढ़ती जाती है।

तो प्रश्न यह नहीं है कि हम अन्य भाषाओं के ज्ञान से स्वयं को परिचित या वंचित करें या नहीं। प्रश्न तो यह है कि हम अन्य भाषाओं, विशेष रूप से अंग्रेज़ी की व्यावहारिक उपयोगिता बनाए रखें, क्योंकि खासकर आप्रवासी भारतीयों, भारतवंशियों के संदर्भ में इसकी आवश्यकता, इसकी अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता। किंतु फिर भी हमें अपनी राजभाषा, राष्ट्रभाषा हिंदी को यथोचित गौरवशाली स्थान अवश्य ही दिलाना चाहिए। हममें किसी भी दूसरी भाषा के प्रति दुर्भावना नहीं होनी चाहिए, पर साथ अपनी भाषा के प्रति आत्म-सम्मान अवश्य ही होना चाहिए। उसे उसका प्राप्य मिलना ही चाहिए। यह किसी एक का नहीं, हम सभी भारतीयों का, भारतवंशियों का दायित्व है, चाहे वे दुनिया के किसी भी कोने में हों। हमें अपनी संस्कृति को जिलाए रखने, उसे बढ़ाने और उसे भावी पीढ़ी को विरासत में छोड़ने के लिए इस ज़िम्मेदारी का, इस दायित्व का निर्वाह करना ही पड़ेगा। इस दायित्व का वहन करने के सिवा कोई चारा नहीं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था, ''अगर हमारे देश का स्वराज्य अंग्रेज़ी बोलनेवाले भारतीयों का और इन्हीं के लिए होनेवाला है तो नि:संदेह अंग्रेज़ी ही राजभाषा होगी। लेकिन अगर हमारे देश के करोड़ों भूखों मरनेवाले, करोड़ों निरक्षर बहनों और दलित जनों का है और इन सबके लिए होनेवाला है तो हमारे देश में हिंदी ही एकमात्र राजभाषा हो सकती है।''

एक अन्य अवसर पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था, ''बहुत पहले ही मुझे इस बात का विश्वास हो गया था और मेरा विश्वास तब से अनुभव द्वारा पुष्ट होता रहा है कि यदि कोई भारतीय भाषा कभी भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है और यदि भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो किसी-न-किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना ही चाहिए, तो वह भाषा केवल हिंदी है और मैं हमेशा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन ने कहा था कि ''राष्ट्रीय एकता का सर्वश्रेष्ठ माध्यम हिंदी है। हिंदी वह धागा है जो विभिन्न मातृभाषाओं-रूपी फूलों को पिरोकर भारत-भाषा के एक सुंदर हार का सृजन करेगा''। पंडित जवाहरलाल नेहरूने कहा था, ''भारत के हित में, भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के हित में, ऐसा राष्ट्र बनाने के हित में जो अपनी आत्मा को पहचाने, जिसे आत्म-विश्वास हो, जो संसार के साथ सहयोग कर सके, हमें हिंदी को अपनाना चाहिए।'' स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गांधी ने देश के भविष्य के लिए, देश की एकता और अस्मिता के लिए हिंदी को ही राष्ट्र की संपर्क भाषा माना। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सूत्र-रूप में कहा, ''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।'' गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबंध में लिखा है, ''जिस हिंदी भाषा के खेत में ऐसी सुनहरी फसल फली है, वह भाषा भले ही कुछ दिन यों ही पड़ी रहे, तो भी उसकी स्वाभाविक उर्वरता नहीं मर सकती, वहाँ फिर खेती के सुदिन आएँगे और पौष मास में नवान्न उत्सव होगा।'' डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने कहा था, ''हिंदी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की भारती के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए।'' नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने यह घोषणा की थी, ''हिंदी के विरोध का कोई भी आंदोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है।'' इंदिरा गांधी ने कहा था, ''हिंदी देश की एकता की ऐसी कड़ी है जिसे मज़बूत करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। इतने बड़े देश में जहाँ इतनी भाषाएँ हैं वहाँ देश की एकता के लिए आवश्यक है कि कोई ऐसी भाषा हो जिसे सब बोल सकें। जो एक कड़ी की तरह सबको मिल-जुलकर रख सके, इसीलिए हिंदी को बढ़ाना हम सबका कर्तव्य है।'' हिंदी के प्रबल पक्षधर डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी न केवल वर्षों सदन में हिंदी के लिए लड़े, वरन् वे आजन्म हिंदी के प्रति समर्पित रहे।

इतना कुछ कहे जाने के बाद भी हिंदी की जो स्थिति होनी चाहिए वह नहीं है। तो अब प्रश्न यह उठता है कि इस दिशा में हम प्रयत्नशील हैं या नहीं? अधिकतर यह सुनने में आता है कि हम अकेले क्या करें, ज़माना ही ऐसा है। हाँ, यह सत्य है कि अकेला

चना भाड़ नहीं फोड़ सकता; पर साथ ही यह भी सत्य है कि यदि एक 'अकेला' स्वयं चलने की हिम्मत जुटा ले, तो मुझे विश्वास है कि उसके साथ ऐसे कई और 'अकेले' जुड़ जाएँगे और इन 'अकेलों' का एक काफिला ही बन जाएगा। कारवाँ चल पड़ेगा। समुदाय, समाज बनाने के लिए हम 'अकेलों' को जुड़ने की आवश्यकता है। अकर्मण्य बैठने की नहीं। कर्मण्यता ही इसकी कुंजी है।

तो,

उठा कर झंडा तिरंगा
कर लो आज ये प्रतिज्ञा
भाषा और संस्कृति की रक्षा
है कर्म हमारा…

'मातृभाषा उन्नति है सब उन्नति का मूल', यदि हम इस ध्येय को अपने सामने रखेंगे, तभी हम समुदाय, समाज, राष्ट्र तो क्या स्वयं के प्रति भी सत्य का निर्वाह कर पाएँगे। तभी स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस मनाने का औचित्य होगा।

अब हम सभी को कथनी को करनी बनाने का दायित्व निभाना है। अत: इस सोच में समय गँवाने की जगह कि दूसरा क्या कर रहा है, हिंदी के उत्थान का दायित्व हम सभी को लेना है; भारत के साथ-साथ विदेशों में बसे भारतवंशियों को भी। हमें एक दूसरे से कंधे से कंधा जोड़ आगे बढ़ाना है। भारतवंशियों से आग्रह है कि वे हिंदी के प्रति संकल्पित, कटिबद्ध हों। यह सच है कि विदेशों में हिंदी चार कदम आगे बढ़ती है तो दो कदम पीछे घिसट जाती है। यह एक चिकनी पहाड़ी के समान दुर्गम्य, दुर्दम्य अवश्य है, इस पर चढ़ना दुरूह, दूभर अवश्य है पर असंभव कदापि नहीं। हमें इससे हतोत्साहित नहीं होना है, वरन् इससे प्रेरित होना है कि चाहे हमारी गति धीमी है पर हम एक न एक दिन अवश्य सफलता का शिखर चूमेंगे। वह मंज़िल ही क्या जो आसानी से मिल जाए। कठोर परिश्रम से मिली सफलता का आनंद कुछ और ही है। अत: हमें अपने उद्देश्य पर दृढ़ रहना है। संशय को मन से निकाल देना है। कर्म पर डटे रहना है क्योंकि कर्म संशय को काटते हैं। हमें यह मानकर चलना है कि हिंदी के प्रति कोई भी सजग, कर्मशील व्यक्ति अकेला नहीं है। अलग-अलग बूँदें अपने जैसी अन्य बूँदों को मिला, एकजुट हो सागर का निर्माण करती है और सच तो यह है कि बूँद भी अकेली नहीं होती, बूँद में ही समुद्र है और समुद्र में ही बूँद। संकल्प भय नहीं मानता। इरादे नेक हों तो रुकावटें स्वयं ही मुँह फेर लेती हैं। कभी ऐसी रात्रि नहीं आती जिसके अंधकार में प्रकाश दस्तक न देता हो। सृजन अंधकार का ही प्रकाश है। मनुष्य की सबसे बड़ी भूल ही यह है कि वह दुर्बल है। दुर्बलता, अकर्मण्यता मृत्यु है। बल, कर्मठता ही जीवन है। बल, कर्म, तमाम भाव रोगों की एकमात्र औषधि है। अत: हमें हिंदी के उत्थान के प्रति किए गए संकल्पों की बार-बार पुनरावृति करनी है, उसमें नव-प्राण फूँकने हैं। हमें राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की इस घोषणा को साकार करना है—

है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी
हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।

भावी पीढ़ी को भारतीय संस्कृति की मशाल जलाए रखने के लिए स्वयं के साहित्य की आवश्यकता है। अपनी भाषा में रचित साहित्य की आवश्यकता है, अनूदित साहित्य की नहीं। अनुवाद अनुवाद ही है, उसमें वे बात आ ही नहीं सकती जो मातृभाषा में है। आ नहीं सकती खुशबू कागज़ के फूलों से। प्यार से कहा गया, रोष

हमें गुलामी की ज़ंजीरों से स्वतंत्र हुए अनेक साल हो गए हैं, पर क्या स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी हमारी राजभाषा हिंदी अंग्रेज़ियत की गुलामी से स्वतंत्र हो पाई है? हालाँकि बोलचाल की भाषा में हम हिंदी को यदा-कदा उत्सवों में राष्ट्रभाषा कहकर संबोधित अवश्य कर देते हैं पर क्या आधिकारिक रूप से यह राष्ट्रभाषा है? और फिर राजभाषा के रूप में भी तो इसे अपनी झोली में अंग्रेज़ी को साथ रखकर चलना पड़ता है। अपने ही घर में उपेक्षिता का जीवन निर्वाह करना पड़ता है। यदि भाषा अपने ही घर में सम्मानित न हो तो क्या संस्कृति जीवित रह पाएगी?

से कहा गया, अन्य भावों से कहा गया वाक्य 'तुम गधे होगें के कई भावार्थ निकलते हैं, पर अंग्रेज़ी में अनुवाद ''यू आर डॉन्की'' के भावार्थ से भावार्थ तो क्या, कहीं कुछ अर्थ भी नहीं निकलता। अनुवाद का अपना अलग स्थान व महत्त्व है, पर अपनी भाषा सर्वोपरि होनी चाहिए।

सरस्वती माँ ने मुझ अकिंचन पर अपनी कृपा-दृष्टि डाल अपनी उपासना के अवसर प्रदान किए हैं। उन्हीं की कृपा से थोड़ा-बहुत साहित्य सृजन, साहित्य अर्चना से जुड़ी रहती हूँ। भारतीय व नार्थ अमेरिकन एवं देश-विदेश की पत्रिकाओं तथा साहित्य की हर विधा में लिखी अपनी पुस्तकों द्वारा यथासंभव माँ सरस्वती की उपासना का प्रयास करती आ रही हूँ। यद्यपि यह प्रयास बहुत ही छोटा, सागर में बूँद की तरह है।

प्रयासों की इस लड़ी में कई वर्षों से एक कड़ी और जोड़ी है, 'वसुधा'। 'वसुधा' हिंदी साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका द्वारा मेरा प्रयास है कि भारतीय साहित्यकार एवं आप्रवासी भारतीय साहित्यकारों से, अधिकाधिक भारतीय व भारतवंशियों को अवगत कराया जाए। हिंदी साहित्य और भारतीय संस्कृति संसार के कोने-कोने में फले-फूले। 'वसुधा' हिंदी के प्रति माँ सस्स्वती के लिए अंजुरी-भर अर्घ्य है। जिसमें सभी साहित्यकारों की रचना-धाराएँ मिश्रित हो प्रवाहित हो रही हैं और पाठकगण ह्दय से उनका स्वागत कर रहे हैं। 'वसुधा' हिंदी के उत्थान के लिए हम सबका मिला-जुला प्रयास है, परिश्रम है, माँ की वंदना है।

मेरे छोटे-छोटे प्रयास व संकल्प उस महत् की निम्नतम श्रेणी तक भी नहीं पहुँच पाएँगे। मैं तो केवल सरस्वती माँ की अनुकंपा से शब्दों की उधेड़-बुन कर जो भी शब्द-जाल रचित होता है उसे माँ के ही चरण-कमलों में अर्पित कर देती हूँ। और रचनाओं के भावों से जो भी चित्र मन में उभरकर गुँथता है उस चित्र को परमेश्वर की कृपा से मिली चित्र-कला की क्षमता द्वारा चित्र-पट पर, कैनवस पर उतार, रंगों से अलंकृत कर, उन्हें ही समर्पित कर देती हूँ इस भाव से कि, 'तेरा तुझको अर्पण क्या लगे मोरा', क्योंकि यह उनकी कृपा ही है जो मुझसे कुछ थोड़ा-बहुत करवा देती है।

नियमित रूप से यदि कोई पत्रिका घर में आती है, बैठक की मेज़ पर रखी रहती है, तो आते-जाते घर के हर सदस्य की नज़र उस पर पड़ती ही है। वह अनायास ही, जीवन के व्यस्त क्षणों में भी आपको अपनी ओर खींचती है। और जब घर में उस पत्रिका की किसी भी रचना पर किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया होती है, तो हिंदी की गूँज पूरे घर में गुँजायमान हो जाती है, यही गूँज अन्य स्थानों पर भी हिंदी का वातावरण बनाने में समर्थ होती है।

पत्रिका या पुस्तकाकार में छपी रचना केवल शब्दों का टंकन ही नहीं है, यह तो सघन स्मृतियों का समूचा भावलोक है। वास्तव में अनेकानेक ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें पढ़ते ही मानव उन्हें अपने अंतस् के किसी माया-लोक में सुरक्षित रख लेता है, भविष्य में जब कभी वह उस पढ़े हुए प्रभाव को याद करता है, अनायास ही, बिना किसी प्रयास के, अंतस् के उस माया-लोक में आनंद लेने के लिए पहुँच जाता है। इस प्रभाव को स्मृति के जादुई स्पर्श से कभी भी जिया और पाया जा सकता है। अच्छा साहित्य मानव की अमूल्य निधि है। यही भावी पीढ़ी की विरासत है।

संस्कृति की रक्षा के लिए
भाषा की रक्षा है जरूरी
हिंदी के उत्थान के लिए
करना है हमें प्रयत्न भारी।

चार दशकों से ऊपर इस स्वदेश बने विदेश में अपनी मातृभूमि की स्मृति में, अपनी संस्कृति और अपनी मातृभाषा की अलख जगाए रखने की बस एक उत्कृष्ट आकांक्षा ही मेरी एक छोटा सा योगदान है। इन वर्षों के आवास में जहाँ बहुत कुछ भारतीय संस्कृति मुझसे छिनी, वहीं यह आवास मुझे अपनी संस्कृति और अपनी मातृभाषा हिंदी के अत्यधिक निकट भी लाया। इस प्रवास ने ही अपनी संस्कृति और अपनी भाषा को जिलाए रखने की एक अदम्य इच्छा मुझमें जागृत की है।

शायद यही नियति है कि जब आपसे कुछ छिन जाता है तभी आप उसकी कद्र को पहचानते हैं, उसका मूल्य जान पाते हैं। जो कुछ सहज सुलभ है उसे आप अनमोल हीरा होने पर भी, जाने-अनजाने हीरे की उपाधि से विभूषित न कर, असंपृक्त हो किसी काँच के टुकड़े की तरह एक कोने में फेंक या तो उसकी विस्मृतता का नाटक करने लगते हैं या उसे सचमुच ही विस्मृत कर देते हैं।

यहाँ एक बात और कहना चाहूँगी। वर्षों मुझे प्रवासी या आप्रवासी

शब्द खटकता रहा, हृदय में शूल की भाँति चुभता रहा जैसे किसी ने मुझे निर्वासित कर दिया हो। मैं कहीं भी रहूँ, भारतीय तो हूँ ही, वह भारतीयता का अंग अपने से कैसे काट सकती हूँ और साथ ही किसी दूसरे को भी उस भारतीयता के अंग को मुझसे काटने का अधिकार कैसे दे सकती हूँ। अत: जब एक चर्चा के दौरान प्रिय डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी जी ने इस दिशा में मुझे एक बहुमूल्य शब्द 'भारतवंशी' दिया तो बहुत ही सुखद अनुभूति हुई जिसने प्रवास शब्द से त्रस्त मन-प्राण के त्रास की ताप को मिटाया।

जो भी व्यक्ति भारत से बाहर गए हैं चाहे वे किन्हीं कारणों से गए हैं, पर हैं तो वे भारतीय ही। इस धरती की मिट्‌टी ने ही उन्हें पाल-पोसकर इस काबिल बनाया है कि वे धरती के किसी भी छोर पर गर्व से सिर उठाकर कह सकें कि हम भारतीय हैं, भारतवंशी हैं, बनिस्पत् इसके कि हम प्रवासी हैं या आप्रवासी हैं। जिस भी देश में हम बस गए हैं, उसके प्रति भी हमारे कर्तव्य हैं और हमें उनसे मुँह नहीं मोड़ना है। हम दोनों ही देशों के बीच अपने संबंधों में माँ और मौसी का रिश्ता क्यों नहीं कायम कर सकते हैं ? माँ माँ ही है पर साथ ही माँ जैसी प्रिय 'मासी', मासी भी तो हो सकती है, भारत ने हमें अन्नपूर्णा बनाया है, उदार बनाया है, देने में कभी भी कृपण नहीं बनाया है। हमारा इतिहास उदारता का कोष है। हमें यही सिखाया गया है कि प्यार मिलेगा, घृणा दोगे तो घृणा। तो फिर स्नेह बाँटने में कृपणता की जगह उदारता का हाथ क्यों नहीं पकड़ें। उसमें हिचक कैसी! हम देश में रहे चाहे विदेश में, इतनी अमूल्य रत्न-जड़ित भारतीय संस्कृति जो हमें विरासत में मिली है, उसका प्रचार-प्रसार न करना आत्म-हनन होगा। हाँ, जिन देशों में हम बसे हुए हैं उनकी संस्कृति तथा मूल्यों को समझना भी हमारा ही दायित्व है और उन्हें समझकर उनकी अच्छी बातों को स्वयं के शीशे में उतरना भी हमारा ही कर्तव्य है। कोई भी संस्कृति न पूर्णतया खराब होती है और न ही संपूर्णतया अच्छी ही। वह देश, समय, काल से प्रभावित होती है। वातावरण से अप्रभावित रहना असामान्य है। अत: सब तथ्यों को ध्यान में रखकर हमें सहृदयता का परिचय देना है। हमें हर एक का सम्मान करना सिखाया गया है। दूसरों को दिए गए यथोचित् सम्मान से ही आप अपने आत्म-सम्मान की रक्षा कर सकते हैं। कम-से-कम मेरी ऐसी मान्यता है।

इतिहास अतीत की व्याख्या है। साहित्य वर्तमान का दर्पण है और समाज का भविष्य निर्माता भी। साहित्यिक गतिविधियों द्वारा ही हम, भारतीय समाज-प्रवासी व आप्रवासी का, न केवल वर्तमान उज्ज्वल बनाएँगे वरन् उज्ज्वल भविष्य की नींव, ठोस आधार-शिला का निर्माण भी करेंगे।

जहाँ एक ओर साहित्यकार के लिए स्वांत: सुखाय, आत्माभिव्यक्ति, मानवीयता एवं सामाजिक दायित्वों हेतु लेखन जरूरी होती है, उसके बिना वह रह नहीं सकता, लिखना श्वास लेने की प्रक्रिया के समान है; वहीं दूसरी ओर पाठकों द्वारा उसका पठन भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। साहित्यकार की रचनाओं का पाठकों द्वारा पठन साहित्य का चरमोत्कर्ष है। सभ्य-सुसंस्कृत समाज के लिए ये दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। इसके भार दोनों के कंधों पर है। भारतीय राजभाषा-राष्ट्रभाषा को संसार के कोने-कोने में पहुँचाना, उसे यथोचित् सम्मान दिलाने का दायित्व जितना साहित्यकारों का है, पाठकों का दायित्व उससे किसी भी दशा में कम नहीं। हम सब हाथ की उँगलियों के समान हैं जो कार्यरत हो बहुत कुछ कर सकती हैं पर जब वे एक मुट्‌ठी में बँध जाती हैं तो सशक्त हो जाती हैं। हम सभी को इस प्रयास-कर्म में अपना-अपना धर्म निभाने के लिए सशक्त मुट्‌ठी बनना है। साहित्यकारों की उँगलियों से जुड़ी पाठकों की उँगलियाँ ही लक्ष्य का अंतिम पड़ाव है। जिस तरह अभी तक प्रशंसनीय उत्साह से आगे बढ़ रहे हैं उसी तरह हम उत्साह की डोर पकड़े इस पहाड़ी पर चढ़ते चले जाएँ तो शिखर कैसे न मिलेगा! मंज़िल दूर है पर दु:साध्य नहीं। हमारी प्रिय हिंदी ने संसार के कोने-कोने में अपनी हरी-भरी शाखाएँ फैला दी हैं। यहाँ तक कि आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन ने संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय के मुख्य सभागार में हिंदी का ध्वज गर्वपूर्वक फहराया है जिसका कनाडा से विशिष्ट अतिथि के रूप में साक्षी होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

न्यूयॉर्क में 13, 14 एवं 15 जुलाई, 2007 को आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न हुआ। घोषणा-पत्र की सारी बातें कब तक पूर्णरूपेण सफलीभूत होंगी, यह तो भविष्य ही बताएगा, पर संयुक्त राष्ट्र संघ का परिसर एवं मुख्यालय अवश्य ही सैकड़ों भारतीय व भारतवंशियों के कंठों से निकली प्रिय हिंदी की मधुर ध्वनि से गुंजायमान

हुआ। यहाँ तक कि संयुक्त राष्ट्र के महासचिव श्री बान की मून ने उद्‌घाटन-सत्र को हिंदी में संबोधित कर व हिंदी में कुछ वाक्य कहकर एक नया इतिहास तो रच ही डाला।

तत्कालीन विदेश राज्मंत्री श्री आनंद शर्मा ने अपने वक्तव्य में कहा था, संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्‌घाटन का होना और वहाँ दुनिया के कई देशों के हिंदी प्रेमियों, करीब पचास देशों के राजनयिकों और अनेक देशों के मंत्रियों के एक मंच पर हिंदी की आवाज़ बुलंद किए जाने से विश्व मंच पर हिंदी तो पहुँच ही चुकी है, आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का ध्येय वाक्य 'विश्व मंच पर हिंदी' साकार होता दिखाई दे रहा है।

न्यूयॉर्क में संपन्न हुआ आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन इस बात का साक्षी है कि हम प्रगति कर रहे हैं। प्रगति के पथ पर उत्कृष्टता की ओर बढ़नेवाले कदमों का अंतिम छोर नहीं होता—यह तो हर बार एक नई शुरुआत है। प्रत्येक उपलब्धि अगले महान लक्ष्य के लिए प्रथम चरण होती है। विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। बाधाओं का शनै:-शनै: विनाश कर, लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है; अंधकार के काले आवरण में नन्हे-नन्हे, झीने-झीने ही सही, छिद्रानिवेशों से आशा की सुनहरी किरणों को धरा पर उतार आश्वस्तता प्रदान करती है। यदि अब तक की विकास-यात्रा किसी बात का संकेत देती है तो वह यह है कि यदि हम लक्ष्य के प्रति एकाग्रचित्त हो प्रयासरत रहें तो आनेवाली पीढ़ियों के लिए भविष्य उज्ज्वल होगा। कर्म के प्रति हमें सजग रहना है। बाधाओं के झंझावात् से डरकर मुँह मोड़ने की जगह हमें डटकर उनका सामना करना है। प्रिय राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति भविष्य की पीढ़ियों के प्रति, कर्म-स्थली में डटे रहना ही हमारा सबसे बड़ा योगदान है। हिंदी को शीर्षस्थ तक पहुँचाना ही हमारा परम ध्येय होना चाहिए। 'मातृभाषा उन्नति है सब उन्नति का मूल' की धारणा को साकार करने के लिए हमें हिंदी को उच्चतम शिखर पर पहुँचा, गौरवशाली बना, अलग पीढ़ी को विरासत में देना ही होगा।

वैसे वास्तव में तो प्रश्न हमारा-आपका, भारतीयों-भारतवंशियों का, नई पीढ़ी-पुरानी पीढ़ी का भी इतना नहीं है जितना कि प्रश्न है हिंदी के प्रति गर्व का, उसकी महत्ता पर चार चाँद लगाने का, उसकी गौरव-गाथा को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने का। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है हम देश में रहें चाहे विदेश में, इतनी अमूल्य रत्न-जटित भारतीय संस्कृति जो हमें विरासत में मिली है, उसका प्रचार-प्रसार न करना आत्म-हनन होगा।

हिंदी के प्रचार-प्रसार-विकास का जो महत्त्वपूर्ण कार्य मॉरीशस में हो रहा है वह स्तुत्यनीय है। सन् 1975 में मॉरीशस के प्रधानमंत्री माननीय डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने मॉरीशस में हिंदी के प्रति जो स्वप्न देखा था उस स्वप्न को साकार करने के लिए उनके सुपुत्र प्रधानमंत्री माननीय डॉ. नवीनचंद्र रामगुलाम ने इसे प्रगति की दिशा में आगे बढ़ाया। 26 वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' की नींव पड़ी। यह शिलान्यास रंग लाया और अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधियों के साथ सन् 2008 से 'विश्व हिंदी समाचार' त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन भी होने लगा। हर्ष की बात है कि अब 'विश्व हिंदी पत्रिका' का तीसरा अंक 'विश्व हिंदी पत्रिका : 2011' का प्रकाशन भी आरंभ हो गया है। क्या कठिन परिश्रम से प्राप्त यह महा-उपलब्धि हमें इसी तरह परिश्रमरत हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने हेतु प्रेरित नहीं करती ?

अत: हिंदी की उत्तरोत्तर प्रगति की इस पृष्ठभूमि पर कदम रख हम सभी हिंदी-प्रेमी, आइए एकजुट हों—

हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।
तन से, मन से, धन से
तन, मन, धन जीवन से
''हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

हृदय से, वाणी से, निश्छल, निर्मल मति से
श्रद्धा से नतमस्तक
''हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

खिलते शैशव से, उमगते यौवन से
प्रौढ़ता की प्रज्ञा से, गौरव से

''हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।
ले सीख इतिहास से, अतीत के गौरव से
सुखद भविष्य का निर्माण करें
''हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।

बँधे कर्तव्य से, तिरंगे की शान से
सर ऊँचा उठा गर्व से
''हम करें राष्ट्र अभिवादन
हम करें राष्ट्र-भाषा आराधन।''

हमें घर-बाहर, समाज में हिंदी का वातावरण बनाना है। हर हिंदी-प्रेमी को हिंदी के प्रचार -प्रसार-विकास के प्रति संकल्पबद्ध हो हिंदी की गूँज पूरे विश्व में अनवरत् गुँजायमान करनी है। हिंदी के उत्थान के लिए हमें एकाग्रता से जुटे रहना है। भाषा केवल शब्दों का टंकन ही नहीं है; भाषा तो संस्कृति की वाहिनी है। यही भावी पीढ़ी की विरासत है। अत:—

एकाग्रता से जुटे रहो
हिंदी-सुमन-सुगंधि बिखरते चलो
आज हैं हम जितने यहाँ
उनमें औरों को भी मिलाते चलो।
हिंदी का दायरा बढ़ते चलो,
है दम लोगों की एकता में
न समझो मामूली भीड़ इसे
समाज की रीढ़ है यह भीड़ ही
करेगी मुखर जिसे साहित्यकार की लेखनी
मिल कर दोनों बनाएगी इतिहास गौरवशाली।
एकाग्रता से जुटे रहो
हिंदी-सुमन अर्पित करते चलो
बढ़े चलो, बढ़े चलो।
जय भारत, जय भारती, हिंदी की गूँज अनवरत गूँजती रहे।

16 Revlis Crescent
Toronto
Ontario MvV-1E9
Canada

□

जिस देश में आपने जन्म लिया है, उसके प्रति कर्तव्य-पालन से बढ़कर मूल्यवान कोई दूसरा काम है ही नहीं।

—वीर सावरकर

डायस्पोरा साहित्य के इतिहास पर विशेष आलेख

20

सााहित्य में प्रवासी हिंदी साहित्य

✍ **अर्चना पैन्यूली**

- **जन्म :** 17 मई, 1963, कानपुर, भारत।
- **शिक्षा :** गढ़वाल विश्वविद्यालय, देहरादून से एम.एस.सी।
- 1997 से डेनमार्क के कोपेनहेगन शहर में बसी हुई हैं।
- पेशे से शिक्षक हैं तथा लेखन में इनकी रुचि है। ये कहानियाँ, उपन्यास, लेख तथा कविताएँ लिखती हैं।
- इनकी 50 से भी अधिक कहानियाँ वागार्थ, हंस, कथादेश, प्रवासी, संसार जैसी पत्रिकाओं में एवं जाल स्थलों में प्रकाशित हुई हैं। इनकी दो पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

सन् दो 2000 से 'प्रवासी हिंदी साहित्य' ने भारतीय हिंदी साहित्य जगत में एक नए आयाम को प्रस्तुत किया है। साहित्य में दलित साहित्य, मुसलिम साहित्य, स्त्री विमर्श इत्यादि संज्ञाओं से लेखन को चिह्नत किया जाना तभी से चलन में है। इसी कड़ी में प्रवासी हिंदी साहित्य को भी जोड़ लिया जाए तो विसंगति तो नहीं है मगर लक्षणों के आधार पर साहित्य की यह खेमेबाजी कई साहित्यकारों को सीमा तक ही ठीक लगती है। अधिकांश प्रवासी लेखक स्वयं के लिए एक 'प्रवासी लेखक' का लेबल तुच्छ समझते हैं। जब लेखकों व लेखन के बारे में चर्चा होती है तो स्वयं को प्रवासी लेखक खेमे में पाना उन्हें क्षुब्ध करता है। वे साहित्य को उसकी संपूर्ण समग्रता से देखना चाहते हैं।

गौरतलब है कि साहित्य की यह खेमेबाजी विश्व की अन्य भाषाओं में नहीं दिखती है। मसलन डेनमार्क की सुप्रसिद्ध लेखिका कारेन बिलिक्शन ने अपनी लोकप्रिय रचनाएँ इटली व अफ्रीका में अपने प्रवासकाल के दौरान लिखी थी। उन रचनाओं को डेनिश साहित्य जगत ने 'प्रवासी' नाम नहीं दिया। कितने ही मुल्कों के लेखकों ने अंग्रेज़ी में रचनाएँ लिखकर अंग्रेज़ी साहित्य में एक विशेष स्थान पाया है पर हमने आज तक नहीं सुना 'प्रवासी अंग्रेज़ी साहित्य'।

प्रश्न यह है कि कौन आज प्रवासी हिंदी साहित्य में संलग्न हैं? अगर तेजेंद्र शर्मा, सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, इला प्रसाद, रेनू गुप्ता, कृष्ण बिहारी, गौतम सचदेव, सुरेश शुक्ल, उषा राजे, पूर्णिमा वर्मन, अंजना संधीर, उषा प्रियंवदा और मेरा स्वयं या अन्य कई कथाकारों का नाम गिनो जो विदेशों में रहकर हिंदी साहित्य सर्जन कर रहे हैं तो मैं समझती हूँ कि ये वे लोग हैं जो भारत में जन्मे, वहाँ पले-बढ़े, अपनी युवा या अधेड़ उम्र के किसी दौर में विदेश प्रवासित हुए। साहित्य सर्जन की नींव इन सभी कथाकारों की अपने वतन हिंदुस्तान में ही पड़ गई थी। विदेश प्रवासित होकर उनका केवल निवास व परिवेश बदला। अनुभव का क्षेत्र विस्तीर्ण हुआ। फर्क इतना है कि जब ये हिंदी कथाकार विदेश में रहने लगे तो प्रवासी लेखक कहलाने लगे। दरअसल वे सभी हिंदुस्तानी हैं। ये वैसे ही हैं जैसे कोई हिंदुस्तान के किसी देहात से विस्थापित हो दिल्ली, मुंबई, लखनऊ या बंगलौर महानगर आकर बस जाएँ। अंतर यह है कि इन तथाकथित प्रवासी लेखकों ने और लंबी दूरी तय की, विस्थापन के लिए एक अधिक दूरस्थ गंतव्य का चयन किया।

न जाने किस हिंदी साहित्यकार ने 'प्रवासी हिंदी साहित्य' एक अलग खेमे का निर्माण किया। साहित्य मर्मज्ञों ने कैसे इस खेमे को मान्यता दी। मगर यह खेमा अब हिंदी साहित्य के क्षेत्र में पूर्णरूपेण स्थापित हो चुका है। समकालीन हिंदी साहित्य का यह एक नया विमर्श है। विभिन्न पत्रिकाएँ, प्रकाशन, साहित्यिक संस्थाएँ व शोध विद्यार्थी 'प्रवासी हिंदी लेखन' के तहत विदेशों में रचे जा रहे हिंदी लेखन को प्रकाशित, उनमें चर्चा या शोध कर उस सर्जन को रेखांकित तो कर ही रहे हैं साथ ही हिंदी जगत को एक विभिन्नता भी दे रहे हैं।

जहाँ तक प्रवासी साहित्य का हिंदी जगत में स्थान का प्रश्न है तो कोई भी साहित्य भाषा पर निर्भर करता है। भाषा के महत्त्व को समझे बगैर हम साहित्य का महत्त्व नहीं समझ सकते। हिंदी की स्थिति हमेशा विवादास्पद रही। अगर हम हिंदी के विकास की बात करें तो यद्यपि वेद, उपनिषद् जैसे समृद्ध भारतीय साहित्य की सृष्टि प्राचीन काल से ही होती आई है, लेकिन मानक हिंदी, यानी खड़ी बोली का विकास मात्र एक हजार वर्ष पुराना है। हमारा प्राचीन साहित्य अवध व ब्रजभाषा में है। विशुद्ध हिंदी साहित्य तो मात्र सात सौ वर्ष पुराना है जब सूफी कवि अमीर खुसरो ने इसका उपयोग किया। व्यावहारिक तौर पर हिंदी आज भी पूर्णत: विकसित नहीं हो पाई है। विज्ञान, मेडिकल, औद्योगिकी आदि की पढ़ाई हिंदी में मुश्किल ही क्या असंभव प्रतीत होती है। फिर जो कुछ हमारा समृद्ध साहित्य है उसकी भाषा इतनी क्लिष्ट है कि आम व्यक्तियों की समझ से परे है। आम जनता के लिए अच्छा व रोचक कथा लेखन करनेवालों की संख्या बहुत कम है। हिंदी की जो पत्रिकाएँ साहित्यिक और साहित्येत्तर प्रतिबद्धताओं का उद्घोष करती हुई निकलती हैं, उन्हें एक विशेष वर्ग ही पढ़ता है। इन साहित्यिक पत्रिकाओं का वितरण भी बहुत कम होता है। जनसाधारण इनके नाम तक से परिचित नहीं होते। जो पत्रिकाएँ वास्तव में जनसाधारण के पास पहुँचती हैं उनमें अच्छे लेखक लिखना नहीं चाहते, लिहाजा अच्छा कथा लेखन जनसाधारण से हमेशा दूर रहता है। किसी साहित्य को केवल साहित्यिक हलके से ही मान्यता मिलना प्रर्याप्त नहीं है, जब-तक साहित्य लोकजन को आकर्षित न करे सफलता की कसौटी पर पूर्णतया खरा नहीं उतरता।

अपनी एक हजार वर्ष की जीवन यात्रा में मानक हिंदी ने नि:संदेह काफी लंबी मंज़िलें तय की हैं। आज हिंदी एक सशक्त, सुगठित व्याकरण सम्मत और समृद्ध भाषा की सभी अनिवार्यताओं से परिपूर्ण है। यह संपूर्ण भारत की राजभाषा व सात राज्यों की क्षेत्रीय भाषा है। दुनिया में हिंदी बोलनेवालों की संख्या तीसरे नंबर पर है-पचास-साठ करोड़ के करीब लोग हिंदीभाषी हैं। मगर फिर भी हिंदी को वह स्थान नहीं मिल पाया है जिसकी वह अधिकारिणी है। भारत से बाहर गैर-हिंदीभाषियों के लिए हिंदी मुख्यतय: बॉलीवुड की ही भाषा मानी जाती है। हिंदी एक भाषा ही नहीं, हमारी संस्कृति व परंपराओं की अभिव्यक्ति है। सो देश-विदेश में चलते सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्रियाकलाप एवं गतिविधियाँ हिंदी के विकास में नि:संदेह सहायक हैं। बॉलीवुड फिल्में हिंदी के अस्तित्व को बनाए हुए हैं। मगर यह हिंदीं का अनौपचारिक स्तर है। अगर अनौपचारिक स्तर से हटकर औपचारिक स्तर पर हिंदी का विश्लेषण करें तो हिंदी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। साहित्यिक क्षेत्र में हिंदी की स्थिति दयनीय है। जिस तरह चीन, रूस, हंगरी, स्पेन आदि देशों के लेखक अपनी भाषा में पुस्तकें लिखकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि पा चुके हैं, हिंदी जगत के लेखक वैसी ख्याति नहीं पा सके।

हिंदी को महत्ता देने का तात्पर्य केवल हिंदी समझना या बोलना ही नहीं, हिंदी पढ़ना व लिखना भी अनिवार्य है। हिंदी साहित्य की महत्ता के संदर्भ में आम बाधाएँ ये हैं कि भारत की जनसंख्या का एक काफी बड़ा प्रतिशत निरक्षर है। भारतवर्ष कई भाषाओं में बँटा हुआ है। हिंदी भाषा भी हिंदी में उतने निर्भर नहीं हैं।

विदेश जाकर अन्य भाषाओं से रूबरू होकर मुझे हिंदी भाषा व साहित्य की विशेषताओं का और पता चला। जब मैंने डेनिश सीखना आरंभ किया तब मुझे हिंदी की गरिमा का वस्तुत: पता चला। किसी कथा-साहित्य के जरिए कल्पना, समय बोध, स्थान, अनुभूति व भाषा तो उच्चरित होती ही है। इनके अलावा भाव, प्रत्यय, संकल्पना, लेखन शैली, वर्णनात्मक पटुता, शब्द संग्रहों का प्रचुर व कलात्मक उपयोग किसी साहित्य की सार्थकता के लिए अति उपयोगी है। हिंदी के पास एक विस्तृत शब्दभंडार ही नहीं, कई उपभाषाओं व शैलियों में भी यह बोली व लिखी जाती है। हिंदी की बहुमूल्यता के संदर्भ में मेरा एक अनुभव है। एक बार हमारी डेनिश कक्षा में कुछ वक्तव्यों का अनुवाद हमें अपनी मातृभाषा में करना था। उस कक्षा में पच्चीस छात्र अठारह देशों के थे, मगर रोमन लिपि को छोड़ अपनी भाषा की एक विशिष्ट लिपिवाले केवल तीन थे। एक चीनी, एक अरबी व

एक मैं 'देवनागरी' लिपि की। डेनिश अध्यापिका चीनी व अरबी लिपि से तो परिचित थी किंतु देवनागरी लिपि उन्होंने उससे पहले कभी देखी नहीं थी। उन्हें यह लिपि बहुत सुंदर लगी—एक लाइन से लटकते चंद शब्द परस्पर एक अक्षर बना देते हैं। यह एक दर्शन भी है तो एक चित्ताकर्षक। उन्होंने अपनी डायरी में मुझसे हिंदी में अपना नाम लिखवाया।

एक आकर्षत व विशिष्ट लिपि होने के बावजूद हम हिंदी का व्यावसायिक उपयोग करने से कतराते हैं। दूर से किसी चाइनीज रेस्टोरेंट या दुकान की पहचान उनकी चित्रमय भाषा से की जाती है। चित्रात्मक भाषा चीनी लोगों की पहचान है जिससे विश्व का हर व्यक्ति परिचित है। अरबी भाषा खाड़ी प्रदेश में रहनेवालों की पहचान है। दुर्भाग्य से हमारी देवनागरी एक आकर्षक व विशिष्ट लिपि होने के बावजूद दुनिया में हिंदुस्तानियों की पहचान नहीं बन पाई।

हिंदी को महत्ता देने का तात्पर्य केवल हिंदी समझना या बोलना ही नहीं, हिंदी पढ़ना व लिखना भी अनिवार्य है। हिंदी साहित्य की महत्ता के संदर्भ में आम बाधाएँ ये हैं कि भारत की जनसंख्या का एक काफी बड़ा प्रतिशत निरक्षर है। भारतवर्ष कई भाषाओं में बँटा हुआ है। हिंदी भावी भी हिंदी पर उतने निर्भर नहीं हैं। फिर जो हमारे साक्षर हिंदुस्तानी हैं उनकी पढ़ने की आदत नहीं है। लोग अखबार या राजनैतिक पत्रिकाएँ पढ़ने तक ही सीमित रहते हैं। कथा-साहित्य पढ़ने का शौक साहित्यकारों व गिनती के साहित्य अभिरुचि से परिपूर्ण पाठकों तक ही सीमित है। आम जनता पढ़ने में कोई खास दिलचस्पी नहीं रखती, जितनी कि डेनिश या अन्य विदेशी जनता रखती है। जो पढ़ने के शौकीन हैं भी वे अंग्रेज़ी पुस्तकें व पत्रिकाएँ पढ़ना पसंद करते हैं। अभी अपनी पिछली भारत यात्रा के दौरान दिल्ली के एक अंग्रेज़ी स्कूल की शिक्षिका से मेरा मिलना हुआ। वे कहती हैं कि उनके स्टाफ में सिर्फ एक वह ही हैं जो हिंदी पत्रिकाएँ पढ़ती हैं। वह अपने घर के पास की एक लाइब्रेरी से हिंदी पत्रिकाएँ लेती हैं। पढ़कर वह अपने किशोर आयु की लड़कियों को लाइब्रेरी में पत्रिकाएँ लौटा आने को कहती है। बच्चे छुपाकर पत्रिकाएँ लाइब्रेरी में लौटाने जाते हैं ताकि उनका कोई मित्र या साथी न देख ले, नहीं तो वे उपहास बनाएँगे : 'तुम्हारी मम्मी क्या हिंदी पत्रिकाएँ पढ़ती हैं?'

जब मैं नई-नई डेनमार्क आई थी तो एक दिन एक हिंदुस्तानी महाशय मेरे घर तशरीफ लाए। मेरे ड्राइंगरूम के रैकों पर सजी विभिन्न रंगों की पुस्तकों को देखकर बोले: 'पिछले तीस सालों से मैं डेनमार्क में रह रहा हूँ। कई हिंदुस्तानियों के घर गया हूँ। आपका घर पहला घर है जहाँ मुझे हिंदी किताबें दिखाई दे रही हैं।' जिस घर में अंग्रेज़ी के बजाय हिंदी अखबार, पत्रिकाएँ व पुस्तकें पड़ी रहती हैं वह भारतीय समाज में विशिष्ट नहीं माना जाता। भारत में अंग्रेज़ी श्रेष्ठगणों की भाषा मानी जाती है। क्यों हिंदी को लेकर हिंदुस्तानियों में हीन भावना है? क्यों वे हिंदी पढ़ने से कतराते हैं? हिंदी साहित्य का बाजार उतना नहीं है जितनी तादाद में हिंदीभाषी है। इसकी वजह से भारतीय हिंदी लेखकों के अतिरिक्त प्रवासी हिंदी लेखक भी उपेक्षा के शिकार होते हैं। आज एक हिंदी लेखक के लिए अपने उपन्यास की एक हजार प्रतियाँ भी बेचना मुश्किल है।

एक प्रवासी के लिए जिस मुल्क में वह रहता है उसके लिए वहाँ की भाषा अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। हिंदी अपनाकर वह विदेश में आर्थिक अवसर नहीं जुटा सकता और न ही उस देश के समाज से एकीकरण कर सकता है। अगर वह हिंदी साहित्य को लेकर कुछ प्रयास करता है तो प्रोत्साहन के लिए सबसे पहले हिंदीभाषी क्षेत्रों की ओर ही देखता है।

अंग्रेज़ी भाषा व साहित्य से हम दासवता की इस हद तक प्रेम करने लगे हैं कि अपनी मातृभाषा के प्रति अपनी निष्ठा पर आँच पहुँचा रहे हैं। यह बात सही है कि अंग्रेज़ी एक बहुमुखी व अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। आज के युग में विभिन्न देशों व समुदायों के बीच पारस्परिक विचार-विमर्श व व्यापार बढ़ जाने से अंग्रेज़ी का उपयोग व महत्त्व और बढ़ गया है। गैर-अंग्रेज़ी भाषी देशों में भी अब लोग अधिक से अधिक संख्या में अंग्रेज़ी सीखने लगे हैं। लेकिन अंग्रेज़ी उनकी अपनी राष्ट्रीय भाषा को कतई प्रभावित नहीं करती। हमारे देश में अंग्रेज़ी हिंदी ही नहीं, हमारी समस्त क्षेत्रीय भाषाओं को तहस-नहस कर रही है। अंग्रेज़ी माध्यमवाले स्कूलों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, हिंदी माध्यमवाले स्कूलों में ज्यादातर केवल उन्हीं के बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं जो अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों का खर्चा वहन नहीं कर पाते। कैसे हम अपने देश की राष्ट्रीय भाषा का दरोमदार इन गरीबों के कंधों पर डाल दें और यदि आप समाज के मध्य व उच्चवर्गीय लोगों के बच्चों को लें तो उनका पढ़ना अंग्रेज़ी

साहित्य तक ही सीमित है। अगर बच्चे हिंदी नहीं पढ़ेंगे तो हिंदी का भविष्य क्या होगा?

बहरहाल जनता उसी ओर रुख करेगी जो उसको अधिक लाभकारी दिखेगी। हिंदी भाषी हिंदी पर उतने निर्भर नहीं हैं जितने कि अन्य मुल्कों—चीन, जापान, स्पेन, डेनमार्क, पुर्तगाल व अरब आदि देशों—के नागरिक अपनी भाषाओं पर हैं। मैंने पाया कि डेनमार्क, स्वीडन, नार्वे आदि युरोपीय देशों में अपनी भाषा के उत्थान के लिए शुद्ध अंत:करण से प्रयास किए जाते हैं। यह सरकार व साहित्यिक बुद्धिजीवियों का दायित्व है कि अपनी राष्ट्रीय भाषा के प्रति जनता के मन में रुचि उत्पन्न करें। इसके लिए हिंदी को व्यावहारिक तौर पर उपयोगी बनाना होगा ताकि इसे अपनाकर लोग रोज़ी कमा सकें, स्वयं को सम्मानित व गौरवान्वित महसूस कर सके। आगामी पीढ़ी के मन में स्कूली स्तर से हिंदी के प्रति रुझान उत्पन्न करना। इसके लिए शिक्षण प्रणाली को सुधार कर हिंदी भाषा को बच्चों के लिए दिलचस्प व रोचक बनाना होगा ताकि उन्हें हिंदी एक उबाऊव नीरस भाषा न लगे और वे हिंदी पढ़ने से कतराएँ नहीं। पाठ्यक्रम में हिंदी लघु व दीर्घ रोचक उपन्यास समावेशकर बच्चों से उनका बुक रिव्यू, समीक्षा वगैरह लिखवाने से बच्चों में रीडिंग हेबिट डेवलप हो सकती है।

लेखक के लिए सिर्फ लिखना ही काफी नहीं। उसका पाठकों तक पहुँचना भी जरूरी है। इसके लिए प्रकाशक, समीक्षक, मीडिया व हिंदी संस्थाएँ जिम्मेदार हैं। सर्वप्रथम प्रकाशकों की यह व्यावसायिक नैतिकता है कि वह किसी लेखक की अच्छी कृति को अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुँचाए। तदुपरांत आलोचकों, मीडिया व हिंदी संस्थानों का दायित्व हो जाता है कि उस कृति के साथ पूरा न्याय हो। हिंदी विकास से जुड़े लोगों के बीच संपर्क व संचार साधन की समुचित व्यवस्था की भी आवश्यकता है। विश्व भर में फैले हिंदी लेखकों व हिंदी साहित्यप्रेमियों को एक मंच से जुड़ना जहाँ विचारों का विनिमय, एक-दूसरे की रचनाओं पर टिप्पणी व आलोचना करना संभव हो सके। आज का युग इलेक्ट्रॉनिक हो चला है तो हिंदी को एक इलेक्ट्रॉनिक भाषा बनाने की नितांत आवश्यकता है। कंप्यूटर पर हिंदी का उपयोग नि:संदेह बढ़ा है मगर जो कुछ भी हिंदी का इस्तेमाल आज हम कंप्यूटर पर कर रहे हैं वह अंग्रेज़ी ऑपरेटिंग पर कर रहे हैं। अन्य भाषाएँ जैसे चीनी—कोरियन, अरबी आदि की तरह कंपयूटर पर हिंदी ऑपरेटिंग सिस्टम अभी पूर्णतय विकसित नहीं हो पाया है। क्यों हिंदी अंग्रेज़ी की तरह एक हाईटेक भाषा नहीं बन पा रही? संभवत: माइक्रोसॉफ्ट कल ही हिंदी का ऑपरेटिंग सिस्टम विकसित कर दे अगर हिंदी का उपयोग कंप्यूटरों पर बढ़ जाए। क्या हिंदी का उपयोग करनेवाले नहीं हैं या फिर हिंदी अपनाकर लोगों को कोई लाभ नहीं है?

प्रवास निश्चय ही एक लेखक के अनुभव के फलक को विस्तीर्ण करता है। मगर मैं समझती हूँ कि विदेश में एक हिंदी लेखक होने से लेखक को कुल मिलाकर नुकसान अधिक है। पहले तो एक हिंदी लेखक होना दुष्कर, फिर एक प्रवासी हिंदी लेखक होना और भी मुश्किल—एक भयावह बोझ व दुर्भर दायित्व। हिंदी का यहाँ कोई विशेष वातावरण नहीं है। न यहाँ हिंदी के पाठक, न लेखक। न यहाँ कोई हिंदी का मंच और न ही कोई साहित्यिक गतिविधियाँ। यहाँ तक कि विशुद्ध हिंदी सुनने तक को नहीं मिलती। ऊपर से इस मुल्क को उसने 'एडोप्ट' किया है , वहाँ की स्थानीय व राष्ट्रीय भाषा सीखने का उस पर दबाव बना रहता है। मैं डेनमार्क में रहती हूँ जहाँ कि राष्ट्रीय व बोलचाल की भाषा डेनिश है। डेनिश सीखे बगैर आप यहाँ के समाज से जुड़ नहीं कर सकते, बल्कि बिना डेनिश सीखे आप अपने को अपंग समझेंगे। एक इंटरनेशनल स्कूल में अध्यापन की नौकरी, जो मुझे जीविका प्रदान कर रही है, करने से मैं अंग्रेज़ी को नजरांदाज नहीं कर सकती। यह ख्याल हमेशा बना रहता है कि थोड़ा अपनी अंग्रेज़ी को पुख्ता करूँ फिर घर, समाज व दुनिया के इकरारनामे। हिंदी लेखन करने से कुछ आय भी नहीं। यह सिर्फ मेरी नहीं, हर अप्रवासी की दासताँ है। अगर एक अप्रवासी हिंदी लेखक अपने परिवेश की सभी भाषाओं को उपेक्षित कर हिंदी अपनाता है, उसमें साहित्य सर्जन करता है तो उसके लिए कुछ तो प्रेरणा होनी चाहिए।

Bryggergade 6,2,4 2100
Copenhagen,
Denmark

'गर्भनाल' से सभार

□

21

दक्षिण अफ्रीका में हिंदी साहित्य

✍ प्रो. रामभजन सीताराम

- 1977 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त।
- शिक्षण, सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं से जुड़े।
- यूनिवर्सिटी ऑफ डरबन वेस्टविल्ल में हिंदी पढ़ा चुके हैं।
- हिंदी शिक्षण की दृष्टि से हिंदी पद्य नामक पुस्तक लिखी।
- हिंदी साहित्य एवं रामचरितमानस पर अनेक पत्र पढ़े, जो प्रकाशित भी हुए हैं।
- इनकी कई रचनाएँ 'तीन निहत्थे सरदार', 'हिंदी की विजय यात्रा' आदि भी प्रकाशित।

पत्रकारिता भाषा को विकसित और लोक जीवन में व्याप्त करने का कामकरती है। भारत, मॉरीशस और कुछ अन्य देशों में हिंदी भाषा और साहित्य की समृद्धि इस सशक्त विधा के द्वारा हुई। विश्व हिंदी पत्रिका: 2009, पृष्ठ 117 पर डॉ. कमल किशोर गोयनका ने अफ्रीका के देशों में हिंदी पत्रकारिता उपशीर्षक देकर लिखा है ' अफ्रीका के मॉरीशस, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में हिंदी पत्रकारिता ने महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।''परंतु उनके भारतेतर देशों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास और स्वरूप शीर्षकवाले इस लेख में दक्षिण अफ्रीका का पत्रकारिता संबंधी कोई उल्लेख नहीं आया है। संभवत: वे यहाँ कोई भी सामग्री प्राप्त करने में विफल रहे। उसी विश्व हिंदी पत्रिका : 2009 के पृष्ठ 31 पर दक्षिण अफ्रीका की प्रो. उषा शुक्ल ने लिखा है, ''दक्षिण अफ्रीका में अभी मॉरीशस जैसी स्थिति नहीं, जहाँ अनेक विद्वान, साहित्यकार और कवि कीर्ति प्राप्त कर चुके हैं, फिर भी यहाँ भाषाप्रेमियों का अकाल नहीं है''।

उपरोक्त से यह निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण अफ्रीका में हिंदी भाषा की सृजनात्मक अवस्था अभी नहीं आई है, अत: दक्षिण अफ्रीका में हिंदी साहित्य के उद्भव विकास का चित्रण अथवा मूल्यांकन टेढ़ी खीर है।

फिर भी दक्षिण अफ्रीका के हिंदीभाषी भारतीय मूल के लोग भर्तृहरि के 'साहित्य संगीत कला विहीन' वाली कोटि में कदापि नहीं हैं। सन् 1860 के आगमनकाल से ही हमारे शर्तबंद मजदूर धर्म, भाषा एवं संस्कृति के प्रति सजग-सचेत थे। उनके लिए रामायण, महाभारत और भगवद्गीता धार्मिक जीवन का संबल थी। जिस समय भारत में आधुनिक हिंदी साहित्य का सजृन हो रहा था, दक्षिण अफ्रीका के हिंदी भाषी लोककथाओं और कहानियों के द्वारा अपना मनोरंजन करते थे, तथा रामचरितमानस के पठन-पाठन और चर्चा से आध्यात्मिक परितोष और भाषा ज्ञान प्राप्त करते थे। उनके लिए भारत के ग्रामीण अंचलों से उपलब्ध मौखिक या वाचिक परंपरा ही साहित्यिक पिपासा का शमन करती थी। रामायण का पाठ, अन्य भजन, बिरहा आदि ढोल-मंजीरे के साथ काम में आते थे।

दक्षिण अफ्रीका के भोजपुरी-अवधी भाषी भारतियों को जब परिणिष्ठित हिंदी सीखने का अवसर मिला तब उनके सामने एक गंभीर प्रश्न उभरा: क्या हम उस भाषा या बोली को त्याग दें, जो हम सदियों से बोलते आ रहे हैं? भारत से आए हुए अध्यापक/प्रचारक अधिकांशत: आर्य समाज के प्रचारक थे, जिनका दोहरा उद्देश्य था—भाषा का ज्ञान देना औरा वैदिक धर्म ग्रहण करवाना। इस संबंध में चंपा वशिष्ठमुनि का कथन (विश्व हिंदी पत्रिका: 2010, पृष्ठ 37) दृष्टव्य है:

भारत से स्वामी भवानी दयाल और अन्य कार्यकर्ता दक्षिण अफ्रीका पधारे।

मजदूरों की दुर्दशा और खासकर हिंदी के दुरुप्रयोग से वे

विचलित हुए। बिना हिचकाए ये महानुभाव खड़ी बोली के प्रचार में लग गए।

इस दृष्टिकोण का परिणाम था कि मजदूरों की बोलियाँ और उनके जीवन के निकट की सूक्ष्म भावनाएँ एवं अनुभूतियाँ कुंठित होकर रह गई। स्वामी भवानी दयाल का जन्म सन् 1981 में जोहानसबर्ग में हुआ। उनकी शिक्षा दीक्षा भारत में हुई, और वे दक्षिण अफ्रीका और भारत में धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन से जुड़े रहे। उनका निधन सन् 1950 में उनके निवास स्थान अजमेर में हुआ। स्वामीजी किस अवस्था में भारत से आकर प्रचार करने लगे, श्रीमती वशिष्ठ मुनि ने नहीं लिखा। फिर भी स्वामीजी दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के साहित्य जगत को जो योगदान दिया, वह अप्रतिम है।

स्वामी भवानीलाल दयाल का उल्लेख विभिन्न प्रसंगों में होगा। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि उन्होंने नाटाल प्रांत में हिंदी साहित्य सम्मेलन भी आयोजित किए थे। सन् 1915 में बर्नसाइड में और सन् 1916 में लेडिस्मिथ में। उनके संपर्क में आनेवाले व्यक्तियों में से कई महानुभावों ने हिंदू धर्म, संस्कृति एवं भाषा के लिए कार्य किया। स्वामीजी स्वयं दक्षिण अफ्रीका और भारत दोनों देशों में महत्त्वपूर्ण कार्य करते थे। महात्मा गांधी से उनका निकट संपर्क रहा। नाटाल इंडियन कांग्रेस से जुड़े थे। उनका एक प्रिय सेवा कार्य था प्रवासी भारतीयों की कुशल-क्षेम का पता रखना, और इस कार्य में भारत के प्रसिद्ध समाजसेवक पंडित बनारसीदास चतुर्वेदीजी की सहभागिता थी।

प्रवासी हिंदी भाषा-भाषियों के जीवन में बहुत कम आमोद-प्रमोद उपलब्ध था। फिर भी देश की रीति-रिवाज के अनुसार संगीत नाटक का प्रयोग यहाँ भी होता था। ग्रामीण नाटकों की परंपरा कार्य-प्रयोजन एवं शादी-विवाह में मुखरित होती थी। पुरुष-स्त्री पात्रों का अभिनय करते थे। प्रसिद्ध नाटककार भिखारी ठाकुर के साँचे में ढले कुछ लोग दक्षिण अफ्रीका में भी उभरे, जिन्होंने रामायण, महाभारत पर आधारित खेल प्रस्तुत किए—यथा श्री जदुनंदनजी और उनका रिवरसाइड सनातन डांसिंग कंपनी।

प्रवासी हिंदी भाषा-भाषियों के जीवन में बहुत कम आमोद-प्रमोद उपलब्ध था। फिर भी देश की रीति-रिवाज के अनुसार संगीत नाटक का प्रयोग यहाँ भी होता था। ग्रामीण नाटकों की परंपरा कार्य-प्रयोजन एवं शादी-विवाह में मुखरित होती थी। पुरुष-स्त्री पात्रों का अभिनय करते थे। प्रसिद्ध नाटककार भिखारी ठाकुर के साँचे में ढले कुछ लोग दक्षिण अफ्रीका में भी उभरे, जिन्होंने रामायण, महाभारत पर आधारित खेल प्रस्तुत किए—यथा श्री जदुनंदनजी और उनका रिवरसाइड सनातन डांसिंग कंपनी। इनकी लोकप्रियता बहुत वर्षों तक बनी रही। आधुनिक मनोवृत्तिवाले कुछ सज्जन खड़ीबोली में नाटक प्रस्तुत करने लगे। सुश्री चंद्रिकादेवी महाराज अपने शोध प्रबंध (The Hindi Language and the Cultural Progress of the Hindi Speaking People in South Africa—M.A; University of DurbanWestville, 1992)में पृष्ठ 71 पर लिखा कि सन् 1917 में 'शकुंतला' नाटक (संभवत: डरबन में) मंचित हुआ, श्री टामी लालबहादुर एक लोकप्रिय एवं सफल नाटककार थे। 'शकुंतला' नाटक का प्रदर्शन 'राजा हरिशचंद्र' के बाद हुआ। श्री लाल बहादुर ने आर्य सभा के लिए 1918 में 'सुभाग सुंदरी' और 1919 में 'मनोरमा-मदन जीत' और 'कलंक' दिखाया। उन्होंने तीन और नाटक प्रस्तुत किए थे।- 'टूटा बंधन' (1920), 'नीलकंठी' (1945) और 'आत्मत्याग' (1930)। पीटरमेरिट्जबर्ग के श्री फकीर सत्यपालजी ने 'अनाथ' नाटक प्रदर्शित किया। ये सभी नाटक मंच पर खेले गए थे। उनकी पांडुलिपियाँ उपलब्ध नहीं हैं। परंतु पर्चों एवं समाचार-पत्र में विज्ञापनों के माध्यम से इनका पता चलता है। ''इन नाटकों की भाषा हिंदी थी, क्योंकि हिंदी जनभाषा थी। श्रोता/दर्शक को आकृष्ट करने के लिए नाटक का विषय परंपरा एवं संस्कृति से संबद्ध था।'' (महाराज : 1992:)

नाटक विधा की रचनाओं में स्वामी भवानी दयालजी की एक कृति 'प्रवासी प्रपंच' प्रवासी भवन, अजमेर में सुरक्षित है।

यह आलेख पत्रकारिता के संदर्भ को लेकर चला। अत: इस प्रसंग पर दृष्टिपात करने का सुअवसर है। समाचारपत्रों के नाम पर भारतीयों के बीच महात्मा गांधी द्वारा संचालित 'इंडियन ओपीनियन' सबसे मशहूर है। सन् 1903 में फीनीबक, डरबनसे प्रकाशित यह समाचारपत्र अंग्रेज़ी और गुजराती माध्यम में निकाला। तमिल और हिंदी के लिए भी स्थान दिया गया, लेकिन इन भाषाओं में सिर्फ विज्ञापन एवं आवश्यक सार्वजनिक सूचनाएँ भी मिलती है—संभवत: हिंदीतमिल लेखकों की अनुपलब्धतावश। बाद में स्वामी भवानी दयाल को हिंदी भाग का संपादक बनाया गया, लेकिन यह प्रयत्न व्यर्थ था। Indian Opinion में किस स्तर की, और किस नसल की हिंदी का प्रयोग होता था, इस 'सनलाइट साबुन' के विज्ञापन से पता चला जाएगा।

कपड़ा धोने के लिए सनलाइट साबुन
दुनिया में प्रख्यात हुए है॰॰ सबब
प्रथम–इस साबुन सें बारीक सुतर को कीसी
रकम–का नुकसान नहि होता है,
दूसरा–यह साबुन से धोने में दूसरा साबुन
से कमती तकलीफ लगता है,
तीसरा–यह साबुन की बनावट में जो
कभी कोई मलीनता साबीत कर देवे
तो उसको पौंड एक हजार इनाम दिया
जाता है:
यह साबुन दुनिया में जास्ति खपते है
(इंडियन ओपीनियन, 23 जनवरी 1906, पृष्ठ 423)

इस विज्ञापन से तीन तथ्यों की जानकारी मिलती है—बीसवीं शताब्दी के आरंभ में दक्षिण अफ्रीका में जो 'हिंदी' भाषा बोली, समझी और लिखी जाती थी, उसका रूप क्या था। इस समाचार–पत्र के अंकों का संग्रह UNIVERSITY of KwaZulu-Natal DocumentationCentre (Westville Campus) में सुरक्षित है। भवानी दयाल लेख संग्रह के 'हिंदी आल्हा' में उनके अनुज में अनुज देवीदयाल ने लिखा है कि हिंदी का तिरस्कार इंडियन ओपोनियन क्षरा हुआ (पृष्ठ 9)

स्वर्ण अंक निकला छापा का, जाकर ओपोनियन है नाम॥
इंगलिश गुजराती तमिल में, स्वर्ण अंक निकला बड़ भार॥
हाय शोक हा शोक से कहते, हिंदी को दीन्हे फटकार॥
(देवीदयाल, हिंदी आल्हा, पृष्ठ 9 : भवानी दयाल संग्रह,
अजमेर, 1916)

'हिंदी आल्हा के पृष्ठ 10 देवीदयालजी ने लिखा है कि हिंदी को पत्रकारिता के क्षेत्र में उचित स्थान दिलाने के लिए श्रीमान भाला ने सन् 1916 में एक साप्ताहिक पत्र निकाला (धर्मवीर) और सन् 1917 से एक मासिक पत्र 'हिंदी' निकाला। ये दोनो पत्र स्वामी भवानी दयाल के हिंदी आश्रम, डरबन से निकले। (भालाजी ने 'धर्मवीर प्रेस' में सभी मुद्रण का कार्य किया)

स्वामी भवानी दयाल की हिंदी को देन अत्यंत सराहनीय है। उन्होंने हिंदी पठन–पाठन, प्रचार, प्रकाशन इत्यादि सभी प्रकार के कार्य किए। उन्होंने मौलिक रचनाएँ कीं और अनेक विधाओं का आश्रय लिया और उनकी शोभा बढ़ाई। उनका बृहदाकार ग्रंथ 'प्रवासी की आत्मकथा' में उनकी कहानी के साथ दक्षिण अफ्रीका के गिरमिटयों का वृत्तांत है। स्वामीजी की संवेदनशीलता और सहृदयता, एवं उनकी अभिव्यक्ति क्षमता 'प्रवासी की आत्मकथा' के इस उद्धरण से स्पष्ट होगी।

कितने तो उस गुलामी के जीवन से ऊबकर नदी में डूब मरे, कितने फाँसी की डोरी पर झूल पड़े और कितने ही विषपान कर अपमान से छुटकारा पा गए। वास्तव में उन अभागे भारतीयों की करुण कथा इतनी विस्तृत, हृदयविदारक और मर्मस्पर्शी है कि यदि पृथ्वी को पत्र और समुद्र को स्याही बनाकर लिखने बैठे तो भी उसे यथावत अंकित कर सकना असंभव है। (प्रवासी की आत्मकथा, 1947: 3)

स्वामीजी के लेख संग्रह में प्राप्त अनेक हिंदी की रचनाएँ हैं, यथा 'सत्याग्रही 'महात्मा गांधी' अर्थात्, मोहनदास करमचंद गांधी का जीवन चरित्र (1916), हमारी कारावास कहानी (1918), 'ट्रांसवाल में भारतवासी' (1920), 'शिक्षित और किसान' (1920), 'नेटाली हिंदू' (1920) और 'हिंदी पहिली पुस्तक'। (1920)।

स्वामी भवानी दयालजी की सभी कृतियाँ सोद्देश्य लिखी गई। 'सम्याग्रही महात्मा गांधी' ग्रंथ में गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका

में अंतिम दिनों की घटनाएँ सशक्त रूप से चित्रित की गई हैं। इसमें सत्याग्रह का प्रयोग अनेक स्थलों पर वर्णित है। स्वामीजी ने गांधीजी के व्यक्तित्व और उनकी मान्यताओं को भली-भाँति समझ लिया था; अत: ग्रंथ के पृष्ठ 112 पर लिखते हैं—

एक बार एक वस्तु को मान लिया कि राष्ट्र का कल्याण इसी में है तो उस महान पुरुष को इस विश्वास से विचलित करने के लिए शायद हम भी आकर माया का जाल पसारे तो वह अपने अचल विश्वास से तनिक न डिगेगा।

'हमारी कारावास कहानी' में स्वामीजी ने अपनी और प्रवासी भारतीयों की यातनाओं का वर्णन किया है, और जब गोरे राज से टक्कर लेने का कदम सन् 1913 में हड़ताल के रूप में उठाया गया, तब वे लिखते हैं:

ता. 14 अक्तूबर सन् 1913 का दिन, दक्षिण अफ्रीका तथा भारत के इतिहास में बड़े महत्व का दिन समझा जाएगा। यह वह दिन है, जिस दिन दक्षिण अफ्रीका के भारतवासियों ने हड़ताल का आश्रय लिया (1918:38)। 'शिक्षित और किसान' नामक ग्रंथ में स्वामीजी ने प्रेमचंद के 'गोदान' के पूर्व ही ऐसी सशक्त रचना कर दी, जो उसकी झलकें देती है:

बाबूजी! उठें कैसे! हाथ- तो चारों ओर से बँधे हुए हैं। बैल और धरती यही दो चीजे हमारा बल है, मिल जाए तो हाथ-पाँव मारे, नहीं तो हाथ पै हाथ धरे बैठे रहे। कर क्या सकते हैं? (पृष्ठ 33)

भारतीय किसान की यह विवशता कि जमीन और बैल नहीं, तो रोटी कहाँ से आएगी और अगर पशु-धन मिल भी जाए, तो उस खिलौने के लिए दाना-चारा नहीं! यह गोदान का 'होरी' ही है।

स्वामीजी की अंतिम साहित्यिक रचना जिसे यहाँ विवेचित किया जाएगा, 'नेटाली हिंदू' (1920) है। स्वामीजी की मानवीय संवेदनाएँ और सुधारवादी दृष्टिकोण धर्म, संस्कृति, आचार-विचार और उच्च संस्कारों से निर्मित हैं। उन्होंने देखा कि हिंदू पुरुष विवाह के पवित्र बंधन के बाहर मुक्त व्यभिचार करते थे, पश्चिमी रहन-सहन का अंधानुकरण में लगे थे और अपनी पारंपरिक मान्यताओं को शिथिल होने दे रहे थे। इस उद्धरण से समाज के विघटन का स्पष्ट संकेत मिलता है:

जेकदास—आई डोंट केर फार एंड फादर! इन लोगों ने मेरे को बहुत ट्रबल दिया। अब मैं इनको देखना भी नहीं चाहता (नेटाली हिंदू :117)।

अंत में स्वामीजी की हिंदी की सेवाओं को उल्लेख कर देना समीचीन होगा। उनकी लिखी हुई 'हिंदी पहेली पुस्तक' जिसमें वर्णमाला, उच्चारण और बारहखड़ी के साथ कुछ सरल पाठ भी मौजूद हैं, उस समय की माँग थी। स्वामीजी ने सन् 1940 में दक्षिण अफ्रीका से आखिरी बार विदा ली, और सन् 1950 में उनका देहावसान भारत में दक्षिण अफ्रीका के हिंदी जगत में कोई समृद्ध साहित्यिक परंपरा विकसित नहीं हो पाई। प्रवासी हिंदीभाषी भारतीय अपनी अवधी-भोजपुरी भाषाएँ और हनुमान चालीसा-सत्यनारायण कथा की धार्मिक प्रणाली लेकर सन् 1860 से 1911 तक दक्षिण अफ्रीका आए। इसी कालाविधि में भारत में आर्य समाज जैसे सुधारवादी धार्मिक आंदोलन और उनके प्रश्रय में पनप रही आधुनिक हिंदी भाषा और उसमें रचित साहित्य भारत को ही नहीं बल्कि विदेशों में प्रवासी भारतीयों को प्रभावित करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदीभाषा प्रवासी भारतीयों को प्रभावित करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदी भाषा प्रवासी भारतीय हुए और पुराने को लेकर छोटे गुटो में बँट गए और प्रारंभिक काल में कोई स्थाई और प्रभावशाली

हिंदी भाषा का स्वर्णयुग दक्षिण अफ्रीका में उस समय आया, जब यूनिवर्सिटी ऑफ डरबन वेस्टविल्ल में सन् 1961 से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ सिखाई जाने लगीं, और स्कूलों में सन् 1977 से वैकल्पिक विषय के रूप में भारतीय भाषाएँ पाठ्यक्रम में आईं। यूनिवर्सिटी ने तो भारतीय भाषा विभाग को 1998 में बंद कर दिया। लेकिन उसमें अध्यापन करने वाले प्रो. रामभजन सीताराम और प्रो. उषा शुक्ल ने हिंदी भाषा और साहित्य में उल्लेखनीय कार्य किया है और कर रहे हैं।

उपलब्धि नहीं पेश कर सके।

लगभग सन् 1950 से हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में प्रगति हुई, यह था स्वैच्छिक संस्थाओं और पाठशालाओं के परिश्रम का परिणाम। सन् 1947 में भारत से सूरत हिंदू एसोसिएशन ने पंडित नरदेवीजी वेदालंकार को गुजराती भाषा के अध्ययन, प्रयोग और प्रचार की ओर प्रवृत्त किया और सबसे महत्त्वपूर्ण देन—हिंदी शिक्षा संध, दक्षिण अफ्रीका की स्थापना की। (1948)। पंडितजी ने अपनी हिंदी शिक्षा के प्रति समर्पण की भावना के फलस्वरूप हिंदी की पोथियाँ लिखीं-Hindi Primer & 'बाल पोथी' (1966) और 'सरल हिंदी शिक्षा' (1973), Hindi Made Easy—हिंदी शिक्षा, भाग 1 (1973)।

हिंदी शिक्षण की दृष्टि से लिखी गई प्रो. रामभजन सीताराम की पुस्तक 'हिंदी पद्य या 'Hindi Verse' एक नया प्रयोग थी। इसमें सरल बाल-काव्य को नागरी लिपि और रोमन लिपि में प्रस्तुत किया गया है, ताकि जो हिंदी नहीं जानते हैं, वे भी उन्हें पढ़ सकेंगे। प्रत्येक कविता के साथ उपयुक्त चित्र है, जो विषय-वस्तु को समझने में सहायक है (1992)।

पंडित नरदेवीजी वेदालंकार के दक्षिण अफ्रीका में प्रादुर्भाव से हिंदी भाषा को सरल बल एवं प्रेरणा मिली। हिंदी शिक्षा संघ की स्थापना के साथ हिंदी का अभ्युदय काल आरंभ हुआ, और जैसे कि अन्य लेखों में कहा गया है एक स्वैच्छिक संस्था होते हुए हिंदी शिक्षा संघ का कार्य हमेशा रहेगा—चाहे सरकारी संस्थानों में हिंदी न भी हो।

पिछले 11 वर्षों से संघ के खरा रेडियों हिंदवाणी चलाया जा रहा है, जिसके कार्यक्रमों में कम-से-कम 50 प्रतिशत हिंदी का प्रयोग होता है। डॉ. रामप्रसाद हेमराज की अध्यक्षता में 'संघ समाचार' के नाम से एक सूचना-पत्र (Newsletter) निकाला गया, जिसमें कुछ अंश हिंदी का होता था। October 1978 Vol. 3 No. 2 के संघ समाचार में हिंदी Children's Corner है, जिसमें 'दीपक की डायरी' शीर्षकवाली कहानी और कुछ पहेलियाँ हैं। सन् 1998 में संघ ने 'हिंदी बोल' अभियान चलाया, जिसके निमित्त रोमन लिपि में हिंदी की 10 पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुईं।

हिंदी भाषा का स्वर्णयुग दक्षिण अफ्रीका में उस समय आया, जब यूनिवर्सिटी ऑफ डरबन वेस्टविल्ल में सन् 1961 से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ सिखाई जाने लगीं, और स्कूलों में सन् 1977 से वैकल्पिक विषय के रूप में भारतीय भाषाएँ पाठयक्रम में आईं। यूनिवर्सिटी ने तो भारतीय भाषा विभाग को 1998 में बंद कर दिया। लेकिन उसमें अध्यापन करने वाले प्रो. रामभजन सीताराम और प्रो. उषा शुक्ल ने हिंदी भाषा और साहित्य में उल्लेखनीय कार्य किया है और कर रहे हैं। संस्कृत एवं हिंदी शोध प्रबंधों का निर्देशन किया गया, तथा देश-विदेश में अंतरर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में हिंदी साहित्य तथा रामायण पर आलेख पढ़े गए, जो प्रकाशित भी हुए। प्रो. उषा शुक्ल का आलेख 'दक्षिण अफ्रीका में हिंदी की संघर्ष गाथा' विश्व हिंदी पत्रिका, 2009 में प्रकाशित है। विश्व हिंदी पत्रिका, 2010 में दक्षिण अफ्रीका की ही बहन श्रीमती चंपा वशिष्ठमुनि का आलेख 'दक्षिण अफ्रीका में हिंदी का अनोखा सफर छपा है। ये दो आलेख हिंदी की कहानी भिन्न दृष्टिकोणों से कहते है। प्रो. उषा शुक्ल के अन्य प्रकाशित हिंदी लेख हैं 'प्रवासी हिंदी' शीर्षक की कविता जो स्मारिका, चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस 1993 में प्रकाशित है, और दूसरा 'भारतेत्तर देशों में हिंदी : दक्षिण अफ्रीका की परिस्थितियाँ' का लेख 'प्रवासी संसार' पत्रिका, 2004 में प्रकाशित हुआ।

प्रो. उषा शुक्ल का रामचरितमानस पर शोध कार्य Ramacharitamanasa in South Africa सन् 2002 में, Motilal Banarasidas, New Delhi, द्वारा प्रकाशित हुआ, और 'Ramacharitamanasa in Diaspora: Trinidad, Mauritius and South Africa', Star Publication (हिंदी बुक सेंटर) New Delhi से अभी निकाला है।

प्रो. रामभजन सीताराम (इन पंक्तियों के लेखक) ने भी हिंदी साहित्य एवं रामचरितमानस पर अनेक पत्र पढ़े, जिनमें परिस्थितिवश अधिकांश अंग्रेज़ी में थे। कुछ पत्र हिंदी में थे जो प्रकाशन में आए इनमें निम्न कृतियाँ हैं :

1 ''दक्षिण अफ्रीका में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं का विकास'' (Mother India Children Abroad अंतरर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद, दिल्ली, 1987)
2 'जो पै रामायण तुलसी न गावतो' (स्मारिक, चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस, 1993)
3 'तुलसी की आस्था' (पंकज, हिंदी प्रचारिणी सभा, मॉरीशस, हीरक जयंती विशेषांक, 1995)

4 'दक्षिण अफ्रीका में हिंदी भाषा का प्रचार' (पंकज, 'हिंदी प्रचारिणी सभा', मॉरीशस, सम्मेलन कार्यवाही, 1995)

5 'दक्षिण अफ्रीका में स्वैच्छिक के क्षरा हिंदी भाषा का प्रचार' (पंकज-हिंदी प्रचारिणी सभा, मारीशस, 1996)

6 'विश्व में हिंदी साहित्य की प्रासंगिकता' बदले मूल्यों के संदर्भ में' (अंग्रेज़ी सारांश: Hindi litreature and changing Human Values-Journal of the Indological Society Southern Africa, Vol. 6, 1997)

7 'दक्षिण अफ्रीका में हिंदी भाषा का प्रचार' (विश्व हिंदी रचना, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, दिल्ली, 2003)

8 'दक्षिण अफ्रीका में स्वैच्छिक संस्थाओं के द्वारा हिंदी का प्रचार' (प्रवासी संसार, दिल्ली, 2004)

9 'प्रवासी भारतीय : सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक आयाम तथा अपेक्षाएँ' (प्रवासी संसार, दिल्ली, जनवरी-मार्च, 2004)

10 'प्रवासी भारतीय और हिंदी : दक्षिण अफ्रीका-विदेश में हिंदी स्थिति और संभावनाएँ' (Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi, 2004)

11 'दक्षिण अफ्रीका में हिंदी: एक सिंहावलोकन : विदेश में हिंदी' (उत्तरार्द्ध गगनाचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, October-December, 2004, New Delhi)

प्रो. सीताराम के काव्य लेखन के प्रयास

1 'हिंदी की विजय यात्रा' (पश्चिम विश्व हिंदी सम्मेलन, त्रिनिडाड, 1996)

2 'तीन निहत्थे सरदार' (महात्मा गांधी, मार्टिन लूथर किंग एवं चीफ एलबर्ट लुठ्ली के सम्मान में प्रस्तुत, महात्मा गांधी हॉल, डरबन)

3 'भारत माँ कस्तूरबा' श्रीमती कस्तूरबा गांधी के सम्मान में-श्री गोपाल कृष्ण गांधी, दक्षिण अफ्रीका में भारतीय उच्चायुक्त द्वारा आयोजित कस्तूरबा के दक्षिण अफ्रीका में आगमन के शताब्दी समारोह में प्रस्तुत, डरबन)

4 'हिंदी का विश्वग्रामीय स्वरूप', IFFCO, इलाहबाद, में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सेमिनार में प्रस्तुत, दिसंबर, 1999)

प्रो. सीताराम को सन् 1977 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के द्वारा 'स्वातंत्र्योतर हिंदी उपन्यासों में लघु मानव की परिकल्पना' विषयक शोध प्रबंध के आधार पर पी.एच.डी. (वाचस्पति) की उपाधि प्रदान की गई। यह प्रबंध पुस्तक रूप में सन् 2002 में स्टार पब्लिकेशंस, (हिंदी बुक सेंटर) दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ। यह शोध ग्रंथ आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रगतिशीलता और लघुमानव की प्रतिष्ठा का विश्लेषण करता है। प्रस्तावना की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :

मुंशी प्रेमचंद ने सूरदास, होरी एवं गोबर जैसे पात्रों द्वारा लघु-मानव को साहित्यिक मान्यता तथा प्रतिष्ठा दी, पर स्वांतत्र्योत्तर उपन्यासों में ही इस लधुमानव की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई।

लघुमानव की प्रतिष्ठा के साथ-साथ एक साहित्यिक विधा की प्रतिष्ठा पर भी विचार कर लेना उचित होगा। जन साधारण में सदियों से लोकप्रिय 'आल्हा'—जो गाया जाता हैं—साहित्य की कोटि में सम्मिलित नहीं था। श्री रामचंद्र शुक्ल 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (1948: 49) में कहते हैं कि 'यह गाने के लिए ही रचा गया था। इससे पंडितों और विद्वानों के हाथ इसकी रक्षा की ओर नहीं बढ़े..। फिर भी आल्हा खंड नामक बृहदाकार ग्रंथ जिसमें महोबा के राजपरिवार की 52 लड़ाइयों के वृतांत हैं, दक्षिण अफ्रीका में भी उपलब्ध थे। इसमें वीर, भयानक और कहीं-कहीं वीभत्स रस भी पाया जाता है। इस शैली में देवीदयाल की 'हिंदी आल्हा' की चर्चा ऊपर हुई; अब एक भयानक और रौद्ररस पूर्ण कृति, जो आल्हा छंद में लिखी गई, हमारे सामने है। सन् 1949 जनवरी में डरबन, साउथ अफ्रीका में अचानक यहाँ के मूल निवासी प्रवासी भारतीयों पर आक्रमण कर बैठे। वे इन्हीं के बीच रहते थे और अचानक बैर की आग फैल गई। बहुत माल-हानि और मौतें हुईं, और कुछ दिनों के बाद यह सन् 1949 में शांत हुआ। 'डरबन का बलवा' नाम से पंडित बी. तुलसीरामजी ने सन् 1952 में एक पुस्तिका छपवाई, जिसमें आल्हा सन् में नाटली हिंदी में उस विभीषिका का यथार्थ वर्णन दिया गया है, और यह संकेत भी दिया गया है कि हमारे मूल निवासी भाइयों ने षड्यंत्र के चक्कर में पड़कर अपना सौहार्द खो बैठे थे। आल्हा पद्धति में लिखा यह काव्य अत्यंत प्रभावशाली हैं,और भयानक रस की निष्पत्ति आसानी से हो जाती है, जो जनवरी 1949 में घटी घटनाओं को पुनर्जीवित कर देती है। □

फीजी का हिंदी साहित्य

✍ सलेश कुमार

- सलेश कुमार दक्षिण प्रशांत विश्वविद्यालय (University Of South Pacific) के भाषा, कला एवं मीडिया विभाग में शिक्षण कार्य में जुड़े हैं।
- वे पिछले दस वर्षों से माध्यमिक एवं उच्च स्तरीय छात्रों को पढ़ा रहे हैं तथा एम.ए. की उपाधि भी प्राप्त की है। फीजी मीडिया में उन्हें 15 वर्षों का अनुभव है। सलेश कुमार का झुकाव सामाजिक भाषा विज्ञान की ओर है और उनके शोध-कार्यों का मुख्य विषय है फीजी हिंदी।
- साथ ही साथ भाषा-शिक्षण एवं पठन-पाठन में आई.सी.टी. के शैक्षणिक संबंध में भी वे कार्य कर रहे हैं।

फीजी में प्रथम प्रवासी भारतीय का आगमन 14 मई, 1879 ई. को हुआ। सन् 1916 ई. तक 60,000 से भी अधिक प्रवासी भारतीय फीजी पहुँचते रहे और श्रमिकों के रूप में इस छोटे से द्वीप को आबाद करते रहे। इस प्रशांतीय देश में हिंदी तभी आ गई थी जब प्रथम प्रवासी भारतीय श्रमिक ने अपना पग इस धरती पर रखा। यह स्वाभाविक ही था कि अधिकांश श्रमिक भारतवर्ष के हिंदीभाषी प्रदेशों के थे जिसके फलस्वरूप यहाँ उन्हीं की ही भाषा स्थापित हुई इस तरह हिंदी भारतीयों की प्रमुख भाषा बनी।

प्राथमिक पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालय तक पढ़ाई जानेवाली हिंदी अब फीजी की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। फीजी में दूरदर्शन, संचार एवं समाचार माध्यमों में तथा सार्वजनिक मंचों पर, धार्मिक समारोहों एवं सम्मेलनों में हिंदी का मुक्त प्रयोग होता है। फीजी में हिंदी का साहित्यिक क्षेत्र अपेक्षाकृत विकसित नहीं हो पाया है। हिंदी में अत्यल्प रचनाएँ प्राप्त होती हैं। जिस दृढ़ता से हिंदी की नींव प्रवासी भारतीयों ने डाली है उससे हिंदी भाषा का भविष्य उज्ज्वल है किंतु फीजी द्वीप में हिंदी के सत्साहित्य की बहुत ही कमी है।

गिरमिट काल में साहित्य रचना नगण्य ही रहा है। उन दिनों पारंपरिक एवं तत्कालीन परिस्थितियों पर आधारित लोकगीतों का ही बोलबाला था जो विशेषत: लोकरीतियों को पुष्ट करता रहा, उनका संरक्षण और संवर्धन करता रहा। गिरमिट प्रथा के अंत के बाद अनेक परिवर्तन होने लगे। पाठशालाओं के साथ लिखित साहित्य की ओर ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। हिंदी साहित्य के इतिहास का निर्माण तो हो गया लेकिन अभी भी हिंदी की इमारत खड़ी नहीं हो पाई है। फीजी में लेखन, प्रकाशन एवं पठन हिंदी साहित्य के साथ उसका दुर्भाग्य बनकर चिपके हुए हैं।

फीजी में हिंदी साहित्य का कोई क्रमबद्ध रूप तैयार नहीं हुआ है। विधाओं के अनुसार सभी रचनाओं का विवरण प्राप्त नहीं है। फीजी में कविता और उपन्यास को छोड़ साहित्य की अन्य विधाओं की रचना नहीं मिलती। गिरमिट युग में पं. तोताराम सनाढ्य जी का फीजी में 'मेरे 21 वर्ष' फीजी का प्रमुख लिखित साहित्य माना जाता है। यह पुस्तक उनकी जीवनी के रूप में लिखी गई है। इस पुस्तक में प्रवासियों के संग क्या अत्याचार होता था, इसका आँखों देखा हाल वर्णित है। फीजी में हिंदी साहित्य के निर्माण की दिशा में जितना काम हुआ, उसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

कविता

फीजी में कविता लेखन कब प्रारंभ हुआ, यह कहना कठिन है। कविता की बहुलता होने पर भी फीजी में ऐसा साधन उपलब्ध नहीं है कि जिससे इसका प्रकाशन हो सकें। वर्तमान में हिंदी के समाचार-पत्र 'शांति दूत' में कविताएँ प्राय: प्रकाशित होती रहती हैं।

कविताएँ सभी रसों में लिखी गईं—देश-प्रेम की भावना, पर्व, त्योहार के पवित्र वातावरण, प्रेम का वर्णन इन कविताओं में हुआ। अधिकतर मुक्त छंद का ही प्रयोग हुआ है। छंदबद्ध कविता का

सृजन कम है। कविताओं का स्तर अच्छा है किंतु दुख की बात यह है कि उनके एक-दो संकलन ही उपलब्ध हैं।

हिंदी कविता के क्षेत्र में फीजी के पं. कमला प्रसाद मिश्र और श्रीमती अमरजीत कंवल की अंतर्राष्ट्रीय पहचान है। पं. कमला प्रसाद मिश्र फीजी देश में एकमात्र ऐसे महान कवि हुए हैं जिन्होंने उच्च कोटि की हजारों कविताओं की रचना की है। उनकी रचनाएँ भारत की तत्कालीन श्रेष्ठतम् पत्रिकाएँ—सरस्वती, माधुरी, विशाल भारत, विश्वमित्र जैसी उच्च कोटि पत्रिकाओं में छपी हैं। सन् 1975 में नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में उन्हें विश्व हिंदी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

फीजी की अद्वितीय कवयित्री श्रीमती अमरजीत कौर को उनकी नवीनतम कविता संग्रह 'स्वर्णिम साँझ' के लिए इस साल मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

प्राथमिक पाठ्शालाओं से लेकर विश्वविद्यालय तक पढ़ाई जानेवाली हिंदी अब फीजी की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। फीजी में दूरदर्शन, संचार एवं समाचार माध्यमों में तथा सार्वजनिक मंचों पर, धार्मिक समारोहों एवं सम्मेलनों में हिंदी का मुक्त प्रयोग होता है। फीजी में हिंदी का साहित्यिक क्षेत्र अपेक्षाकृत विकसित नहीं हो पाया है। हिंदी में अत्यल्प रचनाएँ प्राप्त होती हैं। जिस दृढ़ता से हिंदी की नींव प्रवासी भारतीयों ने डाली है उससे हिंदी भाषा का भविष्य उज्ज्वल है किंतु फीजी द्वीप में हिंदी के सत्साहित्य की बहुत ही कमी है।

उपन्यास

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में दो साहित्यकार प्रसिद्ध हैं। स्वर्गीय पं. विवेकानंद शर्मा ने जो भी लिखकर पीछे छोड़ दिया है, वह सब कुछ आज भी हमारे हिंदीप्रेमियों को उत्साह देता है। इतनी रचनाओं की सूची दी गई है।

आज फीजी के हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार श्री जोगिंद्र सिंह कंवल माने जाते हैं। 'करवट और सवेरा' उपन्यासों के लिए इन्हें प्रवासी भारतीय पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है।

कहानी

हिंदी कहानी के क्षेत्र में स्वर्गीय पं. विवेकानंद शर्मा की रचनाएँ आज भी प्रसिद्ध हैं। इनकी 'प्रशांत की लहरें' विश्वविद्यालयों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती है।

दूसरा कहानी संग्रह श्री जोगिंद्र सिंह कंवल का 'हम लोग' है।

प्रो. सुब्रमनी का कहानी संग्रह 'कला की तलाश' का प्रकाशन 2008 में हुआ। प्रोफेसर सुब्रमनी फीजी में बसे सुप्रसिद्ध लेखक हैं जिन्होंने अंग्रेज़ी भाषा में कई पुस्तकें लिखी हैं। उनका जन्म लंबासा में हुआ। उनके पिता एक बंधुआ मजदूर के रूप से फीजी आए। वे सूवा में यूनिवर्सिटी ऑफ द साउथ पेसिफिक में साहित्य के प्रोफेसर रह चुके हैं। वर्तमान में वे फीजी के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में सेवा प्रदान कर रहे हैं।

पत्रकारिता

गिरमिट प्रथा के अंत के बाद स्थानीय लोगों के उत्साहवर्द्धन के लिए हिंदी-प्रेस और हिंदी समाचार-पत्रों को बढ़ावा दिया जाने लगा था। जागृति, जय फीजी, फीजी समाचार, शांति दूत, प्रशांत समाचार, सनातन संदेश, उदयाचल, लहर, संस्कृति आदि सामने आए। इन समाचार-पत्रों के सहारे फुटकर पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होने लगीं।

पं. कमला प्रसाद मिश्र ने साप्ताहिक 'जागृति' और बाद में 'जय फीजी' के माध्यम से फीजी में हिंदी भाषा और साहित्य की ज्योति को निरंतर जलाए रखने का महान गुरु कार्य संपन्न किया। वे अपने साथ-साथ देश के अनेक लोगों को हिंदी में कविता, कहानी, दोहे, रसिया, चौताल तथा अन्य प्रकार के लोक-गीतों एवं ग्राम्य वार्ताओं को लिखने के लिए प्रेरित करते रहे और लिखवाते भी रहे। वर्तमान में फीजी का एकमात्र हिंदी समाचार-पत्र 'शांति दूत' है। इसका प्रकाशन साप्ताहिक रूप से होता है। इस पत्र में राजनीतिक, साहित्यिक और धार्मिक सभी प्रकार की भरपूर सामग्री रहती है। इस पत्र के दीवाली विशेषांक प्रकाशित

होते हैं। स्वतंत्र लेखन को इस पत्र से अपूर्व प्रोत्साहन हुआ है। यह पत्र नवोदित लेखकों को काफी प्रश्रय देता है।

फीजी हिंदी

फीजी में बोलचाल में हिंदी का जो प्रयोग है, लेखन में उसका उतना ही अभाव है। गिरमिट काल से घरों में लोग फीजी हिंदी बोलते थे और बोलते हैं। फीजी में बोली जानेवाली हिंदी में लिखा गया पहला उपन्यास प्रो. सुब्रमनी का 'डउका पुरान' है जो पाठकों का चहेता उपन्यास बन गया है। हिंदी साहित्य में विशेष कार्य करने के लिए भारत सरकार द्वारा सन् 2003 में सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में उन्हें सम्मानित किया गया था। प्रो. सुब्रमनी फीजी हिंदी में एक और उपन्यास लिख रहे हैं।

प्रो. सुब्रमनी से पहले रयमन पिल्लय ने फीजी हिंदी में 'अधूरा सपना' एक नाटक की रचना की थी। यह हमारे समक्ष स्पष्ट है कि फीजी का हिंदी साहित्य शैशवावस्था पार कर चुका है लेकिन पूर्ण यौवन की स्थिति पर नहीं है। फीजी में हिंदी की स्थिति संतोषप्रद है और यहाँ साहित्यकारों की बहुलता है। अनेक साहित्यकार साहित्य-साधन में लगे हैं किंतु प्रकाशन के अभाव में ये साहित्यकार प्रकाश में नहीं आ पाए हैं। युवा वर्ग को भी हिंदी लेखन की ओर प्रेरित करने के लिए एक साहित्यिक वातावरण नहीं मिल पाता है। अगर फीजी में छपाई की सुविधा प्राप्त हो जाए तो निस्संदेह हिंदी साहित्य के क्षेत्र में यह बहुत आगे जाएगा। हमें ऐसी संस्थाओं की जरूरत है जो स्थानीय रचनाकारों की पुस्तकें प्रकाशित और वितरित कर सके।

साहित्यकारों की सूची

नाम	रचना	विधा
पं. तोताराम सनाढ्य	फीजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष	जीवनी
श्री जोगिंद्र सिंह 'कंवल'	मेरा देश, मेरे लोग	निबंध
	सवेरा	उपन्यास
	धरती मेरी माता	उपन्यास
	सात समुद्र पार	उपन्यास
	हम लोग	कहानी संग्रह
(संपादक)	फीजी का हिंदी	कविता संग्रह
	काव्य साहित्य	
	यादों की खुशबू	कविता संग्रह
	कुछ पत्ते कुछ पंखड़ियाँ	कविता संग्रह
	दर्द अपने-अपने	कविता संग्रह
पं. अयोध्या	फीजी में किसान	इतिहास
प्रसाद शर्मा	आंदोलन-प्रथम खंड	
अमीचंद	फीजी में किसान	इतिहास
	आंदोलन-द्वितीय खंड	
	हिंदी की पहली पोथी	हिंदी पाठ्य पुस्तक
	हिंदी की दूसरी पोथी	हिंदी पाठ्य पुस्तक
	हिंदी की तीसरी पोथी	हिंदी पाठ्य पुस्तक
	हिंदी की चौथी पोथी	हिंदी पाठ्य-पुस्तक
	हिंदी की पाँचवीं पोथी	हिंदी पाठ्य पुस्तक
	हिंदी की छठी पोथी	हिंदी पाठ्य पुस्तक
डॉ. विवेकानंद शर्मा	प्रशांत की लहरें -भाग 1	कहानी संग्रह
	प्रशांत की लहरें -भाग 2	कहानी संग्रह
	जब मानवता कराह उठी	उपन्यास
	अनजान क्षितिज की ओर	उपन्यास
	फीजी में श्रीराम और	रामकाव्य
	रामकाओयका	सूक्ष्म विश्लेषण
	फीजी में सनातन धर्म	शोधकार्य
	के सौ साल का इतिहास	(इतिहास)
	हिंदू संस्कार :पर्व और उत्सव	
	हमारे ग्रंथ	
	हमारे त्योहार	
	गुलाब के फूल	
	फीजी के प्रधान	
	मंत्री-रातू मारा	
	फीजी : भारत से दूर	निबंध
	एक छोटा भारत	
	सनातन विश्वकोश भाग 1	विश्वकोश :
		भारतीय संस्कृति
	सरल हिंदी व्याकरण	पाठ्य- व्याकरण
संपादक	फीजी के राष्ट्रीय कवि	कविता संग्रह
	पं कमला प्रसाद मिश्र	
मुख्य संपादक	संस्कृति	त्रैमासिक पत्रिका
बाबू कुँवर सिंह	राष्ट्र पर्व दीवाली	कविता
श्री भगवान सिंह	फीजी	लेखमाला-फीजी
		का परिचय
प्रो. सुब्रमनी	डउका पुरान	उपन्यास
	कला की तलाश	कहानी संग्रह
श्री. रयमन पिल्लय	अधूरा सपना	नाटक
	स्वर्णिम साँझ	कविता संग्रह
	उपहार	कविता संग्रह
	चलो चलयाँ उस पार	कविता संग्रह

एन. चंद्र देव सिंह	गुरुनानक देव और	कविता संग्रह
	उनका जीवन	
एन. चंद्र देव सिंह	रमणिक द्वीप की सुंदरी	ऐतिहासिक
		कहानी संग्रह
वी. सुधाकर,	प्रशांत की तरंगे	कविता संग्रह
राम नारायण गोविंद,		
डॉ. नेतराम शर्मा		
(संपादक)		
डॉ. नेतराम शर्मा	मनोरम कहानियाँ	कहानी संग्रह
(संपादन)		
हरनाथ	फीजी का ऐतिहासिक दर्शन	इतिहास
पं. रामचंद्र शर्मा	फीजी दिग्दर्शन	गद्य रचना
''कीर्तन विशारद''		
	प्रवासियों के धर्म	काव्यमयी रचना
	प्रेम की एक झलक	
	फीजी-भजन-तरंग	काव्यमयी रचना
	सती सुमित्रा-रामायण	गायन तथा भजन
	लंकाकांड की शिक्षाप्रद	पुस्तक
	गाथा	
	शिव-पार्वती विवाह-	गायन तथा भजन
	बालकांड की मनोहर	पुस्तक
	सुंदर गाथा	
	अभिमन्यु-वध-महाभारत	गायन तथा
	द्रोण पर्व की जगत	भजन पुस्तक
		प्रसिद्ध गाथा
	जयद्रथ वध	गायन तथा भजन
		पुस्तक
	राजा हम्मीर	गायन तथा भजन
		पुस्तक
	बालि वध	गायन तथा भजन
		पुस्तक
	पृथ्वीराज की भविष्यवाणी	गायन तथा भजन
		पुस्तक
	कुलवती वधु	गायन तथा भजन
		पुस्तक
	आदर्श भारत	भजन पुस्तक
	धर्म का डंका	भजन पुस्तक
	राम नाटक गरम मसाला	हास्य रस से भरे
		हुए थियेट्रिकल
		गायन
	राम कीर्तन	भजन पुस्तक
	ज्ञानी गवैया	
	भारत हितैषी मसाला	
	सतोपदेश भजनवाटिका	

	कलियुग का आफताब	
	संगठन की लहर	
भारत वी. मोरिस	हाय रे जिंदगी	नाटक
	गली-गली सीता रोए	नाटक

इन लोगों की कविताएँ/निबंध/लेख/कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं या अन्य लेखकों की पुस्तकों में प्रकाशित हुई हैं।

पं. कमला प्रसाद मिश्र	कुमारी कृष्णा	श्रीमती विद्या सिंह
	कला पाठक	
महेंद्र चंद्र विनोद	बाबू राम अरुणु	श्रीमती महाराज
	कुमारी भिंडी	
काशीराम कुमुद	रामा नारायण	प्रमाल वैलायदन
बाबू हरनाम सिंह	कमला सिंह	श्रीमती कमल
'हरनाम'		लता चंदर
ज्ञानी दास	ज्ञान शुक्ला	ललित नागेश्वर
आर.एस. प्रसाद गमुनिग	सतेंद्र नंदन	श्री माता प्रसाद
नंद किशोर	वी. सुधाकर	चंद्रिका प्रसाद
		श्रीवास्तव
ऋषि देव शर्मा	बलराम वशिष्ठ	बी.महावीर 'मित्र'
राम औतार गुप्त	राम नारायण गोविंद	सरोजनी आशा
राम शंकर	श्रीमती सुखलेश बमी	डॉ. नेतराम शर्मा
चंद्र देव सिंह	द्वारका सिंह गमानग	मास्टर एम.टी.खान
राजेंद्र दत्त महाराज	गंगाधर नायर	कल्लू
हजारत आदम	पं. राघवा नंद शर्मा	अनुभवानंद आनंद
फकीर मुहम्मद मुसाफिर	अजा फैजा	सलीम बखश
कुमारी सरस्वती देवी	चंद्रदेव सिंह	ईशवरी प्रसाद चौधरी
ए.ए. शमीम	राम अवतार गुप्त	देव शरण
सुखराम	अक्षैबर सिंह	मास्टर सुरुज पाल
श्रीमती मनीषा रामरक्खा	मास्टर सुरुज पाल	मास्टर जगजेंद प्रसाद
गोविंद प्रसाद	बी. शिव प्रसाद	प्रताप चंद्र शर्मा
विजेंद्र शर्मा	कल्याण चंद्र	अभ्यानंद अवस्थी
मोहन सिंह हेर	श्री ए.डी. पटेल	

University of the South Pacific
Suva, Fiji.

□

२३

अमेरिका का साहित्यिक परिदृश्य तथा अमेरिका में हिंदी का भविष्य

✍ डॉ. इला प्रसाद

- इला प्रसाद का जन्म 3 जून को रांची, भारत में हुआ।
- उन्होंने काशी, हिंदू विश्वविद्यालय से भौतिकी में पी एच.डी. संपन्न किया। साहित्य की कई विधाओं-कविता, कहानी, व्यंग्य, आलेख, संस्मरण आदि में लिख रही इला प्रसाद की रचनाएँ देश-विदेश की लगभग सभी प्रमुख हिंदी पत्र-पत्रिकाओं (वागर्थ, हंस, पाखी, आधारशीला आदि) में प्रकाशित हो चुकी हैं।
- उनकी रचनाएँ कई पुस्तकों में भी हिंदी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं (तमिल, उड़िया) में प्रकाशित हो चुकी हैं।
- अमेरिका से प्रकाशित हिंदी जगत पत्रिका के संपादन कार्य में भी इलाजी अपना सहयोग देती आ रही हैं। इसके साथ ही हिंदी चेतना तथा शोध दिशा पत्रिकाओं के विशेषांकों के संपादन में अपनी अहम भूमिका दे चुकी हैं।
- अध्यापन कार्य से जुड़ी इला प्रसाद कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार में जुटी हैं।

जब भी हम अमेरिकी हिंदी साहित्य की बात करते हैं तो सहज रूप में अमेरिका के अंग्रेजी साहित्य की ओर हमारा ध्यान चला जाता है। जिस तरह अमेरिका का हिंदी साहित्य धीमी गति से एक निश्चिंत आकार ग्रहण करता प्रतीत होता है, कभी अमेरिकी अंग्रेज़ी साहित्य ने भी अपनी स्वतंत्र सत्ता विकसित होने तक इसी तरह संघर्ष किया था।

अमेरिका के साहित्यिक परिदृश्य पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो कुछ बातें स्वत: ही स्पष्ट हो जाती हैं—अमेरिका का साहित्य बहुत समय तक ब्रिटिश प्रभाव से गस्त रहा एवं ब्रिटेन के लेखक एवं उनका लेखन अमेरिका के लिए रोल मॉडल रहे। भाषा एवं शैली से लेकर तमाम अन्य मूल्यांकनों के लिए अमेरिकी साहित्य ब्रिटेन का मुखापेक्षी रहा। किंतु अमेरिका के समाज में यूरोपीय ही नहीं, चीनियों, अफ्रीकियों, लातीनी अमेरिका एवं यहाँ के मूल निवासियों आदि की भी भागीदारी थी। इन सबकी अपनी भाषा-संस्कृति थी एवं इन सबने परोक्ष रूप से अमेरिकी जीवन-शैली, भाषा एवं साहित्य को प्रभावित किया। यह सहज स्वाभाविक था कि अमेरिकी अंग्रेज़ी इन भाषाओं से शब्द ग्रहण करती। काले या हब्शी लोगों की भाषा ही अलग नहीं थी वरन् वे उन्हीं शब्दों को भिन्न रूप में, अर्थ में प्रयोग में लाते थे। क्रमशः अमेरिकी अंग्रेज़ी ब्रिटिश से अलग होती गई एवं लेखकों ने यह महसूस करना आरंभ किया कि उन्हें अपनी कहानी अपने तरीके से लिखनी है और उसके मूल्यांकन के लिए ब्रिटिश मापदंडों से आजाद होना होगा। अमेरिकी साहित्य में अठारहवीं से बीसवीं शताब्दी के बीच कई नाम सामने आए—वाल्ट विह्ट्मैन, होम्स, जैक लंडन, हेमिंग्वे, एमर्सन, एमिली डिकेन्सन, एजरा पाउंड, पर्लबक, एडगर एलन पो, बाल्डविन, मार्गरेट फुलर, मार्क ट्वेन, इलियट, ओ हेनरी, वाशिंगटन इरविन, नथानियेल हाथार्न, जार्ज रिप्ले, राबर्ट फ्रास्ट आदि। साहित्य की नई सोच एवं अमेरिकन परंपराओं की खोज इसी काल में आरंभ हुई। भाषा ही नहीं व्याकरण भी बदलता हुआ नजर आया। ये अमेरिकी साहित्य की स्वतंत्र सत्ता के विकास के भागीदार रहे।

आज स्थिति यह है कि अमेरिकी अंग्रेज़ी ब्रिटिश अंग्रजी से भिन्न है, बोलने का लहजा भी बिल्कुल अलग है, अमेरिकी लेखन एवं साहित्य की अपनी पहचान है। यही सच आस्ट्रेलियाई साहित्य का भी है। यह सब अलग-अलग देशों के अंग्रेज़ी का लेखन है जिनकी अपनी स्वतंत्र पहचान है, जिनका अपना इतिहास है—जो उन्होंने खुद लिखा है, हाँलाकि यह सब अंग्रेज़ी का ही साहित्य है।

इस परिप्रेक्ष्य में हम जब अमेरिकी हिंदी साहित्य पर विचार करते हैं तो उसकी स्थिति बहुत भिन्न नजर नहीं आती। भारतीय आबादी के क्रमशः अमेरिका प्रवास के साथ अमेरिकी हिंदी साहित्य का इतिहास

जुड़ा है। बहुरंगी भारतीय संस्कृति का प्रभाव यहाँ आई भारतीय आबादी पर पहले से मौजूद था जो क्रमश: अमेरिकी संस्कृति से घुल-मिलकर एक नया स्वरूप ग्रहण कर रहा है। परिस्थियों के अनुरूप अपने को समायोजित करता, हर सामाजिक-सांस्कृतिक उत्सव सप्ताहांत में मनाता, अंशत: अमेरिकी, अंशत: भारतीय जीवन शैली को अपनाए हुए भारत के विभिन्न कोनों से आए भारतीयों का जीवन यहाँ के रचनाकारों को हर रोज यहाँ के हिंदी साहित्य में कुछ नया जोड़ने को दे रहा है, जिससे एक ओर हिंदी साहित्य का कोश समृद्ध हो रहा है, दूसरी ओर अमेरिकी हिंदी साहित्य क्रमश: भारत के हिंदी साहित्य से अलग होता जा रहा है। इस साहित्य में अमेरिकी अंग्रेज़ी के शब्दों की घुसपैठ ही नजर नहीं आती, वरन् उसका व्याकरण भी उपस्थित है। इसमें मात्र अमेरिकी-भारतीय जीवन शैली की कथा ही नहीं है, दो संस्कृतियों की टकराहट की स्पष्ट अनुगूँज है। विवाहेतर संबंध, यौन हिंसा, शिक्षा पद्धति, सामाजिक ढाँचा, अमेरिकी श्वेत एवं अश्वेत समाज की समस्याएँ-संक्षेप में अमेरिका के जीवन के तमाम पहलू अब यहाँ की जमीन पर लिखी जा रही रचनाओं का हिस्सा है। इन्हें पढ़ना अमेरिका में रह रहे भारतीय समुदाय ही नहीं वरन् पूरे अमेरिकी समुदाय के जीवन में सेंध लगाना है।

परिस्थियों के अनुरूप अपने को समायोजित करता, हर सामाजिक-सांस्कृतिक उत्सव सप्ताहांत में मनाता, अंशतः अमेरिकी, अंशतः भारतीय जीवन शैली को अपनाए हुए भारत के विभिन्न कोनों से आए भारतीयों का जीवन यहाँ के रचनाकारों को हर रोज यहाँ के हिंदी साहित्य में कुछ नया जोड़ने को दे रहा है, जिससे एक ओर हिंदी साहित्य का कोश समृद्ध हो रहा है, दूसरी ओर अमेरिकी हिंदी साहित्य क्रमशः भारत के हिंदी साहित्य से अलग होता जा रहा है। इस साहित्य में अमेरिकी अंग्रेज़ी के शब्दों की घुसपैठ ही नजर नहीं आती, वरन् उसका व्याकरण भी उपस्थित है। इसमें मात्र अमेरिकी-भारतीय जीवन शैली की कथा ही नहीं है, दो संस्कृतियों की टकराहट की स्पष्ट अनुगूँज है। विवाहेतर संबंध, यौन हिंसा, शिक्षा पद्धति, सामाजिक ढाँचा, अमेरिकी श्वेत एवं अश्वेत समाज की समस्याएँ-संक्षेप में अमेरिका के जीवन के तमाम पहलू अब यहाँ की जमीन पर लिखी जा रही रचनाओं का हिस्सा है।

साठ के दशक से अमेरिकी हिंदी साहित्य का इतिहास शुरू होता है। उस काल में सृजनरत रचनाकार सोमा वीरा, उषा प्रियंवदा एवं सुनीता जैन की रचनाएँ उस काल का सशक्त परिदृश्य प्रस्तुत करती हैं। उषा प्रियंवदा, जो अभी भी अमेरिका में हैं और सृजनरत हैं, का नवीनतम उपन्यास 'भया कबीर उदास' अमेरिका में रह रही स्तन कैंसर से जूझती स्त्री के मनोभावों का चित्रण करता है एवं अमेरिकी पृष्ठभूमि पर रचे गए उनके साहित्य की नवीनतम कड़ी है।

अमेरिकी हिंदी साहित्य के पटल पर कई ऐसे नाम हैं जिनके उल्लेख के बिना यहाँ के साहित्य का इतिहास पूरा नहीं होगा। आरंभिक दौर में इंदुकांत शुक्ल, वेद प्रकाश बटुक, रामेश्वर अशांत, श्याम नारायण शुक्ल, शालीग्राम शुक्ल, वेद प्रकाश सिंह अरुण, गुलाब खंडेलवाल, पं. भूदेव शर्मा, सुरेंद्र कुमार तिवारी, विजय कुमार मेहता, हिमांशु पाठक आदि कई नाम हैं जिनकी अपनी भूमिका यहाँ के साहित्य को मंच प्रदान करने में भी रही। अमेरिकी पृष्ठभूमि पर गद्यलेखन के क्षेत्र में अपने सशक्त लेखन के लिए एक चर्चित नाम रहा—कमला दत्त। उनकी सत्तर के दशक में लिखी गईं, आरंभिक कहानियाँ—'मछली सलीब पर टंगी', 'अभिशप्त', 'सिल्वो डाले ते नेपियाँ' आदि ही उनकी जगह साहित्य में सुनिश्चित कर देने के लिए काफी रहीं।

इसी तरह उषादेवी विजय कोल्हटकर हैं जो मराठी एवं हिंदी दोनों भाषाओं में समान अधिकार से लिखती रहीं। 'सरोगेट मदर', 'मेहमान', 'पीला रंग आशा का' आदि उनकी कहानियाँ पठनीयता के स्तर पर ही नहीं वरन् विषय-वस्तु के प्रभावशाली प्रस्तुतिकरण के लिए भी पढ़ी जानी चाहिए। रमेश धुस्सा की 'बहुत अच्छा आदमी' कहानी भी एक ऐसी ही कहानी है। कई

विधाओं में एक साथ सृजनरत सुषम बेदी का 'ग्रहवन'—अमेरिकी पृष्ठभूमि पर लिखे गए उनके सभी उपन्यासों में सबसे अधिक चर्चित है। इनके सिवा सुदर्शन प्रियदर्शिनी, उमेश अग्निहोत्री, इला प्रसाद, अनिल प्रभाकुमार, रेणु राजवंशी गुप्ता, सुधा ओम ढींगरा, स्वदेश राणा, अंशु जौहरी, अमरेंद्र कुमार, राजश्री, रचना श्रीवास्तव आदि कई ऐसे नाम हैं जिनके लेखन से यहाँ के हिंदी साहित्य का कोश निरंतर समृद्ध हो रहा है एवं जो अमेरिकी हिंदी साहित्य के विकास के भागीदार हैं। भारत की स्थापित लेखिका पुष्पा सक्सेना पिछले दशक में अमेरिका आई हैं और उनकी कहानियों में भी अब अमेरिका अपने पूरेपन के साथ उपस्थित है। यही सच प्रतिभा सक्सेना का भी है। सौमित्र अब वापस भारत जा बसे हैं किंतु यहाँ होने के दौरान उन्होंने काफी कुछ सार्थक रचा।

कविता को लें तो अमेरिकी हिंदी कविता में अमेरिका के जीवन की विद्रूपताओं का अपने विशिष्ट अंदाज में बेहद सशक्त चित्रण करनेवाली अंजना संधीर की कविताएँ एवं गजलें अलग से पहचानी जाती हैं। इसी तरह रेखा मैत्र अपनी छोटी-छोटी कविताओं में बड़ी बारीकी से इस परिवेश की एवं यहाँ के जीवन की विसंगतियों की कथा कहती नज़र आती हैं। सुषम बेदी आरंभ में एक सशक्त कवयित्री भी रही हैं। देखा जाए तो अमेरिकी हिंदी कविता एवं गज़ल विधा में इनके अतिरिक्त धनंजय कुमार, गुलशन मधुर, राकेश खंडेलवाल, अनूप भार्गव, रेखा मैत्र, अनंतकौर, देवी नांगरानी, शशि पाधा, कल्पना सिंह चिटनीस, इला प्रसाद, अनिल प्रभा कुमार, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, सुधा ओम ढींगरा, विशाखा ठाकेर, अंशु जौहरी, प्रतिभा सक्सेना, बीना टोढी, अभिनव शुक्ल, रमनी थापर, अमरेंद्र कुमार, मंजु मिश्रा, आस्था नवल, लावण्या शाह, बिंदु भट्ट, रचना श्रीवास्तव आदि कई रचनाकार निरंतर सृजनरत हैं। अमेरिका के जीवन की विसंगतियाँ एवं उससे जुड़े तमाम पहलू इनकी कविताओं का भी विषय बने हैं। हिंदी साहित्य के लिए यह एक सुखद स्थिति है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अमेरिका का हिंदी साहित्य अपने प्रारंभिक दौर से बाहर आ रहा है। इनमें से कतिपय रचनाकारों ने भारत की पृष्ठभूमि पर रचनाएँ लिखी हैं, अब भी कइयों की भावभूमि भारत भी हैं किंतु उनका लेखन अमेरिका के हिंदी साहित्य का अविभाज्य अंग हैं क्योंकि भाषा, शिल्प, अभिव्यक्ति- इन तमाम दृष्टिकोणों से भी इनमें से कई रचनाएँ बेजोड़ हैं। वर्तमान में वह नॉस्टालजिया जो कतिपय रचनाकारों की आरंभिक रचनाओं की मूल ध्वनि रहा है, धीरे-धीरे अतीत की कथा होने को अग्रसर हैं। स्मरणीय तथ्य यह है कि अमेरिकन हिंदी साहित्य अमेरिकी भारतीयों के जीवनानुभव पर आधारित है। यह भारत की अनुकृति नहीं बन सकता, न ही इसे ऐसा दिखलाने की कोई इच्छा यहाँ के रचनाकारों को अभीष्ट हैं। हमें जाने-अनजाने में यह स्वीकार करना होगा कि यहाँ की कहानियाँ, विषय-वस्तु, भाषा एवं शिल्प के क्षेत्र में भी क्रमश: भारत में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य से अलग हो सकती हैं। नए शब्दों का प्रवेश होगा, शब्दों के अर्थ बदलेंगे, व्याकरण का ढाँचा प्रभावित होगा एवं एक समय आएगा जब अमेरिकन हिंदी साहित्य की स्वतंत्र सत्ता स्थापित होनी ही है। हिंदी साहित्य के विशाल सागर में अमेरिकी हिंदी साहित्य की निरंतर प्रवाहमान नदी निरंतर अपना विकास कर रही है जिसका स्वागत होना चाहिए।

जहाँ तक अमेरिका में हिंदी के भविष्य का प्रश्न है, शिक्षाविदों एवं साहित्यकारों ने एक पूरी पीढ़ी ने अमेरिका में हिंदी को बनाए रखने के लिए अपने को होम किया है और अब अगली पीढ़ी ने यह दायित्व अपने कंधे पर ले लिया है।

यह सर्वविदित तथ्य है कि सन् 2007 में अमेरिका में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन के बाद अमेरिका के हिंदी साहित्य एवं अमेरिका में हिंदी भाषा का स्वरूप अधिक स्पष्ट होकर बाह्य जगत के सामने आया। यह उस सम्मेलन की उपलब्धि कही जा सकती है। हिंदी भाषा की पढ़ाई अमेरिका के सौ के करीब विश्वविद्यालयों में हो रही है। समस्या अब भी सभी संस्थानों के पाठ्यक्रम में एकरूपता के अभाव की है, जिस पर कार्य चल रहा है। उससे भी बड़ी एक अन्य समस्या स्कूल के स्तर पर हिंदी के पाठ्यक्रम का अनुपस्थित होना है। स्कूल के स्तर से ही यदि हिंदी भाषा की पढ़ाई आरंभ की जाए तो विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का स्तर बेहतर हो सकेगा। इसी खाई को पाटने के लिए अमेरिका में पिछले कुछ वर्षों से अमेरिकन सरकार के अमेरिकन काउंसिल फ़ार टीचिंग आव फोरेन लैंग्वेज (ACTFL) का स्टार टॉक-जो स्टार्ट टॉकिंग (बोलना शुरू करें) का संक्षिप्त रूप है—कार्यक्रम आरंभ हुआ है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत बच्चों को हिंदी में पूरे-पूरे वाक्य बोलना सिखाया जाता है। फिर उन वाक्यों को तोड़कर, शब्द, वर्तनी एवं व्याकरण की शिक्षा दी जाती है। यह प्रयोग अत्यंत सफल रहा है और इस तरीके से छात्र गण बड़ी तेजी से हिंदी सीखी जिनका हिंदी से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं था। आम तौर पर ग्रीष्मावकाश में चलनेवाले ये सत्र स्कूली बच्चों को हिंदी सीखने के लिए प्रोत्साहित

करने के लिए ही चलाए जाते हैं। इसी कार्यक्रम का दूसरा पहलू हिंदी के शिक्षक तैयार करना भी है। शिक्षक- प्रशिक्षण कार्यक्रम भी इसी समय कई बार उसी परिसर में चलते हैं। इसके प्रयासों के फलस्वरूप अमेरिका के कुछ स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई आधिकारिक तौर पर आरंभ हो चुकी है।

किंतु इस क्षेत्र में काफ़ी समय पहले से कई स्वयंसेवी संस्थाएँ अपने स्तर पर सक्रिय रही हैं जिनकी चर्चा अत्यावश्यक है। विश्व हिंदी न्यास, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति, इंटरनेशनल हिंदी असोसिएशन एवं हिंदी यू.एस.ए. अपने-अपने स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार का श्लाघनीय कार्य करते रहे हैं। अमेरिका के विश्वविद्यालयों में हिंदी का पाठ्यक्रम शुरूकरवाना भी इन संस्थाओं के कार्यकलापों का हिस्सा है। बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए इनके स्कूल हैं जहाँ इन संस्थाओं से जुड़े स्वयंसेवक कार्यरत हैं। हिंदी यू.एस.ए. का गठन सबसे बाद में हुआ किंतु यह संस्था पूरे तौर पर अमेरिकी भारतीय बच्चों को हिंदी सिखाने के कार्य में ही लगी हुई है। इस दिशा में आर्यसमाज की भूमिका भी सराहनीय है। दयानंद आर्य विद्यालय की शाखाएँ कई शहरों में बच्चों को हिंदी एवं संस्कृत की शिक्षा उपलब्ध करा रही हैं। चिन्मय मिशन के मंदिर एवं अन्य कई मंदिर हिंदी शिक्षण का केंद्र भी बने हुए हैं। अमेरिकी- भारतीय एवं अमेरिका मूल के छात्र-दोनों ही इनसे लाभान्वित हो रहे हैं। इन संस्थाओं के छात्रों के सांस्कृतिक कार्यक्रम जब होते हैं तो देखनेवाले उनके भाषा-ज्ञान एवं कलात्मक क्षमताओं पर विस्मय-विमुग्ध हुए बिना नहीं रहते। अमेरिका से निकलने वाली हिंदी की पत्रिकाएँ भी इस महायज्ञ में बहुत समय से आहुति दे रही हैं। इन्होंने न केवल अमेरिका के रचनाकारों को आत्माभिव्यक्ति का मंच प्रदान किया है अपितु भारत एवं अन्य देशों के रचनाकारों के लेखन से भी हमें जोड़े रखा है। स्तर की दृष्टि से विश्व हिंदी न्यास कि 'हिंदी-जगत' अमेरिका की महत्त्वपूर्ण पत्रिका है। विश्व हिंदी न्यास हिंदी में विज्ञान पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' भी निकालता है। हिंदी यू.एस.ए. की पत्रिका 'कर्मभूमि', इंटरनेशनल हिंदी असोसिएशन की 'विश्व' एवं अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की 'सौरभ' भी उल्लेखनीय पत्रिकाएँ हैं। यह विडंबना ही कही जाएगी कि अमेरिका में अभी तक हिंदी का कोई अखबार नहीं है, जबकि कई अन्य भारतीय भाषाओं—पंजाबी, गुजराती, तमिल, तेलुगु आदि के अखबार उपलब्ध हैं। लेकिन रंगमंच पर हिंदी नाटक हैं, रेडियो पर हिंदी के कार्यक्रम हैं, टी.वी. पर भी कुछ शहरों में हिंदी के कार्यक्रम हैं जो हिंदी के लिए उत्साहवर्धक स्थिति है।

कुल मिलाकर अमेरिका में हिंदी भाषा एवं अमेरिकी हिंदी साहित्य दोनों के लिए यह विकास का दौर है। यह आशा की जा सकती है कि आनेवाले दशकों में इनकी स्थिति और स्वरूप दोनों सुदृढ़ होंगे।

इसी काल में रामेश्वर अशांत ने—जो खुद एक अच्छे कवि थे-हिंदी की पत्रिका 'विश्व' के माध्यम से अमेरिका के रचनाकारों को एक मंच दिया जहाँ वे अपने को अभिव्यक्त कर सकते थे।

अमेरिका में हिंदी का भविष्य

हंस पत्रिका के विशेषांक 'नई का नया नजरिया' (2009) के लिए अमेरिका में हिंदी शिक्षण की स्थिति पर चर्चा करते हुए मैंने लिखा था कि यहाँ हिंदी शिक्षण अपने शैशवकाल से गुजर रहा है। विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में एकरूपता नहीं है। अपने छात्रों की जरूरतों के मद्देनजर अध्यापकगण अपनी-अपनी हिंदी की पाठ्यपुस्तक लिख डालते हैं, स्वरचित कहानियाँ और कविताएँ पढ़ाते हैं-हिंदी के बड़े रचनाकारों की रचनाओं की भाषा-शैली के दुर्बोध होने की दुहाई देते हुए।

आँकड़ों की दृष्टि से देखा जाए तो स्थिति उत्साहवर्धक है—100 के करीब विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन हो रहा है।

तीन पत्रिकाएँ एवं कई रेडियो स्टेशन हैं जो हिंदी के कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।

उपसंहार

अमेरिकन हिंदी साहित्य अमेरिकी भारतीयों के जीवनानुभव पर आधारित है। यह मानकर चलना होगा कि यहाँ की कहानियाँ, विषय-वस्तु, भाषा एवं शैली भी भारत में रचे जा रहे साहित्य से अलग होनी हैं। क्रमश: शब्दों के अर्थ बदलेंगे, व्याकरण का ढाँचा प्रभावित होगा, नई शब्दावली—जो उस देश, काल की उपज है, का प्रवेश भी होगा। यह अमेरिका की जमीन पर रचे गए, अमेरिकी परिवेश एवं सोच को व्याख्यायित करता हुआ यहाँ का हिंदी साहित्य है, जिसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता होगी। भारतीय साहित्यकारों, आलोचकों को स्वीकार करना होगा, मान्यता देनी होगी कि यह अमेरिका का हिंदी साहित्य है एवं यह भारत की या भारत में रचे जा रहे साहित्य की अनुकृति नहीं बन सकता। यही सच उन तमाम अन्य देशों के हिंदी साहित्य का है, जहाँ भारतवंशी साहित्यकार सृजनरत हैं।

□

अमेरिका के हिंदी कथा साहित्य में अमेरिकी परिवेश

✍ डॉ. सुधा ओम ढींगरा

- डॉ. सुधा ओम ढींगरा 1982 में अमेरिका आईं। अमेरिका में हिंदी भाषा के उत्थान में इनकी अहम भूमिका रही है। इनकी 9 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।
- इनके सहयोग से अनेक कवि सम्मेलनों, गोष्ठियों तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ है। वे हिंदी प्रचारिणी सभा, कनाडा से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'हिंदी चेतना' की संपादक हैं।
- अमेरिका में प्रवासी टुडे की प्रतिनिधि भी हैं; विश्व पत्रिका (अमेरिका), पंजाब केसरी, हिंदी समाचार तथा जगवाणी पत्र-पत्रिकाओं में स्तंभ लेखिका भी हैं।
- डॉ. सुधा हिंदी विकास मंडल, अंतरराष्ट्रीय हिंदी संस्थान, रेडियो सबरंग आदि संस्थाओं से जुड़ी हैं। उनकी कविताएँ, कहानियाँ, साक्षात्कार और आलेख कई पत्र-पत्रिकाओं और जाल-स्थलों में प्रकाशित। उन्हें कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित भी किया जा चुका है।

अमेरिका का हिंदी कथा-साहित्य साठ के दशक में प्रकाश में आया, जब त्रिवेणी (उषा प्रियंवदा, सोमा वीरा और सुनीता जैन) ने विश्व को अमेरिका के कथा साहित्य से परिचित करवाया। साठ के दशक में त्रिवेणी की लेखनी में अमेरिकी जीवन की झलक साफ दिखाई देती है। इन्होंने भारतीय हिंदी साहित्य का परिचय एक ऐसे कथा-संसार से करवाया जो इससे पहले हिंदी साहित्य में अनजाना था। सोमा वीरा की कहानी 'लॉनड्रोमैट' अमेरिका के जीवन की कई झाँकियाँ प्रस्तुत कर जाती हैं। नए परिवेश को अपनाते और उसमें समाते हुए बड़ा भाई अमेरिका की मशीनी जिंदगी जीने लगता है और अतीत एवं रिश्तों के प्रति बेगाना हो जाता है। लॉनड्रोमैट की मशीनों के माध्यम से लेखिका ने अमेरिकी परिवेश, जीवन शैली, जीवन मूल्यों, सोच और कल्चर की भिन्नता दर्शाई है। विष्णु प्रभाकर जी ने इनकी पुस्तक 'धरती की बेटी' की भूमिका में लिखा है—''सरलता इनकी कहानियों की बहुत बड़ी शक्ति है। अपने पैरों पर खड़े होकर उन्होंने अंधकार में राह बनाई है। ये सब अनुभूतियाँ और नई दुनिया के नए चित्र उनकी कहानियों को और भी सशक्त बना देंगे।''

डॉ. महीप सिंह ने अपने लेख 'विदेशों में साहित्य सृजन', जो 15 सितंबर, 2005 को दैनिक जागरण में प्रकाशित हुआ, उसमें लिखा है, ''अमेरिका में हिंदी लेखकों की संख्या काफी बड़ी है। मैं ऐसे अनेक लेखकों को जानता हूँ जो भारत में सक्रियता से लेखन करते थे। अमेरिका ने उन्हें धीरे-धीरे निगल लिया।'' अमेरिका ने उन्हें निगला नहीं वरन् यहाँ की पृष्ठभूमि उनके लेखन के लिए उर्वर सिद्ध हुई और नई सोच, नए सामाजिक सरोकार, नई चुनौतियाँ उनकी कहानियों को नयापन दे ऊर्जित कर गईं। उन्हें एक बृहत्तर फलक मिला। इन तीन लेखिकाओं के अलावा साठ के दशक में डॉ. कमला दत्त, डॉ. श्याम नारायण शुक्ला, निर्मला शुक्ला आए और कहानियाँ लिखते रहे, इस बात की परवाह किए बिना कि उनकी रचनाएँ प्रकाश में आएँगी या नहीं। साठ का दशक वह समय था जब अमेरिका में बहुत कम भारतीय आते थे और जो आते थे, उनमें से कई स्थानीय औरतों के साथ भावनात्मक तौर पर जुड़ जाते थे। फिर भारत जाकर माँ-बाप की खुशी के लिए वहाँ भी शादी कर लेते थे। उसमें बहुत कुछ टूटा, जुड़ा बहुत कम। दो संस्कृतियों के मूल्यों का टकराव, पूर्व-पश्चिम का अंतर, अंतर्द्वंद्व उस समय की कहानियों का मुख्य विषय था। डॉ. कमला दत्त की 'धीरा पंडित', 'केकड़े और मकड़ियाँ'; निर्मला शुक्ला की 'उलझन' और सोमा वीरा की 'लॉनड्रोमैट' कहानियों का मूल विषय यही है। साठ के दशक का अमेरिका उनकी कहानियों में साफ देख सकते हैं। कमला दत्त ने अपनी कहानी में भारतीय मूल की महिला को संबंधों के टूटने से हालात-परिस्थितियों में उलझी, भीतर से बिखरती,

स्थानीय पुरुष के मोहपाश में बँधती दिखाया है। ऐसे हालातों से प्रभावित उस समय के भारत और वहाँ के परिवारों की मन:स्थिति का वर्णन भी बखूबी किया है। ऐसे किस्से अब भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। पर अब लेखकों के केंद्र बिंदु बदल गए हैं। कई और विषय उनकी कहानियों में समाने लगे हैं।

सत्तर के दशक में अशोक कुमार सिन्हा, उमेश अग्निहोत्री, डॉ. आर. डी. एस. 'माहताब', ललित आहलूवालिया, पूर्णिमा गुप्ता, कमलेश कपूर, डॉ. उषा देवी विजय कोल्हटकर, अनिलप्रभा कुमार, रमेश चंद धुस्सा आए। उमेश अग्निहोत्री तथा डॉ. उषा देवी विजय कोल्हटकर बहुत चर्चित नाम हैं। डॉ. उषा देवी विजय कोल्हटकर हिंदी के साथ-साथ मराठी में भी बराबर छपती हैं। उमेश अग्निहोत्री नाटकों के मंचन से भी जुड़े हैं। डॉ. उषा देवी विजय कोल्हटकर की कहानियाँ अमेरिकी परिवेश में ही फलती-फूलती हैं। 'बटर टॉफी और बूढ़ा डॉलर' और 'मेहमान' कहानियों में उषा जी ने पति-पत्नी के संबंध-विच्छेद और पारिवारिक विघटन से उत्पन्न स्थितियों और बच्चों का अकेलापन बखूबी बुना है। 'घोड़े और टेडी बियर' के साथ टूट चुके या टूट रहे परिवारों में पल रहे बच्चों की मानसिकता को उन्होंने उत्तम तरीके से उजागर किया है। उषाजी वर्षों से अमेरिका में रह रही हैं। अमेरिकी परिवेश और संस्कृति में गहरे उतरकर उनके पात्र जीते हैं। अनिल प्रभा कुमार की कहानी 'घर' तलाक से प्रभावित बच्चे में पैदा हुई भावनात्मक, मानसिक असुरक्षा एवं उससे उत्पन्न हुए अवसाद से घिरे पात्र के ताने-बाने से गुँथी गई सशक्त रचना है। उनकी अन्य कहानियाँ 'तीन बेटों की माँ', 'वानप्रस्थ', 'दिवाली की शाम', 'फिर से', 'उसका इंतजार', 'बहता पानी' भावनाओं से ओत-प्रोत पाठकों को अपने बहाव में बहा ले जाने और लंबे समय तक याद रहनेवाली कहानियाँ हैं।

भारतीय जीवन दर्शन में पनपती पश्चिमी सोच अब विदेशों में रचे जा रहे साहित्य पर संपदकों, आलोचकों और पाठकों को सोचने और समझने पर मजबूर कर रही है। पश्चिमी जीवन मूल्यों और भारतीय जीवन-मूल्यों के बीच की खाई बहुत बड़ी थी जो स्वयं भारत में ही कम होती जा रही है। भारत में जिसे आत्म-प्रदर्शन और आत्म-विज्ञापन की संज्ञा दी जाती है, वह अमेरिका में अपने आपको उद्धरित करना कहलाता है। जीवन दर्शन का यह मूलभूत अंतर अमेरिकी हिंदी साहित्य का मूल कथ्य भी है। इस कथ्य को अब भारत में नकारा नहीं, समझा जा रहा है। भारत में तेजी से बदलते मूल्य, जीवन दर्शन और हिंदी साहित्य, अमेरिका की संस्कृति, स्वतंत्र सोच, उससे पनपे विचार और उन विचारों से रचित साहित्य को स्वीकारने लगें हैं।

अस्सी के दशक में जो लेखक अमेरिका आए उनमें सुषम बेदी, डॉ. शालिग्राम शुक्ला, सुधा ओम ढींगरा, डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी, स्वदेश राणा, रेणु राजवंशी गुप्ता, डॉ. विशाखा ठाकर, डॉ. सुरेश राय तथा वेद प्रकाश अरुण हैं। सुषम बेदी का उपन्यास 'हवन' काफी चर्चित उपन्यास है। अमेरिकी परिवेश के आँचल तले उनका साहित्य काफी फला-फूला है। 'अवसान', 'अजोलिया के फूल', 'तीसरी दुनिया का मसीहा', 'खुल जा सिमसिम' कहानियों के पात्र इसका उदाहरण हैं। उनकी कई कहानियों के पात्र उनके लंबे समय के प्रवास की देन हैं। हिंदी कथा-साहित्य में वे विशेष एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। रेणु राजवंशी गुप्ता, डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी, सुधा ओम ढींगरा तथा डॉ. शालीग्राम शुक्ला बराबर चर्चा में हैं।

रमेश शौनिक ने सुधा ओम ढींगरा की कहानियों पर समीक्षा करते हुए लिखा है, ''सुधाजी की कहानियों से आप अमेरिका को जान और पहचान सकते हैं। इनकी कहानियों के पात्र अमेरिकी परिवेश में भोगे हुए यथार्थ से भीगे प्रतीत होते हैं। इनकी कहानियाँ 'कौन सी जमीन अपनी', 'टारनेडो', 'सूरज क्यों निकलता है', 'क्षितिज के परे', 'फंदा क्यों ?', 'एग्जिट', 'ऐसी भी होली' अमेरिकी समाज के सरोकारों, विद्रुपताओं, विसंगतियों को चित्रित करती संवेदनशील कहानियाँ हैं।''

प्रेम जनमेजय ने लिखा है, ''सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में

प्रवासी मन के वह अनछुए कोनों का सहज संवेदनशील वर्णन है, जो अधिकांश प्रवासी रचनाकारों की रचनाओं में मशीनी तौर पर शब्दों का आकार ग्रहण कर जैसे स्वयं को प्रवासी साहित्यकार सिद्ध करवाने के मोह में अनुभवहीनता के साथ एक ही पटरी पर दौड़ते दिखाई देते हैं। सुधा की कहानियों के पात्र प्रवासी मन की जिंदगी के विभिन्न कोनों को जीते दिखाई देते हैं।''

रेणु राजवंशी गुप्ता का समस्त लेखन अमेरिका की भूमि पर ही जन्मा एवं फला-फूला। इसलिए लेखन में प्रवासी भारतीयों की विचारधारा, उपलब्धियाँ और संघर्षों का संपुट साफ झलकता है। डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी कहानियों के साथ-साथ उपन्यास भी लिखती हैं। 'रेत के घर', 'जलाक' उपन्यास; 'धूप' और 'संदर्भहीन' इनकी कहानियाँ बहुत चर्चित रही हैं। इनके पात्र सोच की पर्तों में गहरे उतरते, मानव मन की बारीक-से-बारीक गुत्थियाँ खोलते, कथ्य और शिल्प से सशक्त बुनावट लिए होते हैं।

नब्बे के दशक में अंशु जौहरी, डॉ. सरिता मेहता, प्रतिभा सक्सेना, बबिता श्रीवास्तव, राजश्री, कुसुम सिन्हा के नाम शामिल हैं, पर लेखकों में राजश्री तथा अंशु जौहरी की कहानियाँ ही चर्चित हुईं।

इला प्रसाद ने अपने लेख 'अमेरिका के हिंदी कथाकार' (विश्व मंच पर हिंदी: नए आयाम-2007) में लिखा है, ''यदि इन तमाम लेखकों के लेखन पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो जो बातें सामने आती हैं, उनमें मुख्य यह है कि अमेरिका आने के पश्चात् भी इन सबने भारत और भारतीय परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं और लिख रहे हैं। उदाहरण के लिए—राजश्री की—जिनकी कहानियाँ मूलत: स्त्री-पुरुष संबंधों के इर्द-गिर्द घूमती है—'मैं बोनसाई नहीं', 'मुक्ति और नियति', श्याम नारायण शुक्ल की 'दीक्षा-समारोह', 'कर्मफल'; कुसम सिन्हा की 'माँ', प्रतिभा सक्सेना की 'फिर वह नहीं आई'; अमरेंद्र कुमार की 'ग्वासी' ऐसी ही कहानियाँ हैं। यह सहज-स्वाभाविक भी है। क्या गाँवों से शहर को कूच कर गया लेखक आज भी गाँव की कहानी नहीं कह रहा?''

सन् 2000 में जो लेखक उभरकर सामने आए, वे हैं—डॉ. इला प्रसाद, अमरेंद्र कुमार तथा सौमित्र सक्सेना। ये तीनों ही बहुत अच्छा लिख रहे हैं। इनका अपना एक पाठक वर्ग है। इला प्रसाद की कहानियाँ 'उस स्त्री का नाम', 'रोडटैस्ट', 'मुआवज़ा', 'सेल', 'ई-मेल', 'वैसाखियाँ' अमेरिकी परिवेश में पनपी कहानियाँ हैं। भारत की पत्रिका 'शोध-दिशा' की अतिथि संपादक बनकर उन्होंने अमेरिका के प्रतिनिधि कहानीकारों पर दो अंक निकालकर सराहनीय कार्य किया है। अमरेंद्र कुमार और सौमित्र सक्सेना युवा कथाकार हैं। डॉ. पुष्पा सक्सेना दो हज़ार के दशक में अमेरिका आईं। वे पहले से ही भारत में लिख रही थीं। स्तरीय पत्रिकाओं में छप रही थीं। अमेरिका प्रवास से पहले वे यहाँ आती-जाती रहती थीं। 'वर्जिन मीरा' कहानी उन्होंने उसी समय लिखी थी। इसी दशक में रचना श्रीवास्तव एक और युवा लेखिका उभरकर सामने आ रही है जो लघुकथाएँ, कहानियाँ और बाल-साहित्य लिखती हैं। बाल-साहित्य पर इनकी खासी पकड़ है। शकुंतला बहादुर और धनंजय कुमार भी अब कहानियों की ओर मुड़ रहे हैं। धनंजय और गुलशन मधुर द्वारा संपादित 'दिशांतर' के बाद अब 'कथांतर' अमेरिका के कहानीकारों पर संपादित दोनों की नई पुस्तक है।

इस पुस्तक के बारे में प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं, 'कथांतर' इसलिए अर्थवान है कि इसमें संग्रहीत कहानियाँ केवल प्रवासी भारतीय लेखक ही लिख सकते थे, जिन्होंने उन अनुभवों को जिया है। कुछ भारतीय लेखकों ने भी विदेशों को रचने की कोशिश की है, परंतु वह उनकी संवेदना, चेतना और कला का भाग है—अनुभव का नहीं। यहाँ सभी कहानियाँ जो तनाव झेल रही हैं वे उनका शिल्प नहीं, कथ्य हैं। वे संबंधों का आतंक और जद्दोजहद उस तरह उतारकर नहीं फेंक सकी हैं जैसे पश्चिमी मनुष्य उन्हें उतार फेंकता है। अपने देश से मोह-भंग की पीड़ा भी उसी व्यक्ति को अधिक सालती है जो परदेश के अजनबीपन को धकेलने के लिए एक विशेष मोह से देश आया है। 'कौन सी ज़मीन अपनी' या 'बहता पानी' जैसी कहानियों में इस आघात को देख सकते हैं। यह ठीक है कि रचनात्मक संस्कार के लिए केवल प्रतिभा और परिश्रम नहीं, एक रचनात्मक संसार भी चाहिए जो भाषिक परिवेश, सहृदय समाज और प्रकाशन के अवसरों से मिलकर बनता है। इसके अभाव में जो भी रचा जा सकता है वह इस संग्रह में है। 'इसकी का जन्मदिन' की कोटी की कला और संवेद से गूँथी शायद ही कोई कहानी यहाँ हो। परंतु संग्रह यह प्रभाव अवश्य छोड़ता है कि हर कथाकार अपनी मूल सीमाओं का अतिक्रमण न कर पाने की संस्कारगत चेतना से जूझते हुए पश्चिमी जीवन को रच रहा है। वह निश्चित ही औपचारिक नहीं, उसकी आंतरिक बाध्यता है। भारत को ऐसे बहुमूल्य प्रवासी लेखकों को अपने सृजन-स्मरण में शामिल करना चाहिए ताकि भाषा की रचनात्मकता को व्यापक वैश्विक आयाम मिल सके।''

सन् 2008 में अंजना संधीर द्वारा संपादित 'प्रवासी आवाज़' अमेरिका के 44 कहानीकारों को अपने में समेटे हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रही है। अमेरिका की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि सारे लेखक फैले हुए हैं। अंजना जी ने सबको एक साथ हिंदी साहित्य जगत में प्रस्तुत किया। पहली बार अमेरिका के 44 कहानीकार पाठकों के सामने आए। उनका यह प्रयास बेहद प्रशंसनीय है।

'वर्तमान साहित्य', 'रचना समय', 'शब्द योग', 'साक्षात्कार', 'राजभाषा मंजूषा' एवं 'बुलंदप्रभा' पत्रिकाओं के प्रवासी साहित्य विशेषांकों में अमेरिका के कई रचनाकारों की रचनाएँ संकलित हैं।

राजी सेठ के शब्दों में, ''भाषा के घेरे से परे रहकर, अपनी भाषा की, देश से परे रहकर देश की, परिवेश से परे रहकर देश के रंग-रूप, तीज-त्यौहार, मिथक इतिहास को रचने की प्रेरणा इन्हें कौन देता होगा।

''चेतना में ऐसी ललक कैसे पैदा होती होगी ? जबकि वातावरण में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो ऐसे विकल्पों या ऐसी अंतर्धाराओं को पोषित कर सके।''

डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी लिखती हैं, ''ऐसे विरोधाभासों के बीच पनपता अमेरिकी हिंदी साहित्य और उस पर अपने ही देश से मिली उपेक्षा, प्रकाशकों एवं संपादकों की अस्वीकृतियाँ, डॉलर बटोरने की लालसाएँ, भला कहाँ पनपने देंगी— इस बंजर भूमि में उगी हुई लताओं को। उन्हें सतही और भ्रष्ट भाषा का साहित्य कहकर नकारा जाता है। हाँ, जो डॉलर-संस्कृति की दौड़ में समर्थ रहे, वे गाहे-बगाहे छपते रहे, पर सब की न वह समर्थ होती है, न अस्वीकृतियों में से राह बनाने की चाह। इस पर स्थानीय गुटों की भेड़िया चाल अलग।''

भारतीय जीवन दर्शन में पनपती पश्चिमी सोच अब विदेशों में रचे जा रहे साहित्य पर संपदकों, आलोचकों और पाठकों को सोचने और समझने पर मजबूर कर रही है। पश्चिमी जीवन मूल्यों और भारतीय जीवन-मूल्यों के बीच की खाई बहुत बड़ी थी जो स्वयं भारत में ही कम होती जा रही है। भारत में जिसे आत्म-प्रदर्शन और आत्म-विज्ञापन की संज्ञा दी जाती है, वह अमेरिका में अपने आपको उद्धरित करना कहलाता है। जीवन दर्शन का यह मूलभूत अंतर अमेरिकी हिंदी साहित्य का मूल कथ्य भी है। इस कथ्य को अब भारत में नकारा नहीं, समझा जा रहा है। भारत में तेजी से बदलते मूल्य, जीवन दर्शन और हिंदी साहित्य, अमेरिका की संस्कृति, स्वतंत्र सोच, उससे पनपे विचार और उन विचारों से रचित साहित्य को स्वीकारने लगें हैं। हिंदी के इस साहित्य का रंग-रूप, उसकी चेतना, संवेदना एवं सृजन प्रक्रिया भारत के हिंदी पाठकों के लिए एक नई वस्तु है, एक नए भावबोध एवं नए सरोकार का साहित्य है। एक नई व्याकुलता, बेचैनी तथा एक नए अस्तित्व बोध व आत्मबोध का साहित्य है जो हिंदी साहित्य को अपनी मौलिकता एवं नए साहित्य संसार से समृद्ध करता है। विदेशों में रहने वाले हिंदी के साहित्यकार अपने देश के प्रति अधिक सजग एवं समर्पित हैं। इस साहित्य में एक ऐसी भारतीयता है जो स्वदेश-परदेश के द्वंद्व से जन्म लेती है और एक नया परिवेश, एक नई जीवन-दृष्टि तथा जीवन जीने का नया सरोकार देती है। हिंदी की मुख्य धारा का यह साहित्य अंग है और अपनी पहचान भी रखता है।

डॉ. महीप सिंह ने ठीक कहा है, ''मुझे लगता है विदेशों में रचे जा रहे साहित्य के प्रति हमें अधिक जागरूक होना चाहिए और उच्च स्तर के हिंदी अध्ययन में, उन्हें विशिष्ट स्थान भी प्राप्त होना चाहिए।''

संदर्भ पुस्तकें—(डॉ. अंजना संधीर) विश्व मंच पर हिंदी : नए आयाम (विदेश मंत्रालय), प्रवासी आवाजा।

संदर्भ लेख—(डॉ. इला प्रसाद), अमेरिका के हिंदी कथाकार, (डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी) अमेरिका में हिंदी साहित्य।

☐

विश्व हिंदी दिवस 2010 के उपलक्ष्य में

विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा आयोजित

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी निबंध प्रतियोगिता के तीन विजेताओं के निबंध

''हिंदी कैसे बने संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा?''

प्रस्तुत हैं।

प्रथम स्थान : श्री नारायण कुमार

द्वितीय स्थान : डॉ. जयप्रकाश कर्दम

तृतीय स्थान : श्रीमती तीना जगू मोहेश

अंतर्राष्ट्रीय हिंदी निबंध प्रतियोगिता 2010 के विजेताओं के निबंध

हिंदी कैसे बने संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा

✍ नारायण कुमार

संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को मान्यता दिलाने का सवाल विगत 35-36 वर्षों से विश्व के हिंदी प्रेमियों के बीच चर्चा का विषय बना रहा है। नागपुर में सन् 1975 में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन से लेकर सन् 2007 में न्यूयार्क में संपन्न आँठवें विश्व हिंदी सम्मेलन तक संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए संकल्प पारित किए गए अथवा इस प्रस्ताव पर समर्थन व्यक्त किया गया।

10 जनवरी, 1975 में नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय महत्व को रेखांकित करते हुए भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि ''हिंदी विश्व की महान भाषाओं में एक है। यह करोड़ों की मातृभाषा है और करोंड़ों लोग ऐसे हैं जो इसे दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं। गंगा-यमुना के निकटवर्ती प्रदेशों से विकसित होकर इस भाषा का प्रयोग भारत के सुदूरवर्ती भागों तक प्रचलित है। इसका स्वर उन देशों में भी सुना जा सकता है जहाँ हमारे देश के लोग कई पीढ़ियों पहले गए और विदेशी विश्वद्यालयों में भी, जहां विद्वान लोग हिंदी का अध्ययन और अध्यापन करते हैं।''

इस अवसर पर मॉरीशस के प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने कहा कि मॉरीशस संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को उचित स्थान दिलाने में सदैव आगे रहेगा।''हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि ''हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्व है कि यह एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना, फीजी और अफ्रीका के कई देश इस बात का मान करते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ है। इसी सम्मेलन में मॉरीशस के प्रतिनिधि मंडल के नेता श्री दयानंद बसंत राय ने हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने का प्रस्ताव रखा था, जिसका समर्थन तत्कालीन सोवियत संघ (अब रूस) के प्रोफेसर चैलिशोव सहित अनेक देशों के प्रतिनिधियों ने किया था। इसके बाद मॉरीशस में आयोजित द्वितीय तथा चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलनों में नई दिल्ली के तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन, त्रिनिदाद में संपन्न पाँचवें हिंदी सम्मेलन, लंदन में आयोजित छठे विश्व हिंदी सम्मेलन में भी विश्व के सभी प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव का ज़ोरदार समर्थन किया। सन् 2003 में सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में ''यह प्रस्ताव पारित किया गया कि यह सम्मेलन इस बात पर खेद प्रकट करता है कि विश्व में बोली जानेवाली दूसरी बड़ी भाषा हिंदी, जिसका प्रयोग लगभग 180 देशों में 80 करोड़ लोगों के लिए किया जाता है, अभी तक संयुक्त राष्ट्र की भाषा नहीं बन सकी है। इस सम्मेलन का यह निश्चित मत है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बन जाने के उपरांत विश्व की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग अपनी भाषा के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों तथा क्रियाकलापों से अवगत होगा तथा हिंदी का प्रयोग करनेवाले देश भी वहाँ अपनी बात प्रभावी ढंग से रख सकेंगे।''

सन् 2007 में न्यूयार्क में संपन्न आठवे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन संयुक्त राष्ट्र संघ के सभागार में करके इस बात का संकेत दिया गया कि संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने का शुभारंभ हो गया है। उल्लेखनीय है कि इस सम्मेलन के उद्घाटन समारोह में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव श्री बान-के-मून भी उपस्थित हुए तथा उसी सभागार में संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए विचार सत्र का आयोजन हुआ।

भारतीय संसद् में भी समय-समय पर इस संबंध में प्रश्न उठाए जाते रहे हैं। केंद्रीय हिंदी समिति के दिनांक 6.09.2002 को संपन्न 26 वीं बैठक में भी मद संख्या 33 के अंतर्गत इस प्रश्न पर विचार-विमर्श किया गया और यह भावना व्यक्त की गई कि विदेश मंत्रालय इस विषय पर विदेश मंत्री की अध्यक्षता में एक समिति गठित करे जो इस संबंध में समग्र रूप से विचार कर उपयुक्त कार्यवाही का

निर्देश दे। तद्नुसार विदेश मंत्रालय ने एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया और इस विषय पर संयुक्त राष्ट्र में भारत के स्थायी मिशन और मंत्रालय के यू.एन. प्रभाग से जो जानकारी प्राप्त की, वह इस प्रकार है—

1. किसी नई भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा की कार्य संचालन नियमावली के नियम 51 में संशोधन की आवश्यकता होती है जिसके लिए महासभा के कुल सदस्य देशों में से आधे से अधिक का समर्थ जुटाना होगा। संयुक्त राष्ट्र के कुल बजट में भारत का अंशदान बहुत कम यानी 1.85 प्रतिशत है जबकि किसी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में शामिल करने पर संयुक्त राष्ट्र का नियमित व्यय बढ़ेगा, तद्नुसार इसके सदस्य राष्ट्रों को भी अपने अंशदान में वृद्धि करनी होगी। अत: अधिकांश सदस्य देश ऐसे प्रस्ताव का समर्थन करने के प्रति उदासीन रहते हैं।

2. इस प्रस्ताव के आर्थिक पक्षों पर भी गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा। दिसंबर 1998 के एक अनुमान के अनुसार इस मद पर प्रथम तीन वर्षों के लिए कुल 19.5 मिलियन अमरीकी डॉलर का प्रारंभिक व्यय भारत सरकार को वहन करना होगा। संयुक्त राष्ट्र में हमारा कुल नियमित अंशदान 3.86 मिलियन अमरीकी डॉलर प्रति वर्ष (1998 में) था। जो हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के संबंध में उस समय अनुमानित व्यय 6.5 मिलियन अमरीकी डॉलर प्रतिवर्ष से काफी अधिक हो जाएगा। इसके अतिरिक्त हाल के अनुमान के अनुसार यह व्यय अब 13 मिलियन अमरीकी डॉलर प्रति वर्ष होगा।

इस संबंध में एक प्रभावी रणनीति यह होगी कि संसार भर में रहनेवाले अनिवासी भारतीयों और भारतवंशियों से संपर्क कर उनसे अनुरोध किया जाए कि वे अपने-अपने देशों की सरकारों पर प्रभाव डालें ताकि वे संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए अपने देश का समर्थन प्रदान करें। उल्लेखनीय है कि विभिन्न देशों में रहनेवाले अनिवासी भारतीय अब राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और आर्थिक दृष्टि से इतने सशक्त हो गए हैं कि जिन देशों में वे रहते हैं वहाँ के राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनकी बातों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। मॉरीशस, गयाना, सूरीनाम, फीजी, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में तो भारतवंशी सत्ता के शिखर पर रहते हैं अथवा विरोधी पक्ष के नेता होते हैं। अतः इन देशों से समर्थन प्राप्त करना कठिन नहीं होगा। इसके अलावा सार्क के देश भी इस सवाल पर समर्थन देने से इंकार नहीं करेंगे।

3. वर्ष 1973 में पहले की पाँच आधिकारिक भाषाओं—अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी और चीनी के अलावा एक अन्य छठी भाषा—अरबी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने का संकल्प पारित किया गया था। परंतु अरबी भाषा की स्थिति हिंदी से भिन्न थी। संयुक्त राष्ट्र के 19 सदस्य राष्ट्रों की भाषा अरबी थी। उससे भी पहले अरबी भाषा, संयुक्त राष्ट्र के कुछ संगठनों, जैसे-यूनेस्को, एफ.ए.ओ. विश्व स्वास्थ्य संगठन और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कार्यकारी भाषाओं में से एक थी और साथ ही अफ्रीकी एकता संगठन की भी। संयुक्त राष्ट्र में सर्वाधिक अंशदान देनेवाले देशों में शामिल जापान और जर्मनी जैसे राष्ट्र भी इन्हीं जटिल प्रक्रियाओं के कारण अपनी-अपनी भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाए जाने के लिए बहुत उत्साहित नहीं रहे।

4. हम वर्तमान में भारतवंशी बहुल देशों में हिंदी शिक्षण को एक नीति के रूप में अधिकाधिक समर्थन और सहायता दे रहे हैं। साथ ही विश्व के अनेक क्षेत्रों में क्षेत्रीय हिंदी सम्मेलनों और विश्व हिंदी सम्मेलन के द्वारा हिंदी के प्रसार को प्रोत्साहन देने की नीति अपना रहे हैं। उम्मीद है कि इन प्रयासों में अनेक देशों में हिंदी का

वातावरण अधिक समृद्ध होगा और एक दिन हिंदी संयुक्त राष्ट्र के कई देशों की भाषा के रूप में जानी जा सकेगी तथा संयुक्त राष्ट्र में अपना स्थान बना सकेगी।

इस संबंध में उल्लेखनीय है कि सूरीनाम में 6 से 9 जून 2003 को आयोजित सातवे विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत के तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने यह घोषणा की कि भारत सरकार अपनी राष्ट्रभाषा को राजभाषा को संयुक्त राष्ट्र में स्थान दिलाने के लिए 100 करोड़ रुपए खर्च करने के लिए तैयार है। उन्होंने यह भी कहा कि प्रधानमंत्रीजी इस प्रस्ताव को लेकर संकल्पबद्ध हैं और इस संबंध में हिंदीप्रेमियों के मन में फैली निराशा को दूर करने के लिए सरकार द्वारा गहन प्रयास किए जाएँगे। इस सम्मेलन के बाद विदेश मंत्रालय में विदेश मंत्री जी की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समिति की बैठक 29.07.2003 को हुई जिसमें मंत्रालय की अपर सचिव श्रीमती निरूमा राव (जो इस समय विदेश सचिव) हैं ने अन्य बातों के अलावा यह बताया कि इस सवाल पर संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों का समर्थन इस बात पर भी निर्भर होगा कि संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को शामिल करने पर संयुक्त राष्ट्र के संपूर्ण वार्षिक आवृति व्यय में प्रत्येक देश का आनुपातिक अंशदान कितना बढ़ जाएगा।

इस विषय से संबंधित विभिन्न बिंदुओं पर समग्र विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष महोदय ने अनुपालन के लिए निम्नलिखित निर्देश दिए—

1. चूँकि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अधिसंख्या मिशनों की सहायता अपेक्षित होगी, इसलिए लगभग 150 लक्ष्य की एक सूची तैयार की जाए। इसमें उन देशों को वरीयता दी जाए जिनसे समर्थन के पर्याप्त आश्वासन की अपेक्षा की जा सकती है। सूची तैयार हो जाने पर अलग-अलग देश से द्विपक्षीय समर्थन माँगने के लिए मिशनों को समुचित अनुदेश भेजा जा सकता है।

2. हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाए जाने के मुद्दे को द्विपक्षीय वार्ताओं एवं बहुपक्षीय बैठकों (जैसे संयुक्त राष्ट्र महासभा) जैसी सभी उच्चस्तरीय बैठकों में चर्चा के एक विषय के रूप में उठाया जा सकता है।

3. संयुक्त राष्ट्र स्थित हमारे स्थायी मिशन से इस आशय का एक स्पष्ट मूल्यांकन बनाने और भेजने के लिए कहा जा सकता है कि इस प्रस्ताव पर पर्याप्त समर्थन जुटा पाने की वर्तमान में कितनी संभावनाएँ है वे इस संबंध में अपनाई जानेवाली कार्यविधि की एक रूपरेखा भी तैयार करें और यह भी बताएँ कि इस कार्य पर भारत को तथा अन्य सदस्य राष्ट्रों को संभावित रूप से कितनी राशि एकमुश्त खर्च करनी पड़ सकती है और कितनी राशि आवर्ती रूप से।

4. विश्व में बसे अनिवासी भारतीय समुदाय और भारतीय मूल के व्यक्तियों को इस बात के लिए एकजुट किया जा सकता है कि भारत के इस अनुरोध का समर्थन करने के लिए वे अपने-अपने देश की सरकारों में सकारात्मक माहौल बनाएँ।

5. कुछ देशों को चुनकर वहाँ स्थित मिशनों को कहा जा सकता है कि मीडिया का उपयोग करके निर्दिष्ट लेखों, अभिमत-संपादकीय आदि के माध्यम से हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की एक भाषा के रूप में प्रतिष्ठा कराने की दिशा में सुदृढ़ जमीन तैयार करें।

6. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को शामिल किए जाने के संबंध में भारत का पक्ष प्रस्तुत करने में लिए मंत्रालय एक पक्ष प्रस्तुतीकरण दस्तावेज तैयार करें। इसमें हिंदी की सापेक्ष महत्ता और प्रसार-शक्ति का स्पष्ट रूप से वर्णन किया जाना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो इसे एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया जा सकता है और लक्ष्य देशों में स्थित हमारे मिशनों एवं निवासी भारतीय संगठनों में पारिचालित किया जा सकता है। यह पुस्तिका संवाददाताओं की ब्रीफिंग के लिए उपयोगी हो सकती है।

चूँकि आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन उद्घाटन सत्र में 13 जुलाई, 2007 को भारत सरकार के प्रधान मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने अपने वीडियो संदेश में इस बात पर विशेष बल दिया था कि सात विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्तावों में एक यह भी था कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की एक आधिकारिक भाषा बनाई जाए। हम उस दिशा में भी कार्य कर रहे हैं और इस सम्मेलन में भी पारित प्रस्तावों पर तेजी से कार्रवाई की जाएगी, अत: भारत सरकार के लिए यह आवश्यक है कि इस दिशा में तत्परतापूर्वक सक्रिय कार्रवाई शुरू करे। इसके लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि भारत में इस सवाल पर भारत में जनमत तैयार किया जाए जो सरकार तथा विभिन्न राजनैतिक दलों को इस बात के लिए मजबूर करे कि वे संसद् में तथा अन्यत्र इस

मुद्दे पर सकारात्मक तथा प्रभावित निर्णय लें जिससे हिंदी शीघ्र संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बन सके।

इस राजनीतिक पहल के बाद भारत सरकार द्वारा नए सिरे से राजनयिक पहल अपेक्षित होगी। संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा की कार्यनियमावली में संशोधन के लिए इसके वर्तमान 192 में आधे से भी अधिक सदस्य देशों, यानी 96 से अधिक सदस्य देशों का समर्थन प्राप्त करना होगा। भारत के विदेश स्थित दूतावासों को निर्देश दिया जाए कि वे जिन देशों में कार्यरत हैं उनका समर्थन प्राप्त करें तथा भारत स्थित दूतावासों से यह अनुरोध किया जाए कि उनका देश इस प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र में भारत के प्रस्ताव का समर्थन करें।

विदेश मंत्रालय इसके लिए एक तथ्यपरक अनुसमर्थन दस्तावेज तैयार कराकर सभी विदेश मिशनों को तथा देश-विदेश स्थित मीडिया संगठनों को भेजे ताकि उन्हें यह विश्वास हो सके कि विश्व में चीनी भाषा के बाद संसार की सबसे बड़ी दूसरी भाषा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाया जाना न सिर्फ आवश्यक बल्कि अनिवार्य भी है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के भारत स्थित स्थाई मिशन में एक उच्चस्तरीय संगठन गठित किया जाए जो विभिन्न देशों से इसके लिए समर्थन प्राप्त करे उस संगठन में हिंदी से संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाओं में तथा उन भाषाओं से हिंदी में अनुवाद एवं इंटरप्रेटेशन के लिए सुयोग्य एवं दक्ष अनुवादक तथा दुभाषिए नियुक्त किए जाएँ और ऐसे अनुवादकों तथा दुभाषिओं के लिए भारत में विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।

इसके आर्थिक पक्ष यानी वर्षों के लिए प्रारंभिक व्यय तथा बाद के आवर्ती खर्च, अनुवादकों एवं दुभाषिए के वेतन तथा संयुक्त राष्ट्रभवन में संरचनात्मक परिवर्तन, जैसे कि एक नया इंटरप्रेटेशन बूथ बनवाने के लिए खर्च का आकलन किया जाए और इसके लिए आगामी वर्ष से भारत सरकार के वजट में क्रमिक रूप से समुचित प्रावधान किया जाए।

इस संबंध में एक प्रभावी रणनीति यह होगी कि संसार भर में रहनेवाले अनिवासी भारतीयों और भारतवंशियों से संपर्क कर उनसे अनुरोध किया जाए कि वे अपने-अपने देशों की सरकारों पर प्रभाव डालें ताकि वे संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए अपने देश का समर्थन प्रदान करें। उल्लेखनीय है कि विभिन्न देशों में रहनेवाले अनिवासी भारतीय अब राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और आर्थिक दृष्टि से इतने सशक्त हो गए हैं कि जिन देशों में वे रहते हैं वहाँ के राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनकी बातों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। मॉरीशस, गयाना, सूरीनाम, फीजी, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में तो भारतवंशी सत्ता के शिखर पर रहते हैं अथवा विरोधी पक्ष के नेता होते हैं। अत: इन देशों से समर्थन प्राप्त करना कठिन नहीं होगा। इसके अलावा सार्क के देश भी इस सवाल पर समर्थन देने से इंकार नहीं करेंगे।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना सन् 1945 में संयुक्त राज्य अमरीका के सैनफ्रासिस्को शहर में हुआ था जिसके घोषणा-पत्र पर 26 जून, 1945 को 51 सदस्य राष्ट्रों ने हस्ताक्षर कर अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी और चीनी भाषाओं को इस संगठन की आधिकारिक भाषा बनाया तथा सिर्फ अंग्रेज़ी और फ्रेंच कार्य संचालन की भाषा बनाई गई बाद में रूसी और स्पैनिश को भी कार्य संचालन की भाषा बनने का सौभाग्य मिला।

भारत गुटनिरपेक्ष आंदोलन का नेता रहा है। अत: इस समूह के सदस्य से भी आसानी से समर्थन प्राप्त किया जा सकता है। भारत अभी संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का स्थाई सदस्य भी भारी बहुमत से चुना गया है। अत: अब हम सुरक्षा परिषद के सदस्यों से निकट संपर्क स्थापित कर हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए उनका सबल एवं संपूर्ण समर्थन प्राप्त कर सकते हैं।

भारत ने कुछ वर्षों से सुरक्षा परिषद में अपनी स्थाई सदस्यता के लिए व्यापक अभियान शुरू कर दिया है जिसका अधिकांश देश समर्थन कर रहे हैं। यह अत्यंत उचित अवसर है कि भारत सुरक्षा

परिषद की सदस्यता के लिए अपनी दावेदारी के साथ–साथ हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का प्रस्ताव विश्व के विभिन्न देशों के समक्ष रखे ताकि हमें दोनों लाभ एक साथ मिल जाएँ। लेकिन यदि किन्ही कारणों से स्थायी सदस्यता मिलने में विलंब होता है तो संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाए जाने में विलंब नहीं होना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना सन् 1945 में संयुक्त राज्य अमरीका के सैनफ्रासिस्को शहर में हुआ था जिसके घोषणा–पत्र पर 26 जून, 1945 को 51 सदस्य राष्ट्रों ने हस्ताक्षर कर अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी और चीनी भाषाओं को इस संगठन की आधिकारिक भाषा बनाया तथा सिर्फ अंग्रेज़ी और फ्रेंच कार्य संचालन की भाषा बनाई गई बाद में रूसी और स्पैनिश को भी कार्य संचालन की भाषा बनने का सौभाग्य मिला और 18 दिसंबर 1973 को यह निर्णय लिया गया कि

(क) चीनी भाषा को भी कार्य संचालन की भाषा के रुप में शामिल किया जाए।

(ख) अरबी भाषा को महासभा तथा इसकी मुख्य समितियों की आधिकारिक एवं कार्य संचालन की भाषा बनाई जाए।

अब संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों की संख्या सन् 2010 में 51 से बढ़कर 192 हो गई है। अत: चीनी के बाद संसार की सबसे बड़ी भाषा हिंदी को संयुक्त संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए संसार भर में एक व्यापक आंदोलन और अभियान शुरू किया जाए जिसके बौद्धिक दायित्व विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस को सौंपा जाए तथा राजनैतिक एवं राजनयिक दायित्व स्वत: भारत सरकार ले। इसके लिए भारत सरकार अनिवासी भारतीयों, भारतवंशियों, भारत के पड़ोसी देशों तथा गुटनिरपेक्ष देशों से सहयोग प्राप्त कर सकता है।

भारत अब राजनैतिक, नाभिकीय एवं आर्थिक दृष्टि से विश्व का एक सम्मानित एवं सशक्त राष्ट्र बन गया है वह संसार के विकसित और शक्तिशाली देशों से भी इस मुद्दे पर समर्थन आसानी से प्राप्त कर सकता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ में व्यापक सुधार लाने के लिए विगत अनेक वर्षों से कार्य चल रहा है। हमें विश्वास है कि उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर हिंदी को शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनने का न्यायोचित अधिकार मिलेगा, इसके लिए भारत में तथा विदेशों में भी नए सिरे से एक सशक्त एवं व्यापक अभियान शुरू करने की आवश्यकता है। हिंदी बिना किसी विशेष प्रयास के ही भारतवंशियों की संपर्क भाषा बन गई है और विश्व–भाषा बनने की दिशा में तेजी से अग्रसर हो रही, अत: विश्व का सबसे बड़ा संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ इसे समुचित स्थान देगा, ऐसी हमारी आशा है और आकांक्षा भी।

A-154, Sector-46
Noida-201303
Uttar Pradesh

□

साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है।

—प्रेमचंद

अध्ययन उल्लास का और योग्यता का कारण बनता है।

—बेकन

आत्मविश्वास सरीखा दूसरा मित्र नहीं है। यह भावी उन्नति की प्रथम सीढ़ी है।

—स्वामी विवेकानंद

26

हिंदी कैसे बने संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा

✍ **जय प्रकाश कर्दम**

यूँ तो हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने की माँग एक लंबे अरसे से विभिन्न मंचों से उठाई जाती रही है, पर सरकार के स्तर पर इस दिशा में सक्रियता पिछले एक दशक से बढ़ी है। भारत सरकार द्वारा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए सघन प्रयास किए जा रहे हैं। इस प्रयास को व्यवस्थित रूप से आगे बढ़ाने के लिए विदेश राज्य मंत्री की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति गठित की गई है तथा कई सौ करोड़ रुपए की राशि हिंदी के अभियान के लिए स्वीकृत की है। जिन देशों में हिंदी बोली और लिखी-पढ़ी जाती है, उन देशों का एक संगठन बनाने पर भी भारत सरकार सक्रियता से विचार कर रही है। अधिकांश भारतीय मिशनों को हिंदी सॉफ्टवेयर, शब्दकोश और अन्य शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराई गई है तथा मिशनों के माध्यम से विश्व के अनेक देशों में हिंदी पुस्तकों, पत्रिकाओं और शिक्षण सामग्री का वितरण किया जाता है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के भारत के अभियान और वैश्विक स्तर पर एक शक्ति के रूप में उभार का यह परिणाम है कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा हिंदी में एक साप्ताहिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है, जो इसकी वेबसाइट पर उपलब्ध है और ऑल इंडिया रेडियो पर भी प्रसारित होता है। इसके अलावा हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ के एक घटक यूनेस्को की आम सभा की आधिकारिक भाषाओं में से एक है। यहाँ पर इटेलियन और पुर्तगीज हिंदी को टक्कर दे रही हैं। किंतु विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसंख्यावाला, विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र, परमाणु शक्ति संपन्न तथा अमेरिका, चीन, जापान के बाद विश्व की सबसे बड़ी अर्थ-व्यवस्था वाला देश होने के कारण और विश्व के प्रत्येक भूभाग में भारतीयों की सशक्त उपस्थिति के कारण हिंदी की स्थिति अन्य भाषाओं की अपेक्षा बेहतर है। किंतु इतना पर्याप्त नहीं है। अंतिम लक्ष्य हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सभी आधिकारिक भाषाएँ उसके स्थायी सदस्यों की भाषाएँ हैं और कहीं-न-कहीं ये उन राष्ट्रों की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शक्ति और प्रभाव की द्योतक हैं। यदि भारत भी संयुक्त राष्ट्र संघ का स्थायी सदस्य बन जाता है तो हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने की मांग को बहुत बल मिलेगा। संयुक्त राष्ट्र संघ की सभी आधिकारिक भाषाएँ कहीं-न-कहीं संबंधित राष्ट्रों की शक्ति को भी प्रदर्शित करती हैं। आज विश्व पटल पर भारत की पहचान एक बड़ी, तेज़ी से विकसित और मज़बूत अर्थ-व्यवस्था के साथ एक वैश्विक शक्ति की है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता और हिंदी को राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का तात्पर्य संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्रों द्वारा भारत को औपचारिक रूप से एक वैश्विक शक्ति के रूप में स्वीकारना होगा।

जहाँ तक भारत का संबंध है, भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थायी सदस्यता भी चाहता है और हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा भी बनवाना चाहता है। लेकिन इन दोनों में भारत की प्राथमिकता निश्चित रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थायी सदस्यता प्राप्त करना है। भारत इसके लिए विश्व स्तर पर कूटनीतिक प्रयास कर रहा है। अपने इस प्रयास में भारत विदेशों में रह रहे या अनिवासी भारतीयों से भी सहयोग लेने का पक्षधर है। भारत के संयुक्त राष्ट्र संघ का स्थायी सदस्य बनने पर दो बातें सीधे-सीधे हिंदी के पक्ष में जाएँगी। पहली यह कि भारत के अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापित हो जाने से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसकी बात में वज़न आ जाएगा, और भारत द्वारा हिंदी के पक्ष में बोले जाने पर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा गौर से सुना जाएगा। दूसरे, संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता पाने की दौड़ में भारत के साथ जापान, जर्मनी और ब्राजील सहित कई अन्य देश भी शामिल हैं। इनमें से जो देश भी सुरक्षा परिषद की स्थायी

सदस्यता प्राप्त करने में सफल होगा वह अपने देश की भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए भी निश्चित रूप से प्रयास करेगा और तब उसकी आवाज में भी दम होगा। कई देश संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता के विरोधी हैं। इसलिए भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों का आवश्यक समर्थन जुटाने के लिए कड़ी मशक्कत करनी पड़ रही है। भारत को स्थायी सदस्यता के लिए समर्थन मिल जाने के बाद हिंदी को आधिकारिक भाषा बनवाने के लिए आवश्यक समर्थन जुटाने में अधिक दिक्कत नहीं होगी।

हिंदी के अलावा अन्य कई भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने की माँग ज़ोर शोर से उठाई जा रही है। हिंदी की तुलना में इन भाषाओं को बोलने और इनका प्रयोग करनेवालों की संख्या बहुत कम है। जहाँ दूसरी भाषाएँ कुछ देशों तक सीमित हैं, हिंदी विश्व के सभी महाद्वीपों के अधिकांश देशों में व्यापक स्तर पर बोली, पढ़ी और लिखी जाती है। हिंदी के पक्ष में दूसरी बात यह जाती है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की छह आधिकारिक भाषाओं में चार यूरोपीय भाषाएँ (अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पेनिश, रसियन) हैं। विशाल एशिया महाद्वीप से चीनी एकमात्र आधिकारिक भाषा है। छठी भाषा अरेबिक हैं। विशाल एशिया महाद्वीप से केवल एक भाषा का संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा होना असंतुलित और अपर्याप्त है। सातवीं भाषा एशियाई अथवा अफ्रीकी हो, इस बात की माँग भी उठ रही है। यह दावा मजबूत बनता है। इससे हिंदी को भी बल मिलता है। क्योंकि एशियाई भाषा के नाम पर बहुत से एशियाई देशों का समर्थन जुटाने में आसानी हो सकती है। सभी देशों के दूसरे देशों के साथ अलग-अलग तरह के राजनयिक संबंध और समीकरण हैं, जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं आधिकारिक भाषा बनने की दौड़ में शामिल सभी भाषाओं की संभावनाओं को न्यूनाधिक रूप से प्रभावित करते हैं।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के रास्ते में वित्तीय, प्रक्रियात्मक और कानूनी कई प्रकार की बाधाएँ हैं। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने की अभी तक केवल आवाज़ उठाई गई है, इस संबंध में कोई औपचारिक प्रस्ताव राष्ट्र संघ में प्रस्तुत नहीं किया गया है। सबसे पहले भारत सरकार को इस संबंध में एक औपचारिक प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र में प्रस्तुत करना होगा। अगली प्रक्रिया के रूप में कामकाज की आधिकारिक भाषाओं संबंधी नियम में संशोधन करने के लिए आम-सभा द्वारा इस प्रस्ताव पर चर्चा कर 192 सदस्य देशों के बहुमत से हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने का एक संकल्प पारित करना होगा। इसके पश्चात् प्रस्तावक देश के रूप में भारत को भाषांतरण, अनुवाद, मुद्रण और समस्त दस्तावेज़ों की प्रतियाँ बनाने आदि पर होनेवाले अतिरिक्त खर्च की पूर्ति के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने होंगे, जिस पर मोटे तौर पर प्रति साल लगभग 1.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर का व्यय होने का अनुमान है। इसके अलावा किसी भी भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने पर संयुक्त राष्ट्र संघ के खर्च में काफी वृद्धि होगी, जिसकी प्रतिपूर्ति सभी सदस्य देशों द्वारा दिए जानेवाले अंशदान में अनुपातिक वृद्धि करके की जानी होगी। बहुत से देश वित्तीय बोझ डालनेवाले इस तरह के प्रस्तावों का समर्थन करने के प्रति प्राय: उदासीन

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने की दिशा में सबसे आवश्यक बात यह है कि भारत और मॉरिशस के नागरिक और सरकारी अधिकारी देश में और देश से बाहर विदेशियों के साथ संपर्क में अधिक-से-अधिक हिंदी भाषा का प्रयोग करें। हवाईअड्डा, रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड से लेकर पर्यटन और अन्य सभी सार्वजनिक स्थलों पर हिंदी लिखी हुई भी दिखाई देनी चाहिए। हिंदी के व्यापक स्तर पर दिखाई और सुनाई देने से वैश्विक स्तर पर हिंदी के पक्ष में एक सकारात्मक संदेश जाएगा, और यह हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के अभियान को निश्चित रूप से बल प्रदान करेगा।

रहते हैं। यही वह पेच है जिसके चलते हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने का विरोध बहुत से देश शायद नहीं करें, किंतु इस कारण से उनके अंशदान पर पड़नेवाले अतिरिक्त बोझ के मद्देनज़र इस प्रस्ताव के प्रति उनके उदासीन रहने की संभावना है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, भारत सरकार द्वारा विभिन्न मंचों से यह बात दोहराई गई है कि वह हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनने में अनिवार्य आर्थिक बजट उपलब्ध कराएगी। इससे यह आश्वस्ति मिलती है कि भारत सरकार हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के प्रति पूरी तैयारी और तत्परता से जुटी है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के मामले में मॉरिशिस भारत का साझीदार है। दोनों देशों के संयुक्त तत्वावधान में मॉरिशिस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना इसी भागीदारी का परिणाम है। मॉरिशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना से हिंदी प्रेमी और हिंदी समर्थक देश के रूप में विश्व स्तर पर मॉरिशस की एक पहचान बनी है। मॉरिशस संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता का भी प्रबल समर्थक है।

इसलिए हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए मॉरिशिस को अपने मित्र और प्रभाव वाले देशों का समर्थन जुटाने के लिए प्रयास करना चाहिए। इसी तरह का प्रयास फिजी, सूरीनाम आदि देशों द्वारा भी किया जाना चाहिए। भारत और मॉरिशिस को इसे एक साझे अभियान के रूप में लेते हुए आगे बढ़ना होगा। मित्र और अनुकूल देशों की सरकारों का समर्थन जुटाने के साथ-साथ विदेशों में रह रहे अपने नागरिकों को भी इस मामले में संवेदनशील बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि वे अपने प्रवास के देशों में अपने संबंधों और प्रभाव का उपयोग कर हिंदी के प्रति समर्थन जुटाने में अपनी योगदान दे सकें।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने से पहले आवश्यक होगा कि हिंदी को भारतवर्ष की भाषा बनाया जाए। हिंदी भारत सरकार की संवैधानिक राजभाषा है, जिसकी अपेक्षा है कि समस्त सरकारी कामकाज हिंदी में हो। किंतु यथार्थ इससे भिन्न है। भारत सरकार के कार्यालयों में कामकाज हिंदी में नहीं होता, अंग्रेज़ी में होता है। भारत के नागरिक और सरकारी अधिकारियों द्वारा विदेश जाने पर और अपने देश के अंदर भी विदेशियों के साथ अंग्रेज़ी में ही संवाद किया जाता है। जबकि यह हिंदी में होना चाहिए। चीन, जापान, रूस इन सब देशों के मंत्री, राष्ट्राध्यक्ष विदेश जाने पर अपनी भाषा में बोलते हैं, दुभाषिए उनका अनुवाद करते हैं। जबकि भारत के मंत्री और नेता विदेश जाने पर अपनी भाषा में नहीं बोलते। यहाँ तक कि संसद् के अंदर भी अधिकांश सदस्य अंग्रेज़ी में बोलते हैं। कोई भी भाषा बाहर तब सम्मान पाती है, जब उसे अपने घर में सम्मान मिलता है, जब उसके अपने लोग उसे सम्मान दें, उसे अपनाएँ। जो हिंदी के साथ हो रहा है। जब तक हिंदी में बोलने, लिखने,पढ़ने यानी पारस्परिक और सार्वजनिक व्यवहार में हिंदी का प्रयोग करने में गर्व का अनुभव नहीं किया जाएगा तब तक हिंदी सम्मान नहीं पा सकेगी। जब तक हिंदी को दिल से स्वीकार कर उसे सम्मान नहीं दिया जाएगा तब तक हिंदी को विश्व मंच पर प्रतिष्ठा दिलाने की आवाज़ नैतिक बल के अभाव में दूर तक अपना प्रभाव नहीं छोड़ सकेगी। और जब आवाज़ अपना प्रभाव नहीं छोड़ेगी तब तक समर्थन नहीं जुटा सकती।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने की दिशा में सबसे आवश्यक बात यह है कि भारत और मॉरिशिस के नागरिक और सरकारी अधिकारी देश में और देश से बाहर विदेशियों के साथ संपर्क में अधिक-से-अधिक हिंदी भाषा का प्रयोग करें। हवाईअड्डा, रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड से लेकर पर्यटन और अन्य सभी सार्वजनिक स्थलों पर हिंदी लिखी हुई भी दिखाई देनी चाहिए। हिंदी के व्यापक स्तर पर दिखाई और सुनाई देने से वैश्विक स्तर पर हिंदी के पक्ष में एक सकारात्मक संदेश जाएगा, और यह हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के अभियान को निश्चित रूप से बल प्रदान करेगा। यह देखा गया है कि भारत के कुछ मंत्रियों और अन्य नेताओं द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासभा में तथा संयुक्त राष्ट्र के अन्य मंचों पर हिंदी में भाषण दिए जाने से विश्व का ध्यान हिंदी की ओर आकृष्ट हुआ है, और इससे हिंदी के सम्मान में वृद्धि हुई है। जुलाई 2007 में न्यूयॉर्क में हुए आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन के उद्घाटन सत्र का आयोजन संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय में किया जाना और संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बान की मून द्वारा इस सम्मेलन का उद्घाटन किया जाना हिंदी के पक्ष में एक बड़ी उपलब्धि है।

East of Lonney Road
Delhi -110093
□

27

हिंदी कैसे बने संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा

✍ श्रीमती तीना जगु मोहेश

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत विजेता देशों ने अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष में हस्तक्षेप करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र की स्थापना 24 अक्टूबर, 1945 में की। स्थापना के समय, केवल चार राजभाषाएँ स्वीकृत की गई थी।

- चीनी
- अंग्रेज़ी
- फ्रांसीसी
- रूसी

और 1973 में अरबी और स्पेनी को भी सम्मिलित किया गया। इनमें से केवल दो भाषाओं को संचालन भाषा माना जाता है (अंग्रेज़ी और फ्रांसीसी)। सन् 1999 में मशीन ट्रांसलेशन शिखर बैठक में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने जो भाषाई आँकड़े प्रस्तुत किए थे, उनके अनुसार विश्व में चीनी भाषा बोलनेवालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय तथा अंग्रेज़ी का तृतीय है। विदेशों में चालीस से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही हैं। तो प्रश्न यह उठता है कि इतनी लोकप्रियता प्राप्त करने पर भी संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी आधिकारिक भाषा क्यों नहीं बन पाई?

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की राष्ट्रभाषा के प्रति जागरूकता पैदा करने, समय-समय पर हिंदी की विकास यात्रा का आकलन करने, लेखक व पाठक दोनों के स्तर पर हिंदी साहित्य के प्रति सरोकारों को और दृढ़ करने, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने तथा हिंदी के प्रति प्रवासी भारतीयों के भावुकतापूर्ण व महत्त्वपूर्ण रिश्ते को और गहराई व मान्यता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् 1975 में विश्व हिंदी सम्मेलनों की शृंखला शुरू हुई। इसमें पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्ताव का पहला मंतव्य रहा कि संयुक्त संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाया जाए। तब से अब तक आठ विश्व हिंदी सम्मेलन और हो चुके हैं—मॉरीशस, नई दिल्ली, त्रिनिडाड व टोबेगो, लंदन, सूरीनाम और न्यूयॉर्क में। चूँकि न्यूयॉर्क संयुक्त राष्ट्र का शहर है, इसलिए आठवां विश्व सम्मेलन का महत्त्व काफ़ी अधिक था। वहाँ पर भी हिंदीभाषियों और हिंदीप्रेमियों के मन में अपनी भाषा को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने की महत्त्वाकांक्षा रही।

किसी राष्ट्र की भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्वीकृति मिलना गौरव की बात है, एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। राष्ट्र संघ की भाषा बनने से वह अन्य आधिकारिक भाषाओं के संपर्क में आती है, परिष्कृत तथा समृद्ध होती है, उसका सर्वांगीण विकास होता है। यह तो एक निर्विवाद सत्य है कि भाषावैज्ञानिक दृष्टि से देवनागरी लिपि की वर्णमाला विश्व की सभी वर्णमाला लिपियों की अपेक्षा निश्चय ही पूर्णतर है। देवनागरी की वर्णमाला एक अत्यंत तर्कपूर्ण ध्वन्यात्मक क्रम (Phonetic Order) में व्यवस्थित है। श्री रविशंकर शुक्ल का कथन:

''देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।''

यह ध्वन्यात्मक क्रम इतना तर्कपूर्ण है कि अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक संघ (IPA) ने अंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला के निर्माण के लिये मामूली परिवर्तनों के साथ इसी क्रम को अंगीकार कर लिया। परिणामत: अन्य भाषा की तुलना में हिंदी भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ में आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार करना तर्कसम्मत है।

वैज्ञानिक भाषा होने के साथ-ही-साथ हिंदी भाषा मानव मूल्य की बातों को भी अंकित करती है। उदाहरणार्थ, देवनागरी लिपि की वर्णमाला के व्यंजनों में 'क' से तात्पर्य है काम, 'ख'-खाना, 'ग'-गाना, 'घ'-घर। इसमें मानव के जीवन का उद्देश्य तथा उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की ओर संकेत करता है। संस्कृत भाषा से पनपी इस दैवी देन का वैश्वीकरण करना हमारा धर्म है। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी भाषा को आधिकारिक भाषा का दर्जा देते हुए संपूर्ण विश्व में मानव मूल्यों का फैलाव तथा आधुनिक हिंसा, व्यभिचार तथा समकालीन सामाजिक विपदाओं से मुक्ति दिला सकते हैं। साथ ही साथ 'वसुधैव

कुटुंब' सूक्ति को सिद्ध करती है। सारे संसार को एक करके हिंदी भाषा एकता लाने में भी सक्षम है। जिस प्रकार टी.माधवराव कहते हैं—

''भारतीय एकता के लक्ष्य का साधन हिंदी भाषा का प्रचार है।''

भाषा और संस्कृति में अटूट संबंध है। भाषा के द्वारा ही देश की संस्कृति का विस्तार किया जा सकता है। कमलापति त्रिपाठी के अनुसार—

''हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।''

भारत की संस्कृति तो सबसे निराली है। संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति अपनी सर्वांगीणता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अलग खड़ी होती है। कई हजार वर्ष तक काल के क्रूर थपेडें सहन करते हुए भी भारतीय संस्कृति विश्व के इतिहास में आज भी जीवित है। इसीलिए ऐसी संस्कृति को बनाए रखना भारतीयों का उत्तरदायित्व है। हिंदी भाषा को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनने से हिंदी संस्कृति का भी उत्थान हो सकता है।

लेकिन ध्यातव्य बात तो यह है कि राष्ट्र संघ की सभी भाषाएँ हिंदी की तुलना में अधिक परिपुष्ट हैं। उदाहरणत : अमेरिका में चीनी भाषा 543 कॉलेजों में, अरबी 264 कॉलेजों में,जबकि हिंदी केवल 51 कॉलेजों में ही पढ़ाई जाती है। इसीलिए जन साधारण तक आधुनिक ज्ञान पहुँचाने के लिए हिंदी के प्रयोग की अनिवार्यता, हिंदी की परम सामर्थ्य बन सकती है। हमें हिंदी को संपूर्ण भाषा बनाना होगा। बेरिस क्ल्यएव ने भी यही बात कही है:

''हिंदी को तुरंत शिक्षा का माध्यम बनाइए।''

हमें हिंदी को जनता तक आधुनिक ज्ञान-विज्ञान पहुँचानेवाली भाषा के रूप में प्रस्तुत करना होगा, तदर्थ उसे विकसित करना होगा। सौभाग्यवश, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली भारत की सभी भाषाओं के लिए उपयोगी है। इसके प्रयोग से सभी भाषाएँ लाभान्वित होंगी, वे एक दूसरे के समीप आएगी। इस सामीप्य से हमें पुन: अपनी सामासिक संस्कृति का बोध होगा, हिंदी का सांस्कृतिक महत्त्व पुन: उजागर होगा। वंचित वर्ग के सबलीकरण द्वारा भारत का विशाल वर्ग हिंदी का प्रबल समर्थक बन जाएगा। हिंदी का आधुनिकीकरण अन्य भारतीय भाषाओं के आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त करेगा। फलत: उसे राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनने में विलंब नहीं होगा।

अभी तक हिंदी की पूजा की गई है, उसे भारत माता के माथे के बिंदी कहा गया है। हिंदी को भारत की सांस्कृतिक भाषा बताया गया है। परंतु हिंदी को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की वाहक भाषा के रूप में नहीं प्रस्तुत किया गया। अभी तक हिंदी को राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने का दायित्व हिंदी साहित्यकारों के कंधों पर रहा है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि हिंदी का परंपरागत साहित्य तो समृद्ध है परन्तु, हिंदी में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, सभी प्रकार की कारीगरी आदि विषयों में अच्छे साहित्य या अध्ययन सामग्री का अभाव है। जब तक हम हिंदी को अच्छी रोजी-रोटी की भाषा नहीं बनाते, तब तक देश का युवा वर्ग उसकी ओर आकृष्ट नहीं होगा। हिंदी साहित्य से पृथक अन्य विषयों पर अगर हिंदी भाषा हावी हो जाए तो नि:संदेह सामान्य रूप से सभी वर्ग के लोग हिंदी भाषा का प्रयोग करेंगे।

किसी राष्ट्र की भाषा को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्वीकृति मिलना गौरव की बात है, एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। राष्ट्र संघ की भाषा बनने से वह अन्य आधिकारिक भाषाओं के संपर्क में आती है, परिष्कृत तथा समृद्ध होती है, उसका सर्वांगीण विकास होता है। यह तो एक निर्विवाद सत्य है कि भाषावैज्ञानिक दृष्टि से देवनागरी लिपि की वर्णमाला विश्व की सभी वर्णमाला लिपियों की अपेक्षा निश्चय ही पूर्णतर है। देवनागरी की वर्णमाला एक अत्यंत तर्कपूर्ण ध्वन्यात्मक क्रम (Phonetic Order) में व्यवस्थित है। श्री रविशंकर शुक्ल का कथन:

प्राधिकार में प्रावधान है कि राष्ट्र संघ की जनरल असेंबली के दो-तिहाई सदस्यों के अनुमोदन द्वारा किसी अन्य भाषा को भी राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाया जा सकता है। इसके अनुसार सन्

1971–72 के आसपास अरबी को राष्ट्र संघ की छठी आधिकारिक भाषा बनाया गया। उस समय जनरल असेंबली के 191 सदस्य हैं, अतः हिंदी को राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के लिए 128 देशों के अनुमोदन की आवश्यकता है। भारत के लिए सदस्य देशों के बहुमत का समर्थन जुटाना आसान काम नहीं है। अरबी भाषा को आधिकारिक भाषा की स्वीकृति तो इसीलिए मिली क्योंकि संसार भर के देश उसके पेट्रोलियम पर निर्भर है। भारत सरकार को इस पहलू पर ध्यान देना चाहिए कि सदस्य देशों का समर्थन जुटाने के लिए किन कूटनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रयासों की आवश्यकता है। भारत के विदेश मंत्री एस.एम कृष्णा ने राज्य सभा में एक पूरक प्रश्न का जवाब देते हुए कहा,

''हम संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को एक आधिकारिक भाषा बनाने के लिए सक्रिय कदम उठा रहे हैं। एक उच्चस्तरीय समिति इस मामले को देख रही है।''

सतत प्रयास के कारण ही संयुक्त राष्ट्र में हिंदी पर एक साप्ताहिक कार्यक्रम सुनिश्चित हो सका। इसके अलावा संयुक्त राष्ट्र रेडियो की वेबसाइट पर भी हिंदी सामग्री उपलब्ध कराई जा रही है।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के प्रयास में वित्तीय बाधाएं आने की बात को अस्वीकार करते हुए विदेश मंत्री एस.एम.कृष्णा ने कहा कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में एक आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाने के लिए वे अन्य देशों के साथ पैरवी कर रहे हैं। उन्होंने इस मुद्दे पर दबाव बनाने के लिए अनिवासी भारतीय समुदाय के समर्थन की माँग की।

उन्होंने कहा,

''यह व्यय का सवाल नहीं है। हमें संख्या में बहुमत प्राप्त करना होगा।''

एक भाषा को आधिकारिक स्वीकार करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ को अनुवादक, इंटरप्रेटर एवं अन्य स्टाफ की नियुक्ति, प्रशिक्षण तथा कंप्यूटर सॉफ्टवेयर और संचार नेटवर्क के संस्थापन पर खर्च करना पड़ेगा। लेकिन आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में 14 जुलाई, 2007 को सी–डैक, एन .आई.सी., टी.डी.आई.एल. जैसी तकनीकी संस्थाओं के सहयोग से हिंदी चिट्ठाकार एवं तकनीकीविद् बालेंदु शर्मा दाधीच के निर्देशन में लगाई गई भाषा प्रौद्योगिकी संबंधी प्रदर्शनी में कई सॉफ्टवेयर रखे गए। इनमें हिंदी में ध्वनि पहचान (स्पीच रिकॉग्रिशन) और स्पीच–टू–टेक्स्ट (ध्वनि से पाठ में रूपांतरण) के लिए श्रुतलेखन, मशीनी अनुवाद के लिए यंत्र, हिंदी एवं अंग्रेज़ी में परस्पर द्विभाषी खोज के लिए अन्वेषक तथा कंप्यूटर के ज़रिए हिंदी सीखने के लिए 'लीला' तथा ऐसे ही कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण नए सॉफ्टवेयर परिष्कृत रूप में शामिल हैं, जिनके ज़रिए हिंदी के प्रयोग को तेजी से आगे बढ़ाने में बहुत सहायता मिलने की आशा है। कंप्यूटरीकरण और इन अत्याधुनिक भाषा संबंधी सॉफ्टवेयरों के सफल प्रयोग से यदि भारत में हिंदी को सच्चे अर्थों में आधिकारिक भाषा बनाने में सफलता मिल जाती है, तब संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाए जाने की पहल करना युक्तिसंगत और सार्थक भी लगेगा।

हिंदी एक अग्रणी अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्य है। विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली दो–तीन भाषाओं में इसकी गणना है। हिंदी एक दर्जन से अधिक देशों में बहुसंख्यक समाज की भाषा है। इसके बोलनेवाले और इसे समझनेवाले दुनिया के पाँचों महाद्वीपों में फैले हुए हैं। जर्मनी, जापान और दक्षिण अफ्रिका जैसे दर्जनों देशों में हिंदी विश्वविद्यालय स्तर पर पढ़ाई जा रही है। हिंदी भले अब तक संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकृत भाषा के रूप में स्वीकृत नहीं है, परन्तु व्यावहारिक स्तर पर हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की सभी एजेंसियों की मान्य भाषा है। कहने का आशय यह है कि हिंदी ने अपने बलबूते पर और जन समर्थन की बदौलत देश में और दुनिया में वह स्थान प्राप्त कर लिया है जिसकी वह अधिकारिणी है। वर्तमान में आर्थिक उदारीकरण के युग में बहुराष्ट्रीय देशों की कंपनियों ने अपने देशों (अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, चीन आदि) के शासकों पर दबाव बढ़ाना शुरू कर दिया है ताकि वहाँ हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार तेजी से बढ़े और हिंदी जाननेवाले एशियाई देशों में वे अपना व्यापार उनकी भाषा में सुगमता से कर सकें। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की प्रगति यदि इसी प्रकार होती रही तो वह दिन दूर नहीं जब हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ में एक आधिकारिक स्थान हासिल कर लेगी।

Galea No 2,
Castel Phoenix,
Mauritius

□□□